चमत्कारी

SERPENT POWER

कुण्डलिनी शक्ति एवं ध्यान योग
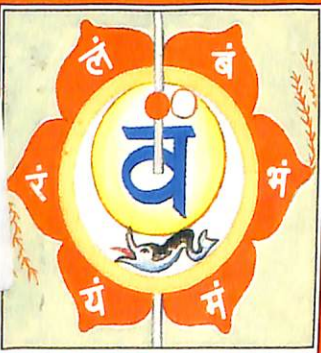
अनंत शक्तियों के जागरण की दिव्य साधना

चमत्कारी कुण्डलिनी शक्ति एवं ध्यान

कुंडलिनी विग्रहा मां त्रिपुर सुंदरी

वाणीकोटि - मृदंगनादमदना - निश्रेणिकोटि - ध्वनि:,
प्राणेशी रसराशिमूलकमलोल्लासैक-पूर्णानना।
आषाढोद्भव-मेघवाज-नियुत-ध्वान्तानना स्थायिनी,
माता सा परिपातु सूक्ष्मपथगा मां योगिनां शंकरी॥

चमत्कारी कुण्डलिनी शक्ति एवं ध्यान योग

कुण्डलिनी शक्ति के रहस्यों को उजागर कर
उसे जाग्रत करने की प्रयोगपरक जानकारी

जिस प्रकार समस्त पृथ्वी, वन, पर्वत आदि के आधार अहिनायक (विष्णु) हैं, उसी प्रकार समस्त योग और तंत्र का आधार कुण्डलिनी है।

पुराणों में अध्यात्म भाव को नारायण, पुरुष, शिव, ब्रह्म आदि कहा गया है। छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है कि जब पुरुष अथवा परमशिव ने एक से अनेक होने की इच्छा की तब प्रथम स्पंदन ''अहम्'' और द्वितीय ''इदम्'' हुआ। अध्यात्म भाव (ब्रह्म) में स्पंदन होने पर भूतभाव की निःसृति और भूतभाव से विसर्गभाव जागता है। यही सृष्टि का आरंभ है। यह विसर्गभाव ही प्रकृति अथवा शक्ति है। विष्णु को शेषशायी दिखाया गया है और शिव को सर्पभूषण कहा गया है। पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति के संयोग के प्रतीक हैं ये।

भारतीय ऋषियों ने इस पृथ्वी को शेषनाग के फन पर स्थित बताया है। यह सर्प शक्ति का प्रतीक है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है, *''ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्। देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्''*, अर्थात् अपने ही गुणों (सत्, रज, तम) से आच्छादित इस देवात्म शक्ति के दर्शन ऋषियों ने ध्यान द्वारा किए। यह देवात्म शक्ति, जिसे विष्णु की शय्या, शिव के आभूषण या पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग के रूप में चित्रित किया गया, मानव शरीर में कुण्डलिनी के रूप में स्थित है। यह शरीर इसी देवात्म शक्ति पर आधारित है।

इस पुस्तक को तैयार करते समय प्रयास रहा है कि सिद्धांत पक्ष के साथ ही इसके 'प्रैक्टिकल' पक्ष पर भी प्रकाश डाला जाए। लेकिन विषय गूढ़ है, इसलिए संभव है कि कहीं कोई पक्ष अछूता रह गया हो या फिर पारिभाषिक शब्दावली में उलझ गया हो। इसकी जानकारी आपके पत्रों द्वारा ही हमें मिल सकेगी।

—प्रकाशक

चमत्कारी

कुण्डलिनी शक्ति

एवं

ध्यान योग

लेखक

सी. एम. श्रीवास्तव

ज्ञान-विज्ञान, ज्योतिष व रहस्यपूर्ण तथा
दुर्लभ विषय की पुस्तकों के अत्यन्त
चर्चित एवं सिद्धहस्त विद्वान लेखक

संवर्द्धक

काका हरिओ३म्

वेदांताचार्य (शां.वे.)
एम.ए. (मनोविज्ञान)

मनोज पब्लिकेशन्स

प्रकाशक :
मनोज पब्लिकेशन्स
761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली-110084
फोन : 27611116, 27611349 फैक्स : 27611546
मोबाइल : 9868112194
ईमेल : manojpublications@vsnl.net
वेबसाइट : www.manojpublications.com

शोरूम :
मनोज पब्लिकेशन्स
1583-84, दरीबा कलां, चांदनी चौक, दिल्ली-6
फोन : 23262174 (मो.) 9818753569

संस्करण : 2004

मूल्य : 150/-

मुद्रक :
आदर्श प्रिण्टर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

चमत्कारी कुण्डलिनी शक्ति एवं ध्यान योग : *सी. एम. श्रीवास्तव*
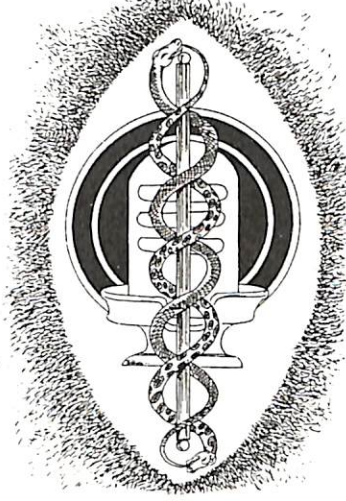
समर्पण

प्रकृति-पुरुष के उस अलौकिक सम्मिलन को
जो इस समस्त सृष्टि की स्वयं से संरचना कर
न तो जीने की जिज्ञासा को ही शांत करता है
और न ही बुझ जाने देता है
यही भटकाव भरी खोज है, जिसका परम सौंदर्यमय पक्ष
सत्यं, शिवं और सुंदरम् भी तो वही है।

भूमिका

भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही अदृश्य एवं अलौकिक शक्तियों की चर्चा होती रही है। प्राचीन वेदों और उपनिषदों में अनेक स्थानों पर अदृश्य (अलौकिक) शक्तियों का उल्लेख किया गया है। उपनिषदों में योग के अनेक अंगों का उल्लेख करते हुए उनसे प्राप्त शक्तियों का परिचय दिया गया है। प्राचीन भारत में योग की एक अत्यंत श्रेष्ठ पुस्तक ''योगवाशिष्ठ'' में ऐसी अनेक कथाएं मिलती हैं, जिनमें अति सामान्य घटनाओं और शक्तियों का विवरण दिया गया है। इनमें वशिष्ठ की कथा, लीला की कथा, इन्दु के पुत्रों की कथा, इन्द्र और अहिल्या की कथा, जादूगर की कथा, शुक्राचार्य की कथा, बलि की कथा इत्यादि विभिन्न कथाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की अति सामान्य शक्तियों का उल्लेख किया गया है। वशिष्ठ की कथा में मानव शरीर ग्रहण कर लेने का उल्लेख है। लीला की कथा में अनेक अति सामान्य घटनाएं दी गई हैं। कर्कटी की कथा में अणिमा सिद्धि का उल्लेख है। इन्दु पुत्रों की कथा में इच्छा और संकल्प की अलौकिक शक्तियों का उल्लेख है। इन्द्र और अहिल्या की कथा में मन की शक्ति के द्वारा शारीरिक कष्टों पर पूर्णतया विजय प्राप्त करने का वृत्तान्त है। शुक्राचार्य की कथा यह बताती है कि इच्छा मात्र से नया जीवन कैसे प्राप्त किया जा सकता है। बलि की कथा में निर्विकल्प समाधि प्राप्त करने की विधि बतलाई गई है। काकभुशुण्डि की कथा में असीम रूप-से लंबे और पूर्ण स्वस्थ जीवन की संभावना के बारे में बतलाया गया है। अर्जुन की कथा में भविष्य का अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष दिखलाया गया है। शतरुद्र की कथा आत्मा के पुनर्जन्म में विचार और इच्छा की शक्ति दिखलाती है। शिकारी और साधु की कथा समाधि का अनुभव बतलाती है। इन्द्र की कथा लघिमा सिद्धि का उल्लेख करती है। विपरीत की कथा पुनर्जन्म का विचार और इच्छा शक्ति की जानकारी देती है। इन सब कथाओं के अतिरिक्त योगवाशिष्ठ में उपरोक्त अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करने की विधियों की भी व्यापक चर्चा की गई है। इसमें यह बतलाया गया है कि कैसे मन को सर्वशक्तिमान बनाया जा सकता है। इसके लिए कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर प्राण का नियंत्रण, चित्त का शुद्धीकरण और नियंत्रण तथा आध्यात्मिक प्रकृति के साक्षात्कार का उल्लेख किया गया है। योगवाशिष्ठ में रहस्यमयी कुण्डलिनी शक्ति को जगाने की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक बतलाया गया है।

योग मार्ग की दो धाराएं प्रमुख मानी जाती हैं, जिनमें से एक चित्तवृत्ति निरोधमूलक है तो दूसरी शारीरिक क्रिया संपादन मूलक है। इन दोनों की प्रक्रियाएं भी दो प्रकार की हैं, जिनमें पहली है केवल प्रक्रिया प्रयोग और दूसरी है मंत्राराधन संयुक्त प्रक्रिया प्रयोग। जब योग साधक केवल शारीरिक क्रियाओं द्वारा ऐंद्रिय क्रियाओं को संयत बनाने का प्रयास करता है तो वह प्रथम कोटि का प्रकार माना जाता है और जब उस क्रिया के साथ-साथ इष्ट मंत्र अथवा तत्तद् स्थानों की अधिष्ठात्री शक्तियों का जप भी करता है तो वह द्वितीय कोटि के प्रकार में आता है।

आगम तंत्रों में जो योग कहा गया है, वह केवल योग नहीं, अपितु उसमें ''मंत्र-जप विधान'' की भी प्रमुखता है। उत्तरतंत्र इस दिशा में कई प्रकार की विशिष्ट योग साधना के निर्देश करता है। इसमें दिव्य, वीर और पशुभाव का विवेचन करते हुए महाभैरवी ने साधना क्रम का जो वर्णन किया है, उसमें सर्वप्रथम ''कुल कुण्डलिनी देवी'' का

स्तवन कहा है। तदनन्तर ''ब्रह्मविद्या'' का कथन करते हुए कुण्डलिनी शक्ति को ही ''वायवी शक्ति'' कहा है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और पराशिव, इन छ: देवताओं को ''षट्शंकर'' बतलाकर स्पष्ट किया है कि ये ब्रह्ममार्गरूप ''षट्चक्रमण्डल'' में विराजमान हैं और ये षट्चक्रों के अधश्चक्रों में ''आग्नेयी कुण्डली'' की स्थिति मानकर अमृतधाराओं से उसका तर्पण करते हैं। इसी प्रसंग में वैष्णव, याज्ञिक, धार्मिक एवं योगी के लक्षण भी दिखलाए हैं। योगी के बारे में कहा गया है कि—

कालज्ञाता, विधिवेत्ता, अष्टांगयोग, अवधूत, पुण्यात्मा, उत्तम कर्मकर्ता, पवित्र, निरभिलाष, धर्मात्मा, सरस्वती का कृपापात्र, छह आधारों का भेदक, ऊर्ध्वरेता, ब्रह्मचारी, आज्ञाचक्र की ओर उन्मुख, आज्ञाचक्र में स्थित वर्णों को धारण करने वाला तथा चित्त में वर्णमाला का जाप करने वाला भावुक योगी होता है। ऐसा योगी ऊर्ध्वाध: क्रमयोग से कुण्डलिनी को चैतन्य करता है। इन्द्रियरोध, षट्चक्रों का वेध, प्राणायाम की पूरक, कुंभक और रेचकादि प्रक्रियाएं, चक्रों की अधिष्ठात्री देव-देवियां तथा चक्रों के वर्णादि का विस्तृत विवरण यहां अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

उत्तरतंत्र का अभिमत है कि—''अथर्ववेद से तमोगुण रूप सामवेद उत्पन्न हुआ, सामवेद से सत्त्वगुण रूप यजुर्वेद उत्पन्न हुआ तथा यजुर्वेद से रजोगुण रूप ऋग्वेद उत्पन्न हुआ।'' अत: अथर्व में ही सभी वेद, जलचर, खेचर और भूचर निवास करते हैं तथा ''महाविद्या, विद्या'' और ''कुलविद्या'' भी इसी में विराजमान हैं।

इसी अथर्ववेद-चक्र में कुण्डलिनी परदेवता स्थित है। इस रहस्यमयी कुण्डली महाशक्ति की महिमा अपार है। यह वायवी शक्ति के रूप में जब बाहर जाती है तो आयु का क्रमश: क्षरण होता है और जब प्राणायामादि के द्वारा इसे रोकते हुए आग्नेयी शक्ति के रूप में अंतर्निरोध होता है तो वह सोममण्डल सहस्रार स्थित अमृत का पान करने के लिए उन्मुख होता है। यह अमृतपान की स्थिति ही परमसिद्धि है।

प्रस्तुत पुस्तक में ''रहस्यमयी कुण्डलिनी शक्ति'' के प्रत्येक अंग का सविस्तार विवरण दिया गया है। आशा है 'मनोज पब्लिकेशन्स' की पुस्तकों के पाठक इस पुस्तक से भी अवश्य लाभान्वित होंगे तथा गुरुकृपा से प्रयास करके कुण्डलिनी शक्ति का व्यक्तिगत रूप से अनुभव कर प्रसुप्त अनंत संभावनाओं को जाग्रत करने में सफल होंगे।

सी. एम. श्रीवास्तव

3192, ब्लॉक-के/3,
शास्त्री नगर, मेरठ।

विषयानुक्रम

निःश्वास : एक

कुण्डलिनी परिचय

मानव का शरीर देव-मंदिर है तथा उसमें इष्टदेव का चिर निवास है, किन्तु अज्ञानवश हम उसे जानने में असमर्थ रहते हैं। इष्टदेव की अपारशक्ति को अपनी क्रिया-शक्ति के द्वारा पहचानने और उसकी सुषुप्ति को चैतन्य बनाकर आत्मकल्याण के लिए पूर्वाचार्यों ने अनेक मार्ग खोज निकाले हैं जिनमें एक मार्ग है, ''कुण्डलिनी शक्ति की साधना।''
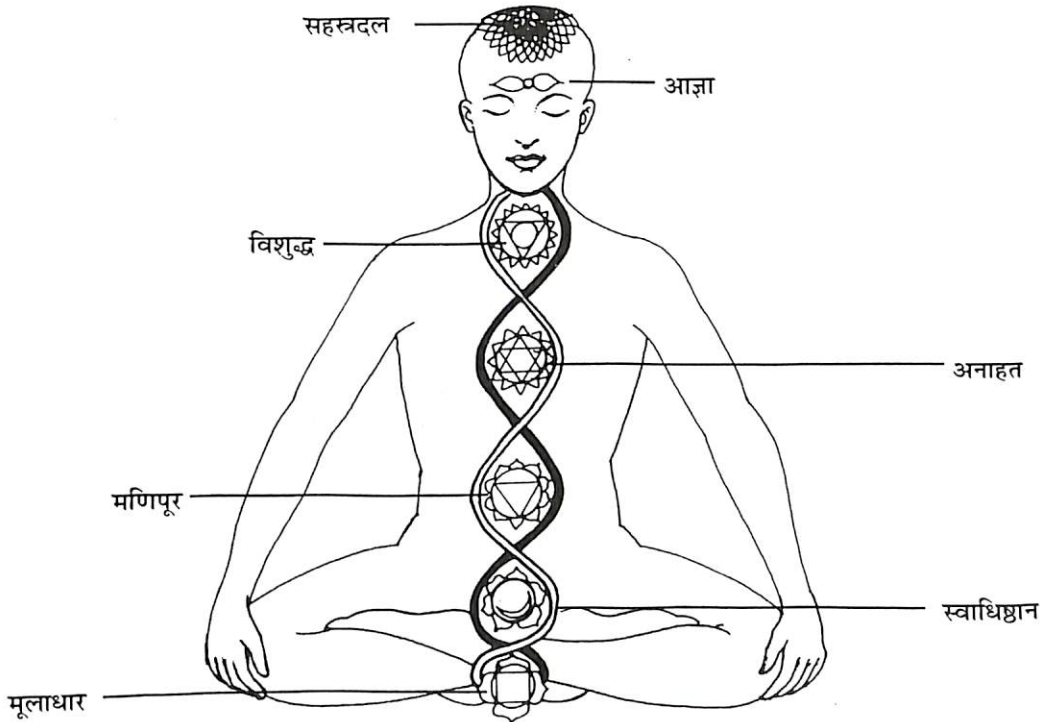
कुण्डलिनी शक्ति का निवास ''मूलाधार चक्र'' में बताया गया है। यह मूलाधार चक्र रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले छोर में है, जिसे आधुनिक शरीर विज्ञान में ''गुदास्थि'' कहा जाता है। तंत्र-ग्रंथों में इसका जो उल्लेख मिलता है, उसमें कहा गया है कि यहां स्वयंभूलिंग है, जहां साढ़े तीन कुण्डल मारकर कुण्डलिनी शक्ति सोयी पड़ी है। उसका सिर स्वयंभूलिंग के सिर पर है और वह अपनी पूंछ को अपने मुख में डाले हुए है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि इस शक्ति का निवास ''योनिस्थान'' में है। कुछ अन्य का मत है कि यह त्रिकास्थि और गुदास्थि के मध्य के त्रिकोण में निवास करती है।

कुण्डलिनी के निवास स्थान के बारे में एक सर्वमान्य और निश्चित मत यह है कि यह मूलाधार चक्र में आसीन है। प्रत्येक व्यक्ति का शरीर उसके अपने अंगुल से 96 अंगुल होता है। मूलाधार चक्र इस शरीर-यष्टि के मध्य में अर्थात् 48वें अंगुल पर है। योगी या साधक जब इस शक्ति को जगा देता है तब कुण्डल खुल जाते हैं। बंधन कटने लगते हैं और ऊर्ध्वगति आरंभ हो जाती है।

ऋग्वेद में इस शक्ति को ''वाक्'' कहा गया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में इस शक्ति ने अपना परिचय देते हुए कहा है, ''मैं रुद्रों, वसुओं और आदित्यों के साथ विहार करती हूं। वरुण, मित्र, इंद्र, अग्नि आदि को मैं ही उठाए हुए हूं।''

कुण्डलिनी शक्ति को कुल कुण्डलिनी, भुजंगिनी, सर्पिणी, प्रचण्डशक्ति, मूलाधार निवासिनी, वलयाकार सर्पिणी, विद्युत, अग्निमय, मुक्तशक्ति, महादेवी, सप्तचक्र भेदिनी, विश्वशक्ति, विद्युत प्रवाह रूपिणी, सर्व सौंदर्य शालिनी, सर्व सुख दायिनी, कुण्डले, अपराजिता, विषतंतुस्वरूपा, मूलविद्या, कुटिलरूपिणी, नव शक्ति समन्विता, शक्ति चालिता, अधोमुख सर्पिणी, कुण्डलिनी आदि नामों से संबोधित किया गया है। तंत्र में इसे ''वागेश्वरी'' कहा गया है, ''स्वर की उत्स, हे कुण्डलिनी तुम्हीं हो; (पंचाष्टवी)।'' ऋग्वेद में यह वाग्देवी स्वयं घोषित करती है, ''मैं जिसे चाहती हूं उसे महान शक्तिशाली, संत, ऋषि और ब्रह्म बना देती हूं।''

अपना परिचय देते हुए वैदिक मंत्र में वाग्देवी (कुण्डली) ने आगे कहा है, ''ईश्वर या पिता शीर्षस्थ हैं जिन तक मेरी पहुंच है और मेरा निवास समुद्र में है।''

इस प्रकार योग, तंत्र, पुराणों आदि में जिस कुण्डलिनी का उल्लेख है, उसकी वास्तविकता और महत्त्व को भारतीय ऋषियों ने सृष्टि के आदि काल से स्वीकार किया।

''मिस्टीरियस कुण्डलिनी'' की भूमिका में सर जान वुडरफ ने लिखा है कि यह ''महाशक्ति'' है। जब यह जाग जाती है, तब इसकी ऊर्ध्वगति आरंभ हो जाती है और एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में लीन करती हुई यह परम शिव से जा मिलती है। षट्चक्र निरूपण में कहा गया है—

मेरोर्बाह्य प्रदेशे शशिमिहिर शिरे सव्यदक्षे निषण्णे
मध्ये नाड़ी सुषुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा।

मेरु की दाहिनी ओर सूर्य नाड़ी और बायीं ओर चन्द्र नाड़ी है। मध्य में सुषुम्ना है जो सूर्य, चन्द्र और अग्नि रूपा है।

योग में सूर्य नाड़ी को इड़ा और चन्द्र नाड़ी को पिंगला कहा गया है। ''मिस्टीरियस कुण्डलिनी'' के अंग्रेज लेखक डॉक्टर रेले ने योग में वर्णित षट्चक्रों—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र—का स्थान आधुनिक शरीर विज्ञान की दृष्टि से इस प्रकार निश्चित किया है—श्रोणि जालिका, अधोजठर जालिका, सौर जालिका, हृदीय जालिका, ग्रसनी जालिका और नासारोमक जालिका।

योगियों के अनुसार सुषुम्ना गुदास्थि की त्रिकोणीय पीठ पर टिकी है। योगशास्त्रों में इसी स्थल को ''ब्रह्माण्ड'' का द्वार बताया है। गुदास्थि और त्रिकास्थि के सामने की मूलाधार शिरा और उसके ऊपर की पेशी का आकार अंडे जैसा है, जिसे ''कंड'' कहते हैं। इसी कंड के केन्द्र में कुण्डलिनी शक्ति सोयी पड़ी है।

योग में जिन छह चक्रों का उल्लेख है, वे भी सुषुम्ना नाड़ी में स्थित हैं।

योगशास्त्रों में सिर के ऊर्ध्व भाग में चंद्रमा का स्थान है, जिसे 'सहस्रार' कहा गया है। चंद्रमा से अमृत टपकता रहता है। यह अमृत शरीर में शक्ति के रूप में रहता है। नाभि-मंडल में सूर्य का निवास है। सूर्य और चंद्र दोनों अधोमुखी हैं। सूर्य इस अमृतमयी शक्ति को जलाता और नष्ट करता रहता है। योगदर्शन सूत्र और वाचस्पति भाष्य में कहा गया है, ''सूर्यद्वारे सुषुम्नायाम् नाड्यां।''

अन्तरिक्षगतो वह्निर्वैद्युतः स्वान्तरात्मकः
नभस्थ सूर्यरूपोऽग्निर्नाभिमण्डल आश्रितः
विषं वर्षति सूर्योऽसौ स्त्रवत्यमृतमुन्मुखः
तालुमूले स्थितश्चन्द्रः सुधावर्षत्यधोमुखः।

आकाश में चमकने वाली विद्युत (बिजली) के समान इस शरीर के अंदर भी एक अग्नि है। आकाश में स्थित सूर्य के समान ही नाभि-मण्डल में एक सूर्य है। यह सूर्य विष टपकाता रहता है। लेकिन, जब उसे ऊर्ध्वमुखी कर दिया जाता है, तब इससे अमृत झरता है। तालुमूल में चंद्र स्थित है, जो अधोमुखी है और जिससे हमेशा अमृत बरसता रहता है।

जो प्राणधारा अधोमुखी होकर क्षीण होती रहती है, कुण्डलिनी के जागते ही अधोमुखी सूर्य ऊर्ध्वमुखी हो जाने से अमृत की वर्षा होने लगती है। इसके बाद कुण्डलिनी की भी ऊर्ध्वगति आरंभ हो जाती है। सुषुम्ना नाड़ी से होकर यह शक्ति सहस्त्रार की ओर बढ़ने लगती है। सुषुम्ना का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

सुषुम्ना जननी मुख्या पंकज तन्तुवत्
सुषुम्ना मध्यदेशे तु वज्राख्या नाड़ी वैशुभा
तत्र सूक्ष्मा हि चित्रिणी तत् श्रीकुण्डली गतिः
तथा संग्राह्य तं नाड्या षट्पद्म सुमनोहरम्।

जननी सुषुम्ना कमल नाल जैसी है। उसकी भीतरी नाड़ी को वज्रा कहा जाता है। इसके भीतर चित्रिणी नाड़ी है, जिससे कुण्डलिनी शक्ति संचरित होती है। इसी चित्रिणी में षट्चक्र है।

कुण्डलिनी शक्ति जब ऊर्ध्वगामी होती है, तब ये चक्र खुलने लगते हैं। योग में इसे ही ''चक्र वेध'' कहा गया है।

कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिए भारतीय ऋषियों ने कई उपाय बताए हैं। जैसे—हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, लययोग एवं सिद्धियोग आदि। कुण्डलिनी न जागने और प्रकृति तथा पुरुष अथवा शक्ति और शिव का संयोग न होने तक जन्म और मृत्यु का चक्र चलता रहता है। जब यह योग हो जाता है, तब अमरत्व या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पुराणों में एक कथा है—शिव के गले में मुंडों की माला देखकर शिवा ने पूछा कि ये मुंड किसके हैं और इन्हें आप क्यों धारण किए हुए हैं ? शिव ने उत्तर दिया, पार्वती तुम कई बार जन्मी और मृत्यु को प्राप्त हुईं। ये मुंड तुम्हारे ही हैं और सूचित करते हैं कि तुम्हारे कितने जन्म हुए। शिवा ने यह सुनकर अमरत्व की इच्छा प्रकट की और शिव ने उन्हें मंत्र दिया।

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यही कहा है कि हे अर्जुन, तुम्हारे अनेक जन्म हुए, तुम यद्यपि मेरे ही अंश हो तथापि तुम इस ज्ञान को भूल गए हो। तुम्हें यह याद नहीं। मैं अब तुम्हें यह ज्ञान देता हूं।

शिव और शक्ति का मिलन और फिर उनका कभी वियोग न होना ही अमरत्व है। वेदों ने इसे स्वीकार करते हुए कहा है, ''उसको जानकर ही मृत्यु को पार किया जा सकता है, इसका और कोई उपाय नहीं।''

चतुर्विधा सा संदिष्टा क्रियावत्यादि भेदतः
क्रियावती वर्णमयी कलात्मा वेधमय्यपि॥

अर्थात् क्रिया भेद से कुण्डलिनी निम्न चार प्रकार से प्रकट होती है—

- क्रियावती
- वर्णमयी

❑ कलात्मा

❑ वेधमयी

''सूक्ष्मां सूक्ष्मतरा शक्तिं, भित्वां षट्चक्रमान्जसा।
गच्छन्ति मध्यमार्गेण दिव्यां पर शिवावधिम्॥

जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना मार्ग से षट्चक्रों को वेधती हुई शिव से जा मिलती है। शंकराचार्य ने ''आनंद लहरी'' में इसका वर्णन यों किया है—

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम्
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदिमरुतमाकाशमुपरि
मनोऽपिभ्रूमध्ये सकलमपि भित्वाकुलपथम्
सहस्त्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।

कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र से उठकर मणिपूर चक्र से होती हुई हृदयाकाश और भ्रूमध्य (आज्ञा चक्र) को पार करती हुई सहस्त्रार में अपने पति शिव के साथ विहार करती है।

❑❑

निःश्वास : दो

कुण्डलिनी के आधार

"कुण्डलिनी" एक ऐसी शक्ति है, जिसका अनुभव तो किया जा सकता है, किन्तु उसे प्रत्यक्ष देखा नहीं जा सकता। यह शक्ति हमारे अपने शरीर में सोयी हुई अवस्था में विद्यमान है तथा जिसकी शक्ति का अनुभव करने के लिए, उसे जाग्रत करना होता है। कुण्डलिनी प्रकृति की सर्वोपरि ऊर्जा शक्ति है। यह शक्ति सुप्तावस्था में मूलाधार चक्र की जड़ में स्वयंभूलिंग के साढ़े तीन चक्कर लगाकर, नीचे की ओर मुख करके और अपनी पूंछ अपने मुख में धारण किए हुए स्थित है। यह शक्ति सुप्तावस्था में भी अपना कुछ कार्य तो अवश्य ही करती रहती है, क्योंकि यह ऊर्जा-शक्ति है जो शरीर को चलायमान रखती है। इस ऊर्जा-शक्ति को ही "कुण्डलिनी शक्ति" के रूप में जाना जाता है।

कुण्डलिनी शक्ति निरंतर ध्यान, एवं साधना करने, देवकृपा और गुरु द्वारा शक्तिपात करने से भी जाग्रत होती है। कितने ही प्राचीन ऋषियों (साधकों) ने साधना के मार्ग पर विधिवत् चलकर, प्राणों को शुद्ध और एकाग्र करके, दृढ़ संकल्प द्वारा रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले भाग में, मूलाधार चक्र के जड़ में ध्यान को ले जाकर, दृढ़ मूलबंध-साधन की क्रिया करते हुए कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत किया है।

कुण्डलिनी शक्ति को जगाने का शक्तिपात भी एक अत्यंत चमत्कारी मार्ग है जो केवल योग्य गुरु के द्वारा ही संभव है (स्वामी विवेकानंद को स्वामी परमहंसजी ने अपना पग स्पर्श करके शक्तिपात का अनुभव कराया था। इसी शक्तिपात द्वारा स्वामी विवेकानंद की कुण्डलिनी जाग्रत हुई थी)। यह शक्तिपात ब्रह्मविद्या के पारंगत गुरुजनों के द्वारा ही हो सकता है। कुण्डलिनी जागरण के कारण ही स्वामी विवेकानंद में एक अनोखी प्रतिभा, ओज, तेज का प्रादुर्भाव हुआ और उससे संसार भर के लोग प्रभावित हुए।

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शक्तिपात के द्वारा साधक की महान ऊर्जा-शक्ति को जगाया जा सकता है। शक्तिपात के द्वारा कुण्डलिनी जागरण का यह विचित्र और प्रशस्त मार्ग है।

योगशास्त्र की समस्त प्रक्रियाओं को योग्य सद्गुरुओं से ठीक-ठीक समझकर, विधिवत् साधना और अभ्यास करने से भी कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत किया जा सकता है। इस शास्त्रोक्त विधि से कुण्डलिनी साधना करने वाले साधकों की संख्या कुछ अधिक ही है। ऐसे अनेक गुरुजन समय-समय पर प्रकाश में आते रहे हैं, जिन्होंने अपने मार्गदर्शन (निर्देशन) में असंख्य साधकों को कुण्डलिनी शक्ति के जागरण का ज्ञान प्रदान किया। महर्षि वशिष्ठ ने अत्यधिक विस्तार से यह विद्या श्री लक्ष्मणजी को सिखाई थी।

योगवाशिष्ठ में कुण्डलिनी शक्ति के बारे में विस्तारपूर्वक वर्णन प्रस्तुत है। योगी के शरीर में कुण्डलिनी शक्ति चक्राकार रूप में चलती है। वक्र गति से चलने के कारण इसकी गति कई गुणा बढ़ जाती है। इसकी गति बहुत तीव्र है तथा यह 3 लाख 45 हजार मील प्रति सेकंड की गति से चलती है अर्थात् इसकी गति प्रकाश की गति से भी बहुत अधिक है। कुण्डलिनी शक्ति आणविक शक्ति से भी अधिक शक्तिशाली है। इसके जागरण से परमाणु शक्ति की भांति महान ऊर्जा-शक्ति का प्राकट्य होता है।

जिस प्रकार परमाणु शक्ति को विध्वंस कार्यों में प्रयोग न करके लोक कल्याण के कार्यों में लगा देने से अनगिनत लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं, उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को लोक कल्याण, समाज कल्याण के निमित्त प्रयोग किया जाए, तो बड़े-बड़े असाध्य कार्य सरलता से किए जा सकते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति के जागरण का मार्ग अत्यंत दुष्कर है, किन्तु यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अवलंबन लेकर इस दुष्कर मार्ग पर अग्रसर होकर सफलता प्राप्त की जा सकती है।

यम अर्थात् निषेधात्मक आदेश

योग की साधना के लिए सबसे पहले शरीर की साधना आवश्यक है। रोगी व्यक्ति योग नहीं कर सकता। योग के लिए नीरोग शरीर आवश्यक है। अस्तु, योगशास्त्र के आचार्यों ने सबसे पहले यम का आदेश दिया है। यम का योग सूत्र से पूर्व उपनिषदों में भी उल्लेख किया गया था। यम निषेधात्मक आदेश हैं। उपनिषदों में आध्यात्मिक साधना के लिए यमों का पालन आवश्यक माना गया है। योगी के विषय में बतलाते हुए श्रीकृष्ण ने लिखा है, ''जो मनुष्य आहार-विहार से युक्त है, श्रम करने से युक्त है, सोने और जागने से युक्त है, उसके दु:खों का नाश हो जाता है।''

अष्टांग योग का प्रथम अंग ''यम'' है। इनकी संख्या के विषय में योगाचार्यों के विभिन्न मत हैं। कोई बारह प्रकार के यम मानते हैं तो कोई दस प्रकार के। महर्षि कपिल ने यमों की संख्या केवल पांच मानी है। बारह यम मानने वाले आचार्य के अनुसार—

अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो हीरसंचय।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यक्षमाऽभयम्॥

(भाग. 33/20/23)

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, लज्जा, संग्रह न करना, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थैर्य, क्षमा और अभय। जो विद्वान दस प्रकार से यम मानते हैं, उनके अनुसार भेद यह हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य क्षमा धृतिः।
दयाऽऽर्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश॥

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जव, मिताहार और शौच; यह दस प्रकार के यम हैं।

महर्षि पंतजलि के अनुसार, *''अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमा:''*, अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह; ये पांच यम हैं।

उपरोक्त तीनों मतों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य—ये समान रूप-से हैं, इसलिए सर्वप्रथम इन पर ही प्रकाश डालेंगे।

अहिंसा—मन, वाणी और शरीर से कभी प्राणी को संतप्त न करना ''अहिंसा'' है।

मानसिक अहिंसा—मन को हिंसा में प्रवृत्त न होने देना मानसिक अहिंसा कही जाएगी। शास्त्रकारों ने वैरागी, संन्यासी और योगी के लिए यह आचरण निर्धारित किया है कि वह किसी के द्वारा अपमानित होने पर भी उसके अपकार का विचार न करे।

वाचिक अहिंसा—कठोर वाणी हथियार से भी गहरा घाव करती है। हथियार से चाहे किसी मर्म स्थान का छेदन हो या न हो, किन्तु वाणी तो हृदय को छेद ही डालती है। इसलिए योग साधक को कटु शब्द न बोलने का निर्देश शास्त्रों में मिलता है और यही ''वाचिक अहिंसा'' है।

शारीरिक अहिंसा—शरीर से किसी प्रकार की हिंसा न हो, उसे "शारीरिक अहिंसा" कहते हैं। किन्तु यह तभी संभव है, जबकि मानसिक और वाचिक अहिंसा का अभ्यास दृढ़ हो जाए।

सों शरीर का काज कों, हने जु औरु सरीर।
परसेवा हित जो रहै, यन्न-यन्न सो वीर॥

भावार्थ यह है कि दूसरों को शारीरिक रूप-से क्षति पहुंचाने वाले मनुष्य का शरीर भी व्यर्थ है, क्योंकि दूसरों की सेवा में हिंसा नहीं रहती। इसलिए साधक को सदा परहित चिंतन में लगा रहना चाहिए, जिससे कि शारीरिक हिंसा के लिए विचार ही उत्पन्न न हो सके।

सत्य—यम का दूसरा भेद सत्य है। मन, वाणी और कर्म तीनों में समान रूप-से यथार्थ का व्यवहार करना ही "सत्य" कहलाता है।

मानसिक सत्य—मन को असत्य से हटाकर यथार्थ कर्म करने का निर्णय लेना ही "मानसिक सत्य" है।

वाचिक सत्य—सत्य बोलना श्रेयस्कर है, किन्तु सत्य भी हितकर ही बोलना चाहिए। जिस सत्य में जीवों का अहित निहित हो, उस सत्य को भी न बोलें। सत्य भाषण में अनेक सिद्धियां समाविष्ट हैं। महाभारत का प्रसंग है कि युधिष्ठिर की सत्यसिद्धि के प्रभाववश उनके रथचक्र धरती का स्पर्श न करके कुछ उठे हुए रहते थे। किन्तु उनके मुख से, "अश्वत्थामा हत: नरा वा कुंजरो वा", अर्थात् अश्वत्थामा मारा गया, पता नहीं वह मनुष्य था या हाथी निकलते ही वह रथचक्र धरती पर जम कर चलने लगे, क्योंकि युधिष्ठिर का उक्त वचन सत्य नहीं था। वे जानते थे कि जो अश्वत्थामा मारा गया, वह मनुष्य नहीं बल्कि हाथी था। इसका प्रभाव द्रोणाचार्य के लिए कष्टदायक हुआ, इसलिए युधिष्ठिर की वाणी की सत्य की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई। इससे सिद्ध हुआ कि *"सत्यादपि हितं वदेत्"* में वाचिक सत्य की पूर्ण सार्थकता है और साधकों को इसी के अनुसार आचरण करना चाहिए।

नागरिक सत्य—मन से सोचा हुआ सत्य वाणी या शरीर से क्रियान्वित हो सकता है। यदि मन से सत्य को स्वीकार करते हुए भयवाणी से असत्य बोलने लगें अथवा शरीर से असत्य का आचरण करने लगें तो सत्य मन से स्वीकार करना भी व्यर्थ ही होगा। इसलिए शास्त्र ने स्पष्ट रूप-से *"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्"* कहकर मन, वचन, कर्म की एकता का होना ही प्रशस्त माना है।

कुछ विद्वान धर्म को सत्य मानते हैं तो कुछ कर्तव्य को, किन्हीं के मत में कर्तव्य और धर्म भी सत्य के ही पर्याय हैं। साधारण व्यक्ति भी सत्य की महत्ता और सत्ता को स्वीकार करने में आनाकानी नहीं करता। लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि "धरती सत्य पर ही टिकी हुई है।" ऐसी मान्यता होने के कारण ही विवेकी पुरुष असत्य से डरते हैं। इसलिए नीति का यह वचन व्यावहारिक सिद्ध होता है कि *"न्यायात् पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा:"* अर्थात् न्याय से सिद्ध हुए मार्ग से हटकर तो धीर पुरुष अपने पांव भी नहीं रखता। वह न्याय से सिद्ध मार्ग सत्य आचरण ही है। उस आचरण से हटने वाला योगाभ्यासी भ्रष्ट हो जाता है और उसे कभी किसी सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। ऋषियों का मत है कि असत्य बोलकर धन तो प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु जीवन का लक्ष्य कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

मुमुक्षु साधकों और योगियों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सत्य का अन्वेषण करना चाहिए। जो असत्य है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। इसलिए सत्य के भ्रम में असत्य को ग्रहण करना कदापि श्रेयस्कर सिद्ध नहीं हो सकता।

अस्तेय—जिस पदार्थ पर अपना अधिकार नहीं, उसका त्याग करना ही "अस्तेय" है। किसी प्रकार से भी पराया धन, स्त्री, भूमि आदि को हड़प लेना आदि स्तेय के अंतर्गत आते हैं। जाबालदर्शनोपनिषद् में इसके लक्षणों पर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है—

अन्यदीये तृणेरत्ने कांचने मौक्तिकेऽपि च।
मनसा विनिवृत्तायां तदस्तेयं विदुर्बुधाः॥
आत्मन्यनात्मभावेन व्यवहार विवर्जितम्।
यत्तदस्तेयमित्युक्तं आत्मविद्भिर्महामते॥

अर्थात् पराए धन, रत्न, मणि, मुक्ता, स्वर्णादि किसी भी छोटी-बड़ी वस्तु पर मन न चलाने रूप अचौर्य को ही विद्वान पुरुष अस्तेय कहते हैं अथवा संसार के सभी व्यवहारों में अनात्म बुद्धि रखते हुए उन्हें आत्मा से भिन्न समझना भी ज्ञानी और महान मति वालों के अनुसार अस्तेय ही है।

मानसिक अस्तेय—दूसरे की वस्तु को अनधिकृत रूप-से लेने का विचार मात्र ही स्तेय है, जिससे बचना ही मानसिक अस्तेय में सहायक सिद्ध हो सकता है।

वाचिक अस्तेय—किसी के द्वारा चोरी, डाका, उठाईगिरी या अन्याय प्रकार से पराया धन हड़पने की योजना में वाणी से सहमति प्रकट करना या उसे उत्साहित करना ''वाचिक अस्तेय'' है।

कायिक अस्तेय—शरीर को किसी ऐसे कार्य में लगाना, जिसमें पराई वस्तु की प्राप्ति निहित हो, ''कायिक अस्तेय'' कहलाता है।

अपरिग्रह—अपरिग्रह से तात्पर्य धन का संग्रह न करना है। धन का संग्रह न करने का अर्थ केवल आवश्यकतानुसार ही वस्तुएं रखना भी है। अनावश्यक वस्तुएं जुटाना परिग्रह है जो उचित नहीं है। अपरिग्रह का एक अन्य अर्थ केवल न्यास से प्राप्त धन को ही लेने के अर्थ में लिया गया है। इसी को गौतम बुद्ध ने सम्यक् आजीव नाम से उपस्थित किया है।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य से तात्पर्य ब्रह्म के अनुसार चर्या है। उसमें केवल संतानोत्पत्ति के हेतु ही संभोग को उचित माना गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाले युवक-युवती के लिए सब प्रकार के भोग-विलास का निषेध है।

ब्रह्मचर्य का पालन शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी बहुत आवश्यक है। शारीरिक दृष्टि से इसलिए कि इसके द्वारा वीर्य की रक्षा होने से बल का ह्रास नहीं हो पाता।

मानसिक ब्रह्मचर्य—मन के द्वारा ब्रह्मचर्य के विपरीत बातों को सोचना, जिसमें किसी नारी का चिंतन करना या उससे संबंधित घटनाओं को याद करना आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार के चिंतन या स्मरण का त्याग करने से ही ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा हो सकती है। अन्यथा मन में जमा हुआ विकार मनुष्य के पतन का कारण बन जाता है। इस विषय में मनु का कथन इस प्रकार है—

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिनिन्द्रियग्रामो विद्वान्समपि कर्षसि॥

अर्थात् माता, बहन और पुत्री के साथ भी एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि इन्द्रिय-समूह इतना बलवान है कि विद्वान पुरुषों को भी खींच लेता है।

इसलिए मन को पवित्र रखना चाहिए, तभी मानसिक ब्रह्मचर्य अक्षुण्ण रह सकता है।

वाचिक ब्रह्मचर्य—वाणी को ब्रह्मचर्य के अनुरूप प्रयोग में लाना ''वाचिक ब्रह्मचर्य'' है। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्रियों से संबंधित चर्चा नहीं करनी चाहिए। उनसे आमोद-प्रमोद, रहन-सहन, हाव-भाव, रूप-लावण्य आदि का वर्णन करने या सुनने से कामोत्तेजना बढ़ती है और ब्रह्मचर्य का खण्डन होता है। इसलिए अनुभवी महर्षियों ने इसका सर्वथा निषेध किया है।

कायिक ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की निर्भरता बहुत कुछ शरीर पर भी है। मन या वाणी से किसी प्रकार की भूल या उच्छृंखलता हो जाने पर भी शरीर को उसमें प्रवृत्त न करने से ब्रह्मचर्य की रक्षा हो सकती है।

इसलिए विज्ञजन इसका एक भेद कायिक अथवा शारीरिक भी मानते हैं। प्राचीन ऋषियों ने ब्रह्मचर्य-रक्षा पर कम विचार नहीं किया है। उनके अनुभवों का निचोड़ श्रुति-स्मृतियों में भरा पड़ा है। जो लोग उनके उपदेशों के अनुसार आचरण करते हैं, वे ही उसका पूरा लाभ उठा सकते हैं।

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पकेध्यवसायश्च किगानिर्वृत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणम्॥

स्मरण, कीर्तन, केलि, दर्शन, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और समागम—यह आठ अंग मैथुन के ऋषियों ने कहे हैं। इन आठों के विपरीत लक्षण हों, तब उसे ब्रह्मचर्य कह सकते हैं।

संग-रहितता—योगी और संन्यासी का किसी के संग (साथ) नहीं हो पाता। इससे व्यवधान ही उत्पन्न होता है। संभव है, संग में जो व्यक्ति है, उसी से किसी प्रकार का मनमुंटाव हो जाए और उसके कारण घर से विरक्त हुआ साधक दूसरों के राग-द्वेष में जकड़ा जाकर कहीं का भी न रहे। इसलिए मनीषी पुरुष संन्यासी (योगी) को संग-रहित रहने का निर्देश देते हैं।

लज्जा—भागवत में लज्जा भी एक आवश्यक गुण माना गया है। जिसमें लज्जा नहीं, वो अपने द्वारा की जाने वाली भूलों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता नहीं समझता, जिसका परिणाम होता है, भूलों की पुनरावृत्ति, जिसके कारण साधना की सफलता संदेहास्पद रहती है और यदि किसी प्रकार की सिद्धि मिलती भी है, तो बहुत विलंब से।

असंग्रह—योगी व्यक्ति को किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि संग्रह से लोभ की प्राप्ति होती है। एक लोभी साधक कुण्डलिनी जाग्रत करने में सक्षम नहीं हो सकता।

आस्तिकता—आस्तिकता का अर्थ है, ''ईश्वर में विश्वास।'' यदि ईश्वर में विश्वास नहीं है तो कोई भी साधना-उपासना-तपस्या सफलीभूत नहीं हो सकती। इसलिए भागवताकार ने विश्वास को साधना का एक आवश्यक अंग मानकर यमों के अंतर्गत कहा है।

स्थिरता—कुण्डलिनी साधक को अपनी साधना में लीन रहना चाहिए। चित्त के इधर-उधर चलायमान रहने से सफलता नहीं मिलती तथा ध्यान की एकाग्रता भी समाप्त हो जाती है।

क्षमा भाव—दस प्रकार के यमों को मानने वाले ऋषियों ने भी क्षमा की गणना यमों में की है। क्षमा एक ऐसा गुण है जो श्रेष्ठ मनुष्यों में आवश्यक है। क्षमा के बिना क्रोध पर नियंत्रण नहीं हो सकता।

अभय—भयभीत रहने से साधना में व्यवधान पड़ता है। अतः ऋषियों ने अभय को भी यमों के अंतर्गत रखकर उसकी आवश्यकता स्वीकार की है।

धृति—धृति का अर्थ है ''धीरज रखना'' अथवा एक प्रकार की ऐसी धारणा जिसमें अपने द्वारा की जाने वाली उपासना के अनुकूल दृढ़ निश्चय निहित हो। योगाचार्यों ने धृति का विवेचन करते हुए कहा है कि धृति उसे कहते हैं, जिसके प्रभाव से धन के नष्ट होने या अपने परम मित्र, प्रिय पुत्र, पत्नी, बांधवादि का वियोग हो जाने पर भी चित्त में किसी प्रकार की व्याकुलता न हो।

दया—दूसरों के दुःखों से प्रभावित होकर, उनके दुःख दूर करने की इच्छा करना ही ''दया'' है।

आर्जव—चित्त की वृत्तियों का प्रवृत्ति में समान रहना ''आर्जव'' है। इसमें साधक को प्रपंच और परमार्थ दोनों के प्रति एक भाव रखना चाहिए।

मिताहार—अल्प मात्रा में सात्त्विक अन्न का आहार करना, जिसमें उदर के आधे भाग को अन्न से, चौथाई

भाग को खाली रखना ही ''मिताहार'' है।

नोट—''अपरिग्रह'' के बारे में हम ''ब्रह्मचर्य'' से पहले ही बता चुके हैं।

नियम : सकारात्मक आदेश

अष्टांग योग का द्वितीय अंग ''नियम'' है। अत: यमों के पश्चात् नियमों का उल्लेख किया जा रहा है। यमों के समान नियमों का पालन भी आवश्यक है। पंतजलि के अनुसार नियम निम्नलिखित हैं—

शौच—शौच से तात्पर्य शरीर के अंदर और बाहर की स्वच्छता है। इसमें शरीर को सब प्रकार से पवित्र रखने की आवश्यकता है। इसके लिए योगशास्त्र में षट्कर्मों का विधान है। नेती, कुंजल, बस्ति, नौलि और त्राटक जैसी योग क्रियाएं इस श्रेणी में आती हैं। साधकों के लिए यहां संक्षेप में इनकी जानकारी दी जा रही है।

नेती

मुख्य रूप से यह दो प्रकार की होती है—सूत्रनेती एवं जलनेती।

सूत्रनेती—आजकल मोम के सिरों वाली सूत्रनेती और रबड़ की नेती योगाश्रमों में सरलता से मिल जाती है। इसे नाक में डालकर तथा गले से निकालकर नासिका-मार्ग को स्वच्छ किया जाता है। इसे किसी योग-साधक से सीखना आवश्यक है। एक बार सीखने के बाद आप हाथ-मुंह धोने के पश्चात् अपने घर पर ही इस क्रिया को कर सकते हैं।
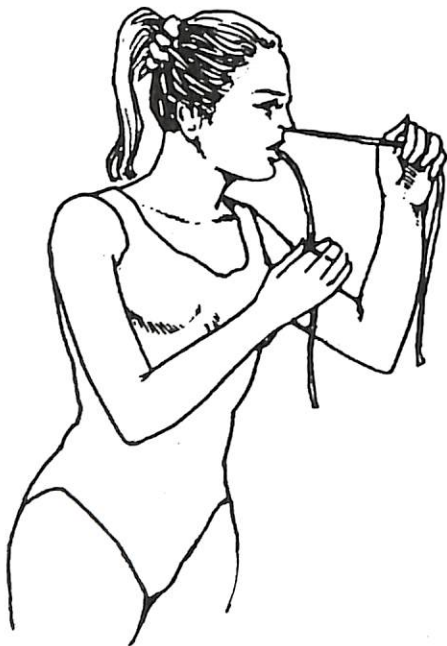
सूत्रनेती

जलनेती

जलनेती—इसके लिए नली वाले लोटे का उपयोग किया जाता है। लोटे में हल्का गरम पानी भरें, उसमें बहुत मामूली-सा नमक मिलाएं। नाक के जिस नथुने से सांस चल रही हो उसे ऊपर कर लें। अब उसमें लोटे की टोंटी लगा दें। मुंह को खुला रखें ताकि सांस मुंह से ले सकें। सांस नाक से न लें—इसका ध्यान रखना आवश्यक है। अब नासिका के एक छिद्र से पानी को अंदर ले जाएं और दूसरे से निकालें। इसके बाद दूसरे छिद्र से पानी अंदर लेकर पहले वाले से बाहर निकालें।

नेती के बाद आगे झुककर दोनों नथुने से जोर-जोर से सांस बाहर निकालना चाहिए ताकि नाक में पानी न रह जाए।

लाभ—नेती के अभ्यास से आंख, नाक, गले के रोग दूर होते हैं। इससे मस्तिष्क पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। मन शांत होता है।

धौति क्रिया

तीन इंच चौड़े और सात मीटर लंबे मलमल के कपड़े को नमक वाले पानी में भिगोकर मुंह द्वारा धीरे-धीरे अंदर निगल जाना और फिर उसे बाहर निकालना धौति क्रिया कहलाता है। पैरों के बल बैठ कर इस क्रिया को करें।
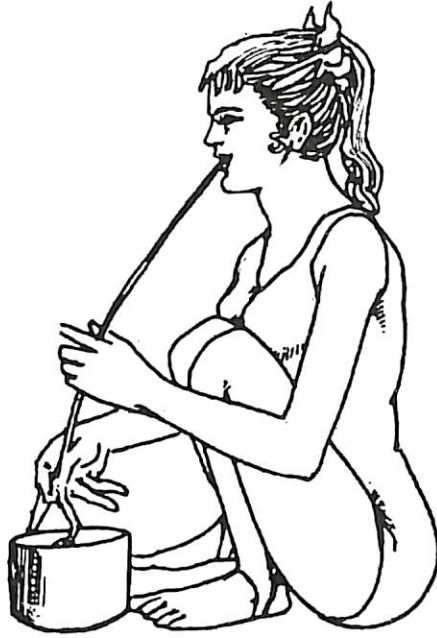
धौति क्रिया

लाभ—पेट-संबंधी रोगों में लाभ, खांसी, दमा, सरदर्द, प्लीहा, ज्वर आदि रोगों में आराम मिलता है। गैस का रोग ठीक हो जाता है। साधक स्वस्थ तथा बलवान बनता है। भूख अच्छी लगती है।

कुंजल क्रिया या गजकरणी

फर्श पर उकड़ूं (या उत्कटासन) बैठकर 2-3 लीटर हल्का गरम पानी एक साथ पी जाएं। इसके बाद खड़े होकर आगे की ओर झुकें। दाहिने हाथ की उंगलियों को मुंह में ले जाकर गले के अंदर की छोटी लटकती हुई जीभ को हिलाएं। इससे वमन (कै) आती हुई लगेगी। उंगलियां बाहर निकाल लें। वमन करने के बाद फिर पहले वाली क्रिया कर कै करें। जब तक पीया हुआ पूरा पानी बाहर न निकल जाए, इसे करते रहें। तीन या चार बार में लगभग पूरा पानी निकल जाता है।

सावधानी—सभी योग-क्रियाएं योग्य प्रशिक्षक से सीखें। कमजोर आंत वाले, हृदय अथवा संग्रहणी के रोगियों के लिए यह क्रिया मना है।

लाभ—कफ के रोग, अजीर्ण, कृमि, रक्त-विंकार, विष-विकार तथा त्वचा संबंधी रोग दूर होते हैं। आमाशय साफ हो जाता है, जिससे भूख अच्छी लगती है।

बस्ति क्रिया

डॉक्टरों द्वारा जिस प्रकार रोगियों को एनिमा से गुदा-मार्ग द्वारा आंतों में जल पहुंचाकर स्वच्छ तथा विकार-रहित किया जाता है, वैसा ही योगसाधक बांस या सरकंडे की पतली नली अथवा रबर नली द्वारा करते हैं। इसमें साधक नौलि-क्रिया भी करते हैं।

लाभ—स्वस्थ व्यक्ति को एक माह में कम-से-कम एक बार एनिमा लेना चाहिए। इससे वात, पित्त, कफ तीनों दोष दूर होते हैं। बड़ी आंत की सफाई होने से उसमें कोई विकार नहीं हो पाता। यह क्रिया (बस्ति या एनिमा) पेट के लगभग सभी रोगों में आराम पहुंचाती है।

नौलि क्रिया

यह दोनों पांवों में लगभग एक फुट का अंतर रखकर खड़े होकर की जाती है। दोनों हाथों को घुटने के कुछ ऊपर जांघों पर रखकर किया जाता है। इसमें सांस को बाहर निकालकर नौलि को दाहिने-बाएं और मध्य में घुमाया जाता है।
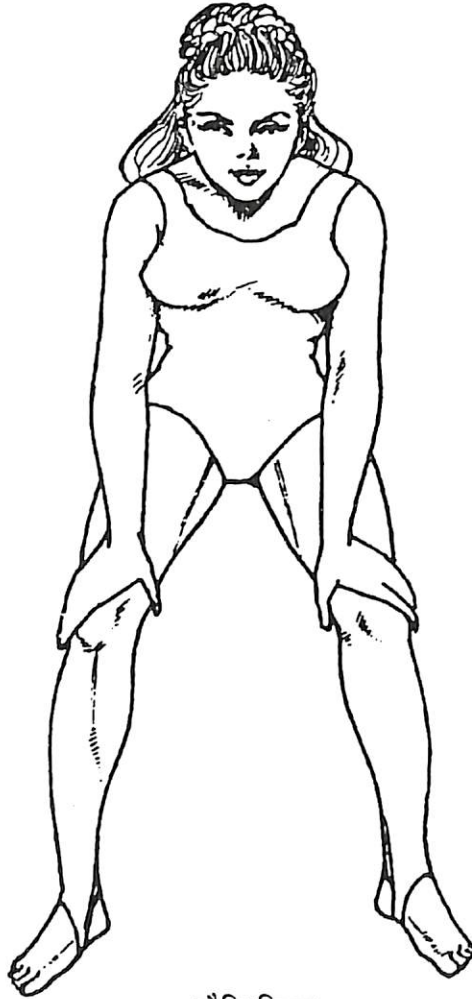
नौलि क्रिया

सावधानी—उन व्यक्तियों को, जिनकी आंतों में सूजन है या फिर जिन्हें संग्रहणी रोग है, यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

कपालभाति

इस क्रिया में आसन पर बैठकर सांस को पूरे जोर से नासिका द्वारा बाहर निकाला जाता है। इसमें श्वास लेने पर ध्यान नहीं दिया जाता। वह क्रिया स्वयं होती रहती है।

सावधानी—बुखार, अनिद्रा, पीलिया और हृदय-रोग से पीड़ित व्यक्ति यह क्रिया न करें।

त्राटक

एकाग्र मन से और निश्चल दृष्टि से किसी सूक्ष्म लक्ष्य को उस समय तक देखते रहना जब तक आंखों में आंसू न आ जाएं त्राटक कहलाता है।

लाभ—इससे साधक का आलस्य तथा निद्रा दूर होती है, एकाग्रता में वृद्धि होती है। नेत्रों के रोगों में लाभ पहुंचता है।

संतोष—संतोष से तात्पर्य असंतोष का अभाव है और जो कुछ मिल जाए, उसमें संतुष्ट रहने की भावना है। संतोष और अपरिग्रह का निकट संबंध है। दैवेच्छा से जो कुछ भी प्राप्त हो जाए, उसी में संतुष्ट रहने को ''संतोष'' कहते हैं।

तप—तप यानी तपस्या में वह शक्ति है कि तपस्वी पुरुष अपने लक्ष्य की प्राप्ति में तो सफल होता ही है, साथ ही वह चाहे जिस बड़े-से-बड़े कार्य को भी पूर्ण कर लेता है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो उसके लिए दुर्लभ या अप्राप्य रह सके। इसलिए तप को सभी आचार्यों ने नियमों के अंतर्गत योग का सबसे आवश्यक अंग माना है।

तपस्या क्या है ? इस पर योगाचार्यों ने जो मत व्यक्त किया है, वह इस प्रकार है—

विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छचान्द्रायणादिभिः।
शरीर शोषणं प्राहुस्तपसां तप उत्तमम्॥

अर्थात् शास्त्रों में बताई हुई विधि से कृच्छ चांद्रायण आदि व्रतों के द्वारा शरीर को सुखाना ही श्रेष्ठ तप है।

विशेष—भारतवर्ष में ''तप'' शब्द को अत्यंत व्यापक अर्थों में प्रयोग किया गया है। शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार के तपों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। किन्तु अधिकतर विचारकों ने शारीरिक तप के स्थान पर मानसिक तप को ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ठहराया है। योग में विशेष रूप-से तप से तात्पर्य मानसिक तप ही समझना चाहिए।

स्वाध्याय—शास्त्रों के स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है और ब्रह्म की प्राप्ति में ज्ञान ही आवश्यक है। स्वाध्याय का अर्थ है वेद, शास्त्र, दर्शन, उपनिषद् आदि में वर्णित आध्यात्मिक ज्ञान से विवेक उत्पन्न हो सके, इसलिए उनका पठन और मनन करना, ओंकार और गायत्री विषयक ग्रंथों का पढ़ना भी स्वाध्याय के अंतर्गत आता है।

आचार्यों ने मन, वचन, कर्म से स्वाध्याय के तीन भेद मानकर उन्हें मानसिक, वाचिक और शारीरिक स्वाध्याय का नाम दिया है, इसलिए उनका पृथक-पृथक विवेचन करना आवश्यक है। मानसिक स्वाध्याय में ओंकार का ध्यान करते हुए जप करना या गायत्री मंत्र के अक्षरों का ध्यान करना मानसिक स्वाध्याय है।

मानसिक स्वाध्याय के द्वारा यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके साधक मोक्ष का उपाय जानने में समर्थ होता है। वाचिक स्वाध्याय में श्रेष्ठ शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना ही विशेष है। वाचिक स्वाध्याय का महत्त्व भी कम नहीं है। आवश्यकता होने पर साधक इसका प्रयोग करे तो उसकी आत्मिक उन्नति होती है।

ईश्वर प्रणिधान—योग शास्त्र में ईश्वर को ध्यान लगाने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त आलंबन माना गया है अन्यथा योग दर्शन में ईश्वर को किसी व्यक्ति विशेष के रूप में नहीं लिया गया है। किन्तु फिर भगवद्गीता तथा अन्य ग्रंथों में ईश्वर की कृपा और ईश्वर की शरण में जाने से योग में सहायता मिलने का उल्लेख है। भगवद्गीता

में श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि जो अंतरात्मा को मुझमें लगाकर श्रद्धा के साथ मेरा भजन करता है, सब योगियों में वह मुझको प्रिय है। इसी प्रकार के विचार कबीर, धर्मदास, नानक, दादू, धरनीदास, पलटू आदि अनेक संत कवियों ने अभिव्यक्त किए हैं। पंतजलि के योगसूत्र में ईश्वर को परम गुरु मानकर सब कुछ उसको अर्पण कर देने की बात है।

आसन : शरीर सिद्धि

अष्टांग योग का तृतीय अंग ''आसन'' है। यम और नियम के पश्चात् योग साधना के लिए शरीर की तैयारी में आसन और प्राणायाम का उल्लेख किया गया है। हठयोग में तो आसन को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। आसनों की संख्या के बारे में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जीवों की जितने प्रकार की जातियां हैं, भारतवर्ष में उतने ही प्रकार के आसनों का उल्लेख किया गया है। किन्तु इन सब आसनों को तो शंकर भगवान ही जानते हैं।

भारतीय योग दर्शन में भिन्न-भिन्न प्रकार से शरीर पर नियंत्रण करने के लिए अनेक प्रकार के आसनों का वर्णन मिलता है, जैसे—पद्मासन, वीरासन, सुखासन, कुक्कुटासन, सिद्धासन, भद्रासन, वज्रासन, मत्स्येन्द्रासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, पवन मुक्तासन, भुजंगासन, धनुरासन, सर्वांगासन, शीर्षासन इत्यादि, ये आसन स्वास्थ्य के विभिन्न मूलतत्त्वों के अनुसार निम्नलिखित विभिन्न वर्गों में बांटे गए हैं—

वीर्याशय की शुद्धि के लिए—भुजंगासन, कंधपीड़ासन, कुक्कुटासन, योगमुद्रा, मत्स्येन्द्रासन, महामुद्रा।

नाड़ी-संस्थान की शुद्धि के लिए—कुक्कुटासन, वीरासन।

पाचन-संस्थान की शुद्धि के लिए—सुप्त पद्मासन, अर्धलकुटासन, महामुद्रा, योगमुद्रा, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, धनुरासन, सर्वांगासन।

वायु-शुद्धि के लिए—मुक्तासन, उत्थितपद्मासन।

उत्सर्ग-शुद्धि के लिए—सोड्डीयान पद्मासन, बद्धपद्मासन, मुष्टियुक्त योगमुद्रा, अर्धलकुटासन।

वैसे आसनों का वर्णन अत्यंत विस्तार से योग संबंधी पुस्तकों में मिलता है। इन आसनों से असाध्य रोगों का इलाज भी किया जा रहा है—सफलतापूर्वक लेकिन यहां हम कुछ विशेष ऐसे आसनों की सचित्र जानकारी दे रहे हैं, जो कुंडलिनी साधना में विशेष रूप से उपयोगी हैं, क्योंकि इनसे जहां प्राण की क्रिया सहज होती है, वहीं बंध भी लगते हैं। मूलबंध जो कि कुंडलिनी साधना का प्रारंभिक बिंदु है, इन आसनों से विशेषरूप से प्रभावित होता है।

पवन मुक्तासन अथवा रॉक एण्ड रोल

आश्चर्य की बात यह है कि योगासन की कई पुस्तकों में इसे केवल पवन मुक्तासन कहा गया है जबकि इसका सबसे ज्यादा लाभ रीढ़ की हड्डी को होता है।

इसके संबंध में यह भी आवश्यक नहीं है कि इसे शौच आदि से निवृत्त होने के बाद ही किया जाए। यह एक ऐसा आसन है जिससे पेट की वायु तो खारिज होती ही है, साथ ही 7-8 घंटे रात्रि में सोए रहने से होने वाली शरीर की अकड़न भी समाप्त हो जाती है।

आसन की विधि: प्रात:काल जब भी आप सोकर उठें अपने लिहाफ, कम्बल अथवा चादर आदि को एक तरफ फेंककर पीठ के बल सीधे लेट जाएं। फिर दोनों टांगें सिकोड़ते हुए अपने दोनों घुटने छाती से सटा लें। फिर दोनों हाथों से आलिंगन में जकड़ लेने की स्थिति में दोनों हाथों को टांगों पर कसकर लपेट दें। नितम्बों का कुछ हिस्सा थोड़ा ऊपर उठाकर बार-बार घुटनों और पैरों के तलवों को दबाएं। बीच-बीच में दोनों हथेलियों से पैरों के तलवों को रगड़ें। इससे जहां पेट में फंसी हुई वायु निकल जाएगी, वहीं हथेलियों से पैर के तलवे रगड़ने से सारे शरीर में एक विशेष प्रकार की चेतना का संचार होगा।

पैर के तलवों को रगड़ने का योगासन से संबंधित किसी पुस्तक में कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु आपको पता होना चाहिए कि पैर के तलवों की ग्रंथियों और नसों का शरीर के सभी अंगों से महत्वपूर्ण संबंध है। इस प्रकार सारे शरीर में ऊर्जा का संचार होता है और शरीर के विभिन्न अंगों से दर्द-पीड़ाएं समाप्त होती हैं। इसलिए प्रातःकाल बिस्तर पर यह आसन करते समय पैर के तलवों को हथेलियों से रगड़ना स्वास्थ्य के लिए सोने में सुहागे का काम करता है।

हस्तरेखा विशारद जानते हैं कि हम हाथ की उंगलियों के पोरों के अग्रभाग से प्राकृतिक ऊर्जा ग्रहण करते हैं जो सारे शरीर में फैलती है। जिन लोगों को इस बात का पता नहीं, प्रकृति उनको भी यह लाभ देती है। परन्तु जब मनुष्य पूर्णतः इस ओर से अनभिज्ञ होता है तो उसे प्रकृति से ऊर्जा मिलनी भी समाप्त हो जाती है जिससे शरीर अनेक रोगों का शिकार हो जाता है।

हथेलियों द्वारा शरीर के विभिन्न भागों अथवा पैर के तलवों को दबाकर रोग दूर करने की इस प्रक्रिया का बहुत महत्व है। इसे रिलेक्सोलॉजी कहते हैं।

पवन मुक्तासन के अन्य रूपः जिस प्रकार पवन मुक्तासन आरंभ किया था, उसी स्थिति में रहते हुए दोनों हाथों को टांगों के बीच में डालकर दबाते हुए लेटे-लेटे उठकर बैठने का प्रयत्न करें। ऐसा तीन-चार बार करने से रीढ़ की हड्डी पर जोर पड़ता है और उसे लचकदार बनाने में सहायता मिलती है।

चित्र के अनुसार दोनों टांगों को बाहर रखते हुए जांघों को दोनों हाथों से अन्दर की ओर दबाएं। इस अथवा पहले बताई गई प्रक्रिया के अनुसार शरीर को रॉक एण्ड रोल की स्थिति में बार-बार ऊपर-नीचे की स्थिति में झुलाया जाता है।

पवन मुक्तासन या रॉक एण्ड रोल

पवन मुक्तासन में लेटने अथवा बैठने की स्थिति में आपको चाहिए कि आप अपना सिर नीचे की ओर झुकाकर अपनी ठोड़ी गर्दन के नीचे के भाग से अर्थात् छाती को ऊपर के भाग की तरफ सटाकर रखें।

इस आसन को दो-तीन स्थितियों में किया जा सकता है। दोनों घुटनों को छाती तक लाने के स्थान पर अलग-अलग एक टांग से भी बारी-बारी से ऐसा किया जा सकता है।

रॉक एण्ड रोल की स्थिति में दोनों घुटनों के नीचे से हाथ डालकर दोनों टांगों को बारी-बारी से गतिमान करके ही यह आसन किया जाता है।

अपने बिस्तर अथवा फर्श पर इस प्रकार का आसन करते हुए रॉक एण्ड रोल की तरह बार-बार लुढ़कने और उठकर बैठने का प्रयत्न करें।

इस आसन को स्पष्ट करने के लिए आपको यह बता दें कि एक कुर्सी इस प्रकार की होती है जिसके चारों पैर दो अर्द्ध गोलाकार लकड़ियों से जुड़े रहते हैं, इसे रॉक एण्ड रोल कहते हैं। उसमें बैठकर जिस प्रकार शरीर को आगे-पीछे झुलाया जाता है, शरीर को इस आसन में रखते हुए बिलकुल उसी प्रकार झुलाना चाहिए।

इस स्थिति में आपकी रीढ़ की हड्डी अर्द्ध गोलाकार रहेगी। बार-बार हाथों को घुटनों अथवा घुटनों को नीचे रखते हुए शरीर को झुलाने से रीढ़ की हड्डी पर जोर पड़ता है। उसके दोष दूर होते हैं। इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न करने से रीढ़ की हड्डी में एक ऐसी लचक पैदा होती है जिससे सारा शरीर और मस्तिष्क अपने आप स्वस्थ होने लगता है।

यदि घुटनों अथवा घुटने के नीचे से जांघों पर दबाते हुए बार-बार आगे-पीछे झूलना संभव न हो सके तो इसमें घबराने की आवश्यकता नहीं। झूलते समय यदि हाथ छूट जाए तो उन्हें फिर से सही स्थिति में लाकर अभ्यास करने से कुछ ही दिन में यह कठिनाई दूर हो जाएगी।

हलासन

शवासन की स्थिति में बिलकुल सीधे लेट जाइए। सर्वांगासन की भांति 30 अंश, 60 अंश तथा 90 अंश पर पैरों को ऊपर उठाकर सीधे कर दीजिए। हाथ पीठ की ओर एवं फर्श पर बिलकुल सीधे जमे रहें। भीतर सांस लेते हुए और रुक-रुक कर छोड़ते हुए क्रमशः इस आसन को करें।

अब नितम्बों और कमर की पेशियों में संकुचन पैदा करते हुए, सांस छोड़ते हुए, धीरे-धीरे कमर सिर की ओर मोड़कर, पैरों के पंजों से फर्श को स्पर्श कीजिए। यहां ठुड्डी, कंठ कूप में बैठकर जालंधर बन्ध बनाएगी। यथासम्भव कुम्भक प्राणायाम भी कीजिए।
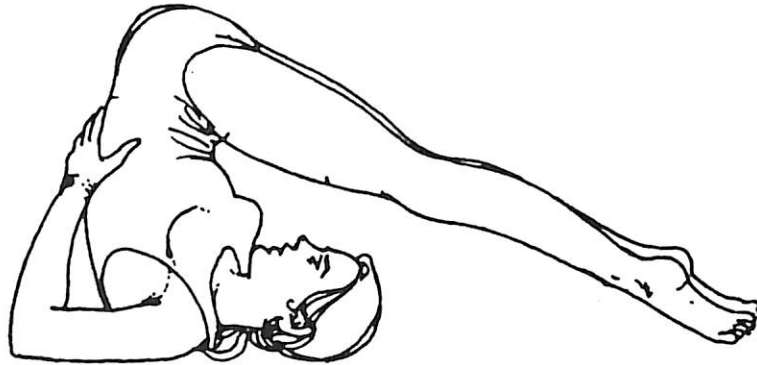
धीरे-धीरे सांस लेने और छोड़ने का क्रम बनाए रखकर पैरों को संतुलन सहित उठाते हुए सर्वांगासन की स्थिति में आ जाइए। अब पहले की भांति 90 अंश, 60 अंश तथा 30 अंश का कोण बनाते हुए शवासन की पूर्व स्थिति में वापस आ जाइए।

भुजंगासन

कालीन पर पेट के बल बिलकुल सीधे लेट जाइए। पैर पंजे के बल पृथ्वी के समानान्तर तथा तलवे आकाश की ओर उन्मुख हों। हाथों को आधा मोड़कर बाजू में कन्धों के पास रखें। गहरी सांस खींचते हुए हाथों को कन्धे से ही चिपकाकर धीरे-धीरे छाती, पीठ, सिर आदि को पृथ्वी से यथासम्भव ऊपर की ओर उठाइए। नाभि और पैर जमीन से चिपके रहें। गर्दन आकाश की ओर उठा ऊपर की ओर देखते रहिए। हाथों को जमीन पर टेककर कमर के ऊपर के भागों को यथासम्भव और ऊपर उठाइए। सांस रोके रहिए। सांस छोड़ते हुए ऊपरी भागों को धीरे-धीरे नीचे लाइए। यह आसन छः बार दोहराएं।
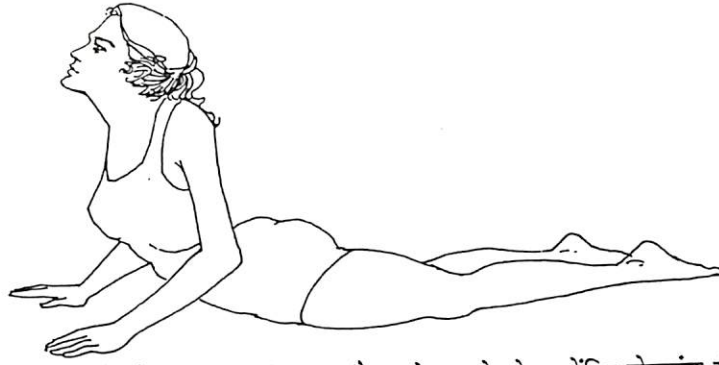
इससे पेट व कमर संबंधी रोगों से छुटकारा मिलता है। इसे करने से क्योंकि मेरुदंड में लचीलापन आता है इसलिए कुंडलिनी जागरण में यह उपयोगी सिद्ध होता है

सर्वांगासन

शवासन के समान फर्श अथवा किसी समतल भूमि पर सीधे लेट जाएं। अब बारी-बारी से दोनों टांगों को धीरे-धीरे ऊपर उठाने का प्रयत्न करें। इस प्रकार जब कोई कठिनाई अनुभव न हो तो सर्वांगासन के समान दोनों टांगें ऊपर उठाएं। इसका तरीका यह है कि धीरे-धीरे सांस छोड़ते हुए दोनों पांवों को ऊपर उठाना प्रारंभ करें परन्तु झटके के साथ ऊपर न ले जाएं। किसी विशेष प्रकार का 60 या 90 अंश पर कोण बनाने के चक्कर में भी न पड़ें। इस प्रकार के आसन से लाभ तभी होगा जब आप दोनों टांगें धीरे-धीरे ऊपर उठाएंगे। सबसे पहला तरीका यह है कि दोनों टांगें ऊपर उठाकर चित्र के अनुसार शरीर को समकोण स्थिति में रखें।

इसके लिए पैरों के साथ-साथ शरीर के बीच का पिछला हिस्सा धीरे-धीरे हाथ के सहारे ऊपर उठाने का प्रयत्न करें। कोहनियों और गर्दन के साथ का हिस्सा फर्श पर टिका रहेगा। पेट के पिछले हिस्से पर दोनों हाथों का सहारा लगाकर टांगों को सीधा रखने का प्रयत्न करें।

अब दोनों टांगों को आगे-पीछे अथवा समानान्तर रूप से फैलाकर व्यायाम का प्रयत्न भी कर सकते हैं।

हाथों का सहारा लगाए बिना शरीर को ऊपर उठाना काफी कठिन है। इसके लिए विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं। सामान्य तौर से हाथ का सहारा लगाकर शरीर को ऊपर उठाने से सम्पूर्ण लाभ प्राप्त हो सकते हैं।
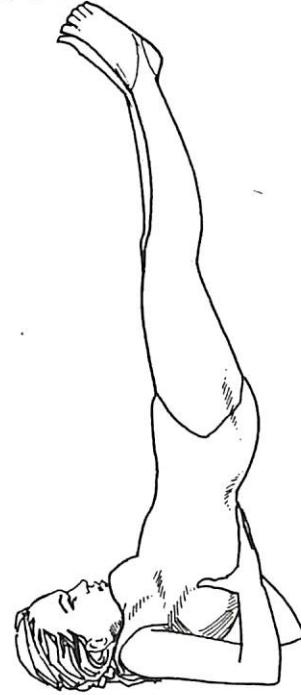
सर्वांगासन

धनुरासन

पेट के बल लेट जाइए। ठुड्डी पृथ्वी का स्पर्श करती रहे। पैरों को मोड़कर जांघों से सटा लीजिए। पंजों के नीचे, टखनों को दोनों हाथों से अच्छी तरह पकड़ लीजिए। नाभि पृथ्वी पर टिकी रहनी चाहिए। श्वास सामान्य गति से ही चलती रहेगी।
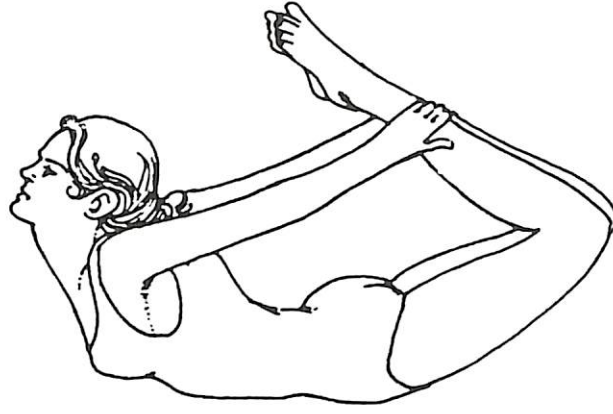
हाथों-जांघों की पेशियों से संकुचन करते हुए धड़, गर्दन, पैर आदि तानकर तने हुए धनुष की आकृति बनाकर रस्साकसी-सी कीजिए। पैर तथा घुटने चिपके हुए ही रहें। घुटने मुड़कर कन्धों की सीध में आ जाने चाहिए।
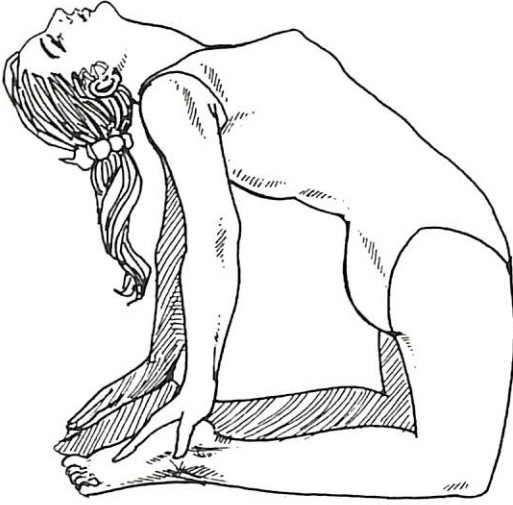
उष्ट्रासन

दोनों घुटने तथा पैर के पंजे आपस में मिलाकर घुटनों को धरती पर टेक कर खड़े हो जाएं। दोनों एड़ियां मिली हुई ऊपर को उठी रहेंगी। अब अपने दोनों हाथों को पीठ के पीछे, पैर के तलवों से थोड़ा आगे की ओर पृथ्वी पर टेकिए। कमर, धड़ तथा गर्दन को पीछे झुकाते हुए यथासम्भव सीधा रखिए। नितम्ब पैरों से काफी ऊपर रखें। इस आसन में मेरुदंड पर पड़ने वाले खिंचाव को आप आसानी से महसूस कर सकते हैं। सिद्धासन, सहजासन या पद्मासन जैसे ध्यान के विशेष आसनों को सिद्ध करने में इस आसन की विशेष भूमिका है।

गोमुखासन

फर्श पर बिछे हुए आसन पर बैठें। बाएं पैर को उठाकर दाहिनी जांघ पर ले जाते हुए, बाएं पैर की एड़ी को दाहिनी जांघ के बाजू में रखें। बाएं पैर का पंजा जमीन को स्पर्श करता रहे। दोनों घुटने लगभग एक-दूसरे पर आ जाएंगे। शरीर एकदम सीधा रखें। दाहिने पैर का तलवा बायीं जांघ-संधि के समीप स्पर्श करता रहेगा। बाएं हाथ तथा दाहिने हाथ की तर्जनी पीठ के पीछे से आकर एक-दूसरे से गुंथ जाएंगी।

हाथ और पैर बदलकर पुनः यही अभ्यास दोहराएं।

पश्चिमोत्तानासन

पैर फैलाकर सीधे बैठ जाइए। दोनों पंजे, घुटने व जांघें सटी हुई रहें। हथेलियां जांघों के बाजू में रखिए। अब पैरों के अंगूठों को हाथ से पकड़कर, धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए, सिर को घुटनों से स्पर्श कराने का प्रयास कीजिए। ऐसी स्थिति में दोनों कोहनियां फर्श पर टिक जाएंगी। ध्यान रहे कि घुटने जरा भी न मुड़ें और जांघें, पिंडलियां व एड़ियां पृथ्वी से सटी रहें। जब तक सरलतापूर्वक कर सकें, बाह्य कुम्भक भी करें।

कठिनाई होने पर एक पैर मोड़कर तलवा जांघ से सटा लें और ऊपर बताई हुई क्रिया को करें। पैर बदलकर इस अभ्यास को दोहराएं।

कुछ लोग पैर सीधा उठाकर, सिर झुकाकर तथा हाथ सीधे रखते हुए भी पश्चिमोत्तानासन करते हैं।

पूर्णोत्तानासन

पूर्णोत्तानासन करने की विधि यह है कि कालीन अथवा कम्बल बिछे हुए फर्श पर बिलकुल सीधे लेट जाइए। दोनों हाथ सिर के पीछे की ओर सीधे लम्बाई में टिके रहने चाहिए। उसके बाद दोनों पैर धीरे-धीरे ऊपर उठाकर चित्र के अनुसार हाथों की ओर पैर ले जाकर नीचे की ओर टिका दें। दोनों पैरों के अंगूठे हाथों से पकड़कर रखें।
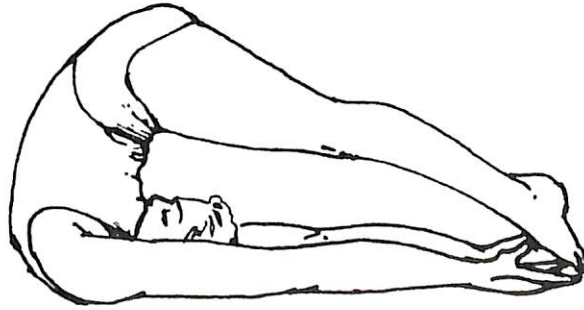
मयूरासन

किसी टेबल के पास सीधे खड़े हो जाइए। दोनों हाथों को टेबल की सतह पर अच्छी तरह जमा लीजिए। दोनों कोहनियां मोड़कर पेट के कोमल भाग से सटा लीजिए। कोहनियों तथा भुजाओं पर शरीर का भार डालते हुए पृथ्वी पर से पैर उठाकर पीछे की ओर ले जाइए।

पृथ्वी पर पेट के बल लेटकर कमर से ऊपर का धड़ ऊपर उठाकर दोनों हाथों की कोहनियों से पेट को सहारा दीजिए। धीरे-धीरे पैर तने रखते हुए पृथ्वी से ऊपर उठाइए। पूरे शरीर का बोझ कोहनियों तथा भुजाओं पर रखते हुए शरीर ऊपर उठाए रखने का अभ्यास कीजिए।
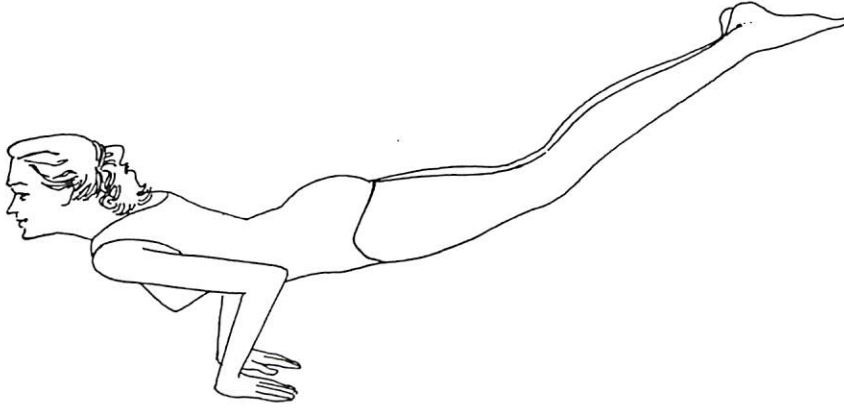
हंस तथा मयूर के समान आकृति बनने के कारण इसे हंसासन या मयूरासन दोनों नामों से पुकारते हैं। बीस सेकण्ड से बढ़ाते हुए पांच मिनट तक यह आसन किया जा सकता है।

अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन

पैर फैलाकर बैठिए। बाएं पैर को मोड़कर, दाहिने पैर को बाहर, जांघ से सटाकर रखें। दाहिने पैर को मोड़कर दाहिनी एड़ी से गुदा तथा मूत्राशय के बीच के कोमल भाग को दबाइए। बाएं घुटने की टेक लगाते हुए, दाहिना कन्धा

अड़ाकर, दाहिने हाथ से बाएं पैर का अंगूठा पकड़ें। बाएं हाथ को पीछे की ओर से घुमाकर, दाहिनी जांघ की सन्धि को स्पर्श करें। सिर को बाएं ठुड्डी व कन्धे की सीध में करें और सीना भरसक सीधा रखें। अब यही क्रिया दूसरा पैर मोड़कर दूसरी ओर से भी करें।

शशांकासन

वज्रासन में बैठिए। दोनों हाथ जांघों पर रखिए। धीरे-धीरे श्वास लेते और दोनों हाथ कानों से चिपकाते हुए ऊपर उठाइए। फिर धीरे-धीरे सांस छोड़ते हुए उसी स्थिति में सामने की ओर इतना झुकिए कि माथा पृथ्वी का स्पर्श करने लगे। यथासंभव सांस को बाहर रोके रखकर ही कुम्भक कीजिए। धीरे-धीरे सांस लेते हुए पूर्व स्थिति में आ जाइए। हाथ को वापस नीचे ले आइए।

कब्ज हटाने के लिए मुट्ठी बांधकर पेड़ू को दबाइए। सांस छोड़ते हुए सिर जमीन से लगाइए। सांस बाहर ही रोके रखकर कुछ देर तक इसी स्थिति में रुके रहिए। इसी प्रकार यह क्रिया बार-बार दोहराएं।

चातकासन

चित्र के अनुसार टांगें फैलाकर फर्श पर बैठ जाएं। एक पैर दोनों नितम्बों के बीच में नीचे रखकर उस पर

दबाव डालें। दोनों हाथ लम्बाई में फैलाकर आंखें आकाश की ओर स्थिर करें। जो पैर नितम्बों के नीचे रहता है, उसकी एड़ी मूत्राशय और गुदा वाले भाग के बीच में रहनी चाहिए।

उत्तानपादासन

सर्वांगासन की प्रारंभिक स्थिति को उत्तानपादासन भी कहते हैं। इस आसन के नाम से ही पता चल जाता है कि इसकी स्थिति किस प्रकार होगी। इसमें केवल कटि-प्रदेश के नीचे का हिस्सा (नितम्बों से लेकर पैरों तक) उठाना होता है।

पंतजलि ने आसन की परिभाषा करते हुए लिखा है, ''स्थिर सुखम् आसनम्,'' अर्थात् जिस मुद्रा में शरीर सुखपूर्वक स्थिर रखा जा सके, वही आसन है। आसन को एक प्रकार का तप भी माना गया है। आसन केवल
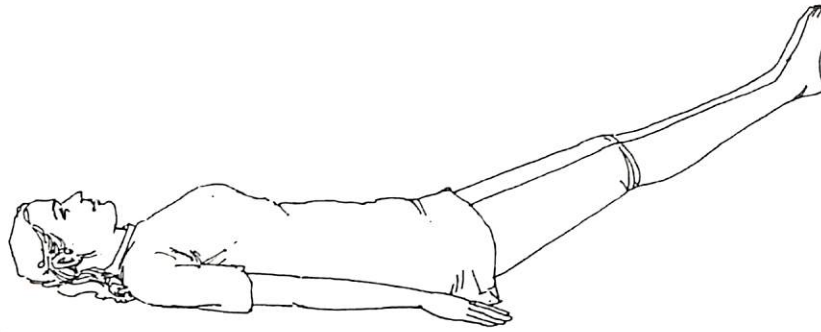
शारीरिक व्यायाम न होकर आध्यात्मिक विकास का साधन है। वह शारीरिक व आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टि से लाभदायक है। उसका प्रयोजन शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों ही है। आसनों पर अधिकार हो जाने से शरीर पर मन का नियंत्रण स्थापित हो जाता है।

प्राणायाम : प्राणसिद्धि की विशेष क्रियाएं

प्राणायाम को अष्टांग योग का चतुर्थ अंग माना गया है। भारतीय विचारकों ने शरीर और मन की शुद्धि, नियंत्रण और स्वास्थ्य लाभ में प्राणायाम की प्रक्रिया का विशेष महत्त्व माना है। प्राणायाम के लिए स्थान कैसा हो, इसके लिए अत्यंत विस्तारपूर्वक लिखा गया है। यह स्थान शुद्ध और उपद्रव रहित होना चाहिए। वहां किसी प्रकार के जीव-जंतु नहीं होने चाहिए। स्थान दुर्गन्धहीन और समतल होना चाहिए। सबसे नीचे कुशासन, उसके ऊपर हिरण की खाल तथा उसके ऊपर नरम और स्वच्छ वस्त्र बिछाकर प्राणायाम की क्रिया की जानी चाहिए।

कुछ विद्वानों ने हेमंत, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में योग आरंभ करने का निषेध किया है और वसंत तथा शरद् ऋतु को योग के लिए सर्वश्रेष्ठ माना है। ऋतु के अतिरिक्त अभ्यास का समय भी निश्चित किया गया है। इसके लिए अर्धरात्रि का अंतिम पहर अर्थात् ब्रह्म मुहूर्त सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अनेक योगियों ने इसी का समर्थन किया है। प्राणायाम और भोजन में 3 घंटे का अंतर अवश्य होना चाहिए। भरे पेट प्राणायाम करना अनुचित है। यों तो योगी व्यक्ति को मिताहारी होना चाहिए। अनेक आचार्यों के अनुसार पेट को आधा अन्न इत्यादि से, शेष के आधे को जल से और बचे हुए को वायु से भरना चाहिए। भारतीय मनोविज्ञान में 10 प्रकार की वायु मानी गई हैं। यथा प्राण, अपान, समान, उदान, ज्ञान, नाग, कूर्म, क्रीकल, देवदत्त और धनन्जय। साधक को पूर्ण स्वास्थ्य के लिए इन सभी प्रकार की वायु पर नियंत्रण करना आवश्यक है। प्राणायाम में निम्न 3 स्थितियां होती हैं—

- ❑ *पूरक :* सांस को अंदर खींचना।
- ❑ *कुम्भक :* सांस को रोकना।
- ❑ *रेचक :* सांस को बाहर निकालना।

कुम्भक के भी निम्न दो प्रकार माने गए हैं—

- ❑ *आभ्यान्तर कुम्भक :* सांस को अंदर खींचकर रोकना।
- ❑ *बाह्य कुम्भक :* सांस को बाहर छोड़कर रोकना।

प्राणायाम की इन तीन स्थितियों की अवधि के बारे में साधारण नियम यह है कि पूरक में जितना समय लगता है, उससे दुगुना रेचक और चौगुना कुम्भक में लगाया जाना चाहिए। इन सब नियमों के पालन के लिए लंबे समय तक अभ्यास करने की आवश्यकता है। यह अभ्यास क्रमशः बढ़ाया जाना चाहिए। प्राणायाम में किसी भी प्रकार की शीघ्रता अथवा गलती करने से लाभ के स्थान पर हानि की संभावना होती है। इसलिए बहुधा गुरु से प्राणायाम की विधि सीखने के लिए कहा जाता है।

पूरक एवं रेचक क्रियाएं

पूरक क्रिया इस प्रकार करें—

1. *दाएं अंगूठे से दाएं नथुने को बंद करिए।*
2. *बाएं नथुने से आठ तक गिनते हुए श्वास खींचिए।*
3. *तर्जनी (अंगूठे के साथ वाली) उंगली से बायां नथुना बंद करके आठ गिनती तक सांस रोकिए।*

रेचक क्रिया इस प्रकार करें—

1. *दाएं नथुने से अपना अंगूठा हटा लीजिए।*
2. *आठ तक गिनती (मन ही मन) गिनते हुए सांस बाहर निकालिए।*
3. *तर्जनी से बायां नथुना बंद रखिए। इसके बाद दाएं नथुने से सांस लेना शुरू करिए।*
4. *फिर क्रम को बदलिए। ऐसा अदल-बदल कर पांच-पांच बार करिए।*

पूरक क्रिया

रेचक क्रिया

कुम्भक के अन्य 8 भेद और भी हैं—

सूर्यभेदन—सूर्य नाड़ी से सांस (श्वास) खींचकर यथाशक्ति उदर में तब तक धारण किए रहें, जब तक कि नखों और केशकूपों में पसीना न आ जाए। इसके ठीक प्रकार से सिद्ध होने पर सूर्यचक्र के भेदन और कुण्डलिनी जागरण में सहायता मिलती है।

उज्जायी—नासारन्ध्रों के मार्ग से वायु को अनुलोम-विलोम प्रकार से खींचकर पहले मुख में धारण करें और मुख से कंठ में ले जाएं तथा कंठ से हृदय में ले जाकर धारण करें। तत्पश्चात् हृदय से कंठ में और कंठ से मुख में पहुंचाकर बाहर निकाल दें। इससे प्राण और शरीर पर साधक का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो जाता है।

सीत्कारी—दोनों होंठों के मध्य लगी जीभ से सीत्कार करता हुआ साधक मुख के द्वारा कुम्भक और नासारन्ध्रों के द्वारा रेचक करे। इससे साधक को कामदेव के समान लावण्य की प्राप्ति होती है।

शीतली—जिह्वा से वायु को खींचकर उदर में भरें और नासाछिद्रों के द्वारा बाहर निकाल दें। इससे शरीर विकार-रहित हो जाता है।

भस्त्रिका—लोहार की धौंकनी के समान बाहर से वायु को बार-बार खींचकर उदर में भरें और कुम्भक करें। फिर उदर में धीरे-धीरे चलाकर नासाछिद्रों के द्वारा उस वायु को बाहर निकाल दें। इसे पद्मासन लगाकर करना चाहिए। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

भ्रामरी—जब आधी रात व्यतीत हो जाए और जीव-जंतुओं के बोलने का शब्द भी सुनाई न दे तो दोनों हाथों की उंगलियों को दोनों कानों में लगाकार पूरक द्वारा वायु खींचे और फिर कुम्भक करे। इसमें कान बंद होने पर भौंरों

के समान शब्द सुनाई देने लगता है। यह शब्द दाएं कान में अनुभव होता है। अनुभवी आचार्यों का मत है कि भ्रामरी का अभ्यास आरंभ करते-करते ही भौंरों का शब्द सुनाई नहीं देता, वरन् प्रथम झींगुर के बोलने का शब्द ही सुनने में आता है। फिर जैसे-जैसे अभ्यास की परिपक्वता होती है, वैसे-वैसे सुनाई देने वाले शब्द में परिवर्तन होने लगता है। झींगुर के बाद बंशी की ध्वनि, फिर मेघ का गर्जन, फिर बाजे की झंकार और तत्पश्चात् भ्रमर-गुंजन सुनाई देता है।

यह शब्द भी स्थाई नहीं रहता, क्योंकि इसके बाद घंटा, घड़ियाल, तुरही, भेरी, मृदंग, दुदुंभी का आदि निनाद सुनने में आता है। इस प्रकार नित्य प्रति के अभ्यास से अनेक प्रकार के शब्द-श्रवण की अनुभूति होती है और फिर अनाहत शब्द की ध्वनि होने लगती है। यह अनाहत शब्द ही परम श्रेष्ठ शब्द है, इसी में ब्रह्म निहित है। जब इस शब्द में मन लीन हो जाता है, तब साधक को अन्य कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता, क्योंकि उसी से परमपद की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए इस कुम्भक को ''समाधिसिद्धिमाप्नुयात्'' कहकर ऋषियों ने समाधि की सिद्धि प्राप्त कराने वाला माना है। कुण्डलिनी जागरण करने वाले साधकों के लिए यह सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया है।

मूर्च्छा—पूरक प्राणायाम के अंत में दृढ़तापूर्वक जालंधर बंध को लगाकर कुम्भक करें और फिर धीरे-धीरे वायु का रेचक करें। इस क्रिया में कुम्भक के द्वारा वायु को भर कर मन को आज्ञा चक्र में प्रतिष्ठित करने पर साधक की चेतना लुप्त होती है और बेहोशी की अवस्था प्रतीत होने लगती है, क्योंकि मन के आत्मा में लीन होने से बाह्य विषयों का ज्ञान नहीं रहता। यह कुम्भक परमानंद प्रदान करने वाला है। इसमें मन को एकाग्र करके भौंहों के मध्य विद्यमान आज्ञाचक्र में लगाएं, क्योंकि इस चक्र में भगवान महेश्वर का निवास रहता है। इस प्रकार यह कुम्भक मन को ब्रह्म में विलीन करता है।

प्लाविनी—पूरक द्वारा बाह्य वायु को खींचकर उदर को परिपूर्ण कर लें और कुम्भक के द्वारा उस वायु को रोके रहें। पहले दिन 64 बार पूरक और 64 बार रेचक करें। इस तरह का अभ्यास प्रत्येक तीन घंटे के अंतर से करना चाहिए। यह शरीर को नीरोग बनाने और मोक्ष प्रदान करने में सहायक है।

प्रत्याहार अर्थात् लौटाना

योग के बहिरंग में यम, नियम, आसन और प्राणायाम के पश्चात् अंतिम बहिरंग प्रत्याहार है। इसकी परिभाषा करते हुए पंतजलि ने लिखा है, *''स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणाम् प्रत्याहार।''* अर्थात् अपने विषय से संपर्क न होने से इंद्रियों के चित्त स्वरूप का अनुसरण करना प्रत्याहार कहलाता है।

यम, नियम, आसन और प्राणायाम के अभ्यास से इंद्रियों को उनके विषयों से समेटा जा सकता है। इससे चित्त बाह्य विषयों से हटकर आंतरिक विषयों की ओर लगता है। प्रत्याहार का शाब्दिक अर्थ है, *''लौटाना''*। पंतजलि के अनुसार, *''ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्''*, अर्थात् प्रत्याहार की पूर्णता से इंद्रियों की परमावश्यकता हो जाती है अर्थात् वे पूर्णतया वश में हो जाती हैं। वे अपने विषयों से लौट आती हैं।

इंद्रियों के वश में हो जाने का अर्थ उनका अभाव नहीं, बल्कि विषयों के प्रति आकृष्ट न होना है। प्रत्याहार में भोग करने या न करने पर नियंत्रण हो जाता है। इंद्रियों की शक्ति बनी रहती है, किन्तु साधक चाहे जब उन्हें प्रयोग कर सकता है और चाहे जब समेट सकता है। इस प्रकार साधक को इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त हो जाता है।

धारणा : दर्शन व ग्रहण करने की सामर्थ्य

अष्टांग योग का छठा अंग ''धारणा'' है। शास्त्रानुसार धारणा की सिद्धि तब होती है, जब प्रत्याहार का अभ्यास सिद्ध हो जाए, अन्यथा नहीं होती। प्रत्याहार का अभ्यास होने पर शुभ धारणा का आविर्भाव होता है।

धारणा का अर्थ है, ध्यान के द्वारा दर्शन करने अथवा ग्रहण करने की सामर्थ्य। धारणा की सिद्धि से इच्छित या ध्येय वस्तु को ध्यान के द्वारा देखना या प्राप्त कर लेना संभव होता है। इस प्रकार धारणा का महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं समझना चाहिए और साधक को इसकी सिद्धि में लग जाना चाहिए। धारणा पांच प्रकार की मानी गई है।

पार्थिवी—पृथ्वी तत्त्व में धारणा किया जाना ''पार्थिवी धारणा'' कहलाता है। हरताल जैसे वर्ण वाले पृथ्वी तत्त्व का स्थान पांव से जानु पर्यन्त है। इसका आकार चौकोर, बीज **''लं''** और देवता ब्रह्मा हैं। योग बल से प्रकट करके इसे हृदय में धारण करें और पांच घड़ी अर्थात् दो घंटे पर्यन्त कुम्भक करें। यह पार्थिवी धारणा सिद्ध होने पर पृथ्वी को विजय कराने वाली होती है।

आम्भसी—यह धारणा जल तत्त्व से संबंधित है। इसका बीज **''बं''** तथा देवता विष्णु हैं। इसको योगबल से प्रकट करके हृदय में धारण करना चाहिए। इसे सिद्ध कर लेने वाला साधक गहरे जल में गिरकर भी मरता नहीं। इस धारणा की सिद्धि होने पर शरीर में प्रविष्ट हुआ भयंकर विष भी अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता।

आग्नेयी—यह अग्नि तत्त्व से संबंधित धारणा है। अग्नि का स्थान नाभि, आकृति त्रिकोण, वर्ण इंद्रगोप कीड़े के समान लाल और बीज **''रं''** है। इसके देवता त्रिनेत्र भगवान रुद्र हैं। इसे योगबल के द्वारा प्रकट कर एकाग्र चित्त से पांच घड़ी पर्यन्त धारण करना चाहिए। इसके अभ्यास से साधक अग्नि के भय से सर्वथा मुक्त हो जाता है। कुछ आचार्य इसे ''वैश्वानरी धारणा'' कहते हैं। इसका साधक धधकते हुए भीषण अग्निकुंड में भी क्यों न जा गिरे, उसका बाल-बांका नहीं हो सकता।

वायवी—वायु का स्थान हृदय से भृकुटियों पर्यन्त माना गया है। इसका वर्ण अंजन और धुएं के समान काला होता है। बीज **''यं''**, देवता ईश्वर और सत्त्व गुण से युक्त है। योगबल से प्रकट कर, पांच घड़ी तक यह धारणा करनी चाहिए। इसके अभ्यास से आकाश में गमन करने की शक्ति प्राप्त होती है।

आकाशी—आकाश का स्थान भृकुटि से मूर्द्धान्त पर्यन्त माना गया है। यह वृत्ताकार तत्त्व धूम्र वर्ण का और **''ह''** बीच से समन्वित है। इसके देवता सदाशिव हैं। प्राणवायु का अवरोध कर पांच घड़ी तक कुम्भक करने से यह धारणा सिद्ध होती है। इसे ''नभो धारणा'' भी कहते हैं। इस धारणा को करने वाले साधक की कभी मृत्यु नहीं होती।

धारणा की प्राप्ति कैसे हो?

धारणा-शक्ति की प्राप्ति के कई तरीके हैं। यह दावा करना दंभपूर्ण होगा कि कोई व्यक्ति केवल योग की पद्धति से ही इसे प्राप्त कर सकता है। अतीत तथा वर्तमानकाल के अगणित महापुरुषों ने, जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्र-विशेष में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है तथा प्रभूत धारणा-शक्ति का प्रदर्शन किया है, न तो योगाभ्यास किया और न ही इसे प्राप्त करने के यौगिक मार्ग का अनुसरण किया। फिर भी उनकी धारणा-शक्ति अतीत एवं वर्तमानकाल के जीवनभर योगाभ्यास करने वालों की अपेक्षा बढ़-चढ़कर थी। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि कुछ लोग कोई अनोखी शक्ति प्राप्त कर सके थे तो क्या अन्य लोग भी उसे प्राप्त कर सकते हैं?

इन महापुरुषों ने अपनी धारणा-शक्ति को प्रयत्न द्वारा, कठिन संयम द्वारा, दृढ़ संकल्प द्वारा तथा कुशलता की उपलब्धि के लिए लगन अथवा अन्य प्रेरणाओं द्वारा परिवर्धित या विकसित किया होगा। स्वभावत: तब धारणा के उसी स्तर को प्राप्त करने का इच्छुक कोई भी व्यक्ति उसे प्राप्त कर सकता है, यदि वह उचित प्रयास करे। किन्तु यादृच्छिक रूप-से किए गए प्रयास का परिणाम संतोषप्रद हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है।

दूसरी ओर, योग की सिद्धि, परीक्षित तथा ज्ञात पद्धति है, जो हर किसी को निश्चयता के आश्वासन के साथ वो ही परिणाम प्रदान करती है। इस प्रसंग में द्रष्टव्य है कि आधुनिक काल के सभी पुरुषों एवं स्त्रियों के लिए योग सर्वाधिक मूल्यवान एवं स्पृहणीय है। धारणा को हमने निम्न रेखाचित्र के द्वारा समझाने का प्रयास किया है—
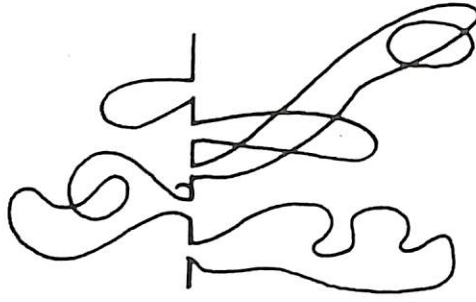
चित्र (अ) के परिणाम	*चित्र (ब) के परिणाम*
❑ अधिकांश समय नकारात्मक रूप-से कार्य करता है, इस प्रकार समय का अपव्यय।	❑ अधिकांश समय सकारात्मक रूप-से कार्य करता है, इस प्रकार समय का उचित उपयोग।
❑ चिंता, तनाव, उत्तेजना तथा इस प्रकार की अन्य वस्तुओं में अंतर्ग्रस्त होने की अधिक संभावना।	❑ व्यर्थ उत्तेजना की संभावना कम और धारणा की उच्चतर अवस्था में शून्य।
❑ कार्य-संपादनों में बड़ी बाधा : शारीरिक तथा मानसिक दोनों।	❑ शारीरिक तथा मानसिक कार्य-संपादनों में बड़ी सहायता।
❑ शरीर तथा मन की अनिश्चित दशा के कारण भावी योजनाएं अप्रत्याशित होती हैं।	❑ शारीरिक तथा मानसिक दशा सुनिश्चित होने के कारण भावी योजनाएं विश्वसनीय होती हैं।
❑ विश्राम, आनंद, सुख और अच्छे स्वास्थ्य का अभाव।	❑ विश्राम, आनंद, सुख और अच्छे स्वास्थ्य की लगातार उपलब्धि।

योग में धारणा-शक्ति प्राप्त करने की कई विधियां हैं। कुछ विधियां सरल हैं, किन्तु अन्य कठिन तथा जटिल हैं। यद्यपि इन सबका एक ही परिणाम होता है। कठिन तथा जटिल विधियों का अभ्यास किसी अनुभवी गुरु (योग-शिक्षक) की उपस्थिति में ही किया जाना चाहिए। यदि व्यक्ति स्वयं इनका अभ्यास करता है, तो इससे गलतियां होने, यहां तक कि हानि होने की भी संभावना रहती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए केवल सरल, किन्तु समान रूप-से महत्त्वपूर्ण विधि का निर्देश दिया जाता है, ताकि कोई भी व्यक्ति बिना किसी भय के तथा बिना किसी गुरु की व्यक्तिगत सहायता लिए उसका अभ्यास कर सके।

उस विधि का वर्णन करने से पूर्व यह बतलाना आवश्यक है कि हठयोग के आसनों द्वारा भी किस प्रकार यह धारणा-शक्ति प्राप्त की जाती है। यद्यपि आसनों का संबंध मुख्यत: शारीरिक उत्कृष्टता से है, तथापि मानसिक पक्ष भी अप्रभावित नहीं रहता। किसी भी आसन के अभ्यास की विधि ऐसी होती है कि जब तक शरीर तथा मन का सामंजस्य नहीं होगा, तब तक उसे संतोषपूर्वक संपन्न नहीं किया जा सकता।

इस अवस्था में यह ज्ञातव्य है कि विभिन्न आसनों के अभ्यास में शारीरिक गतियों तथा अनुकूलनों के साथ-साथ श्वास लेने, श्वास छोड़ने, उसे रोक रखने तथा स्वाभाविक श्वास-क्रिया की आवश्यकता होती है। जब तक ये आवश्यकताएं पूर्ण नहीं हो जातीं, तब तक किसी आसन का अभ्यास सम्यक् रूपेण संपन्न नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में यह आसानी से समझ में आ सकता है कि अभ्यास की प्रकृति ऐसी होती है कि शरीर और मन के बीच सहयोग तथा सामंजस्य के अभाव में पूर्णता की उपलब्धि नहीं होती। अत: आसनों के क्रम में मन का ध्यानस्थ एवं समन्वित होना स्वभावत: धारणा-शक्ति की प्राप्ति में सहायक बन जाता है। इसे योगासनों का परोक्ष लाभ माना जा सकता है, यद्यपि यह पूर्ण धारणा की ओर प्रवृत्त नहीं करता। चूंकि पूर्ण धारणा-शक्ति की प्राप्ति हमारा लक्ष्य है, इसलिए एक विशेष यौगिक विधि, जो खासकर इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए है, आवश्यक हो जाती है।

धारणा-शक्ति का अभ्यास

धारणा-शक्ति के वास्तविक अभ्यास के पूर्व कुछ अनिवार्यताएं हैं, जिनका अनुसरण किया जाना चाहिए। वे अनिवार्यताएं स्थान, समय, शारीरिक दशा, भोजन या खाद्य-पदार्थ और अभ्यास की प्रविधि-विषयक हैं।

स्थान—अभ्यास का स्थान साफ-सुथरा तथा शांतिपूर्ण होना चाहिए। वहां स्वच्छ वायु सुलभ होनी चाहिए। आवश्यक नहीं कि अभ्यास का स्थान किसी विशेष प्रकार का हो, किन्तु यह अभ्यासी की आंखों के लिए सुखकर अवश्य होना चाहिए। नियमित रूप-से एक ही स्थान पर अभ्यास करें और अत्यंत आवश्यक होने पर ही स्थान-परिवर्तन करें। यदि संभव हो तो अकेले ही अभ्यास करें। किसी दर्शक को वहां न आने दें।

समय—अपनी सुविधानुसार कोई भी समय चुना जा सकता है। अभिप्राय यह है कि अभ्यास का समय ऐसा हो कि उस समय कम-से-कम शारीरिक और मानसिक सक्रियता की आवश्यकता पड़े। यह समय नियमित दिनचर्या के कार्यकाल के पूर्व या पश्चात् हो सकता है। प्रतिदिन उसी समय धारणा का अभ्यास किया जाना चाहिए।

शारीरिक दशा—धारणा के अभ्यास के समय शरीर हल्का, अक्लांत, स्वच्छ और सामान्य होना चाहिए। किसी भी मादक द्रव्य के प्रभाव से मुक्त रहना आवश्यक है तथा शरीर थका-मांदा भी न हो और न कोई अत्यधिक पीड़ा ही हो। अभ्यास के समय पेट खाली रहे।

मानसिक दशा—धारणा के अभ्यास के समय मन को चिंता, उद्वेग तथा किसी श्रमसाध्य अंतर्ग्रस्तता से मुक्त रखें। ईर्ष्या, घृणा, क्रोध तथा प्रतिशोध की भावना का परित्याग किया जाना चाहिए। अपने मन पर किसी प्रकार का बोझ या दबाव भी न आने देना चाहिए।

भोजन—निरामिष या सामिष जो भी आहार पसंद हो, उसी को लें। किन्तु एक बात का ध्यान रखें कि वह तामसी (उत्तेजक) न हो। भोजन में अधिक मसालों का प्रयोग भी न करें। संतुलित आहार ग्रहण करें, जिसका अर्थ है कि भोजन में सलाद, ताजा फल तथा सब्जियां शामिल रहें।

अभ्यास की विधि—धारणा के अभ्यास की अनेक विधियां हैं, किन्तु उन सबमें जो सर्वमान्य है, वो है किसी
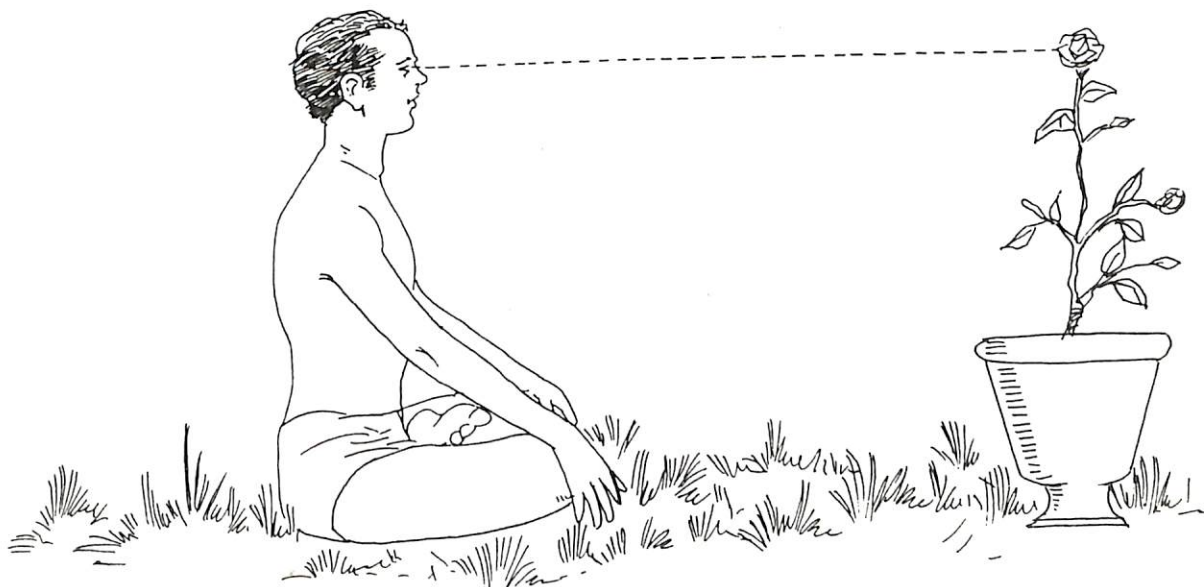
वस्तु पर अपने मन को केंद्रित या स्थिर करना। इस स्थिरता का अभ्यास शरीर के आंतरिक या बाह्य भाग पर किया जा सकता है या किसी अन्य वस्तु पर भी। व्यक्ति के शरीर के आंतरिक या बाह्य भाग के साथ अभ्यास जटिल,

कठिन तथा खतरनाक होता है। किन्तु किसी चुनी हुई वस्तु के साथ अभ्यास अपेक्षाकृत सरल, खतरों से रहित तथा अत्यधिक फलदायक होता है।

वस्तु किसी प्रकार की हो? यद्यपि वस्तु का चयन व्यक्ति की अपनी पसंद पर निर्भर है, फिर भी इस संबंध में चित्र, पुष्प, दीपक या मोमबत्ती का निर्देश दिया गया है। हमारे अपने मत से पुष्प ही अभ्यास के लिए सबसे उपयुक्त है। पहले डंठल सहित पुष्प को अक्षुण्ण रूप में किसी छोटे पात्र, जैसे कि गिलास, फूलदान या इसी प्रकार के किसी अन्य पात्र में रखें और निम्न चित्रानुसार पुष्प पर दृष्टि केंद्रित कर, धारणा-शक्ति को प्राप्त करने का अभ्यास नित्य करें।

दृष्टि-शक्ति का ज्ञान

योग के अनुसार हमें दो प्रकार की दृष्टि-शक्ति प्राप्त हैं : 1. आंखों की शक्ति द्वारा, 2. अंत:चक्षु द्वारा। योगियों का विश्वास है कि हम सबको अंत:चक्षु प्राप्त हैं, जिसकी स्थिति अग्र-ललाट में अर्थात् भौंहों के मध्य क्षेत्र में है। अभ्यास द्वारा अंत:चक्षु की इस गुप्त दृष्टि-शक्ति को विकसित किया जा सकता है।

जब अभ्यास द्वारा अंत:चक्षु की शक्ति विकसित तथा तीक्ष्ण हो जाती है, तब योगी उन चीजों को भी देखने का दावा करते हैं, जिन्हें बाह्य चक्षुओं से देख पाना संभव नहीं होता। जहां बाह्य चक्षुओं से केवल बाह्य रूप-से वस्तुएं दृष्टिगोचर हो सकती हैं, वहां अंत:चक्षुओं से प्रत्यक्षत: अदृष्टपूर्ण सुदूरवर्ती वस्तुएं भी दृष्टिगत हो सकती हैं। धार्मिक विश्वास एवं मूल्यों को मान्यता प्रदान करने वाले योगी अपने आराध्यदेव के साकार रूप के दर्शनार्थ अपने अंत:चक्षुओं की इस शक्ति की वृद्धि में अपना बहुत अधिक समय लगाते हैं। चूंकि हमारा उद्देश्य किसी देवता की आराधना अथवा दर्शन करना नहीं है, अत: हम इस शक्ति का केवल सीमित उपयोग करेंगे।
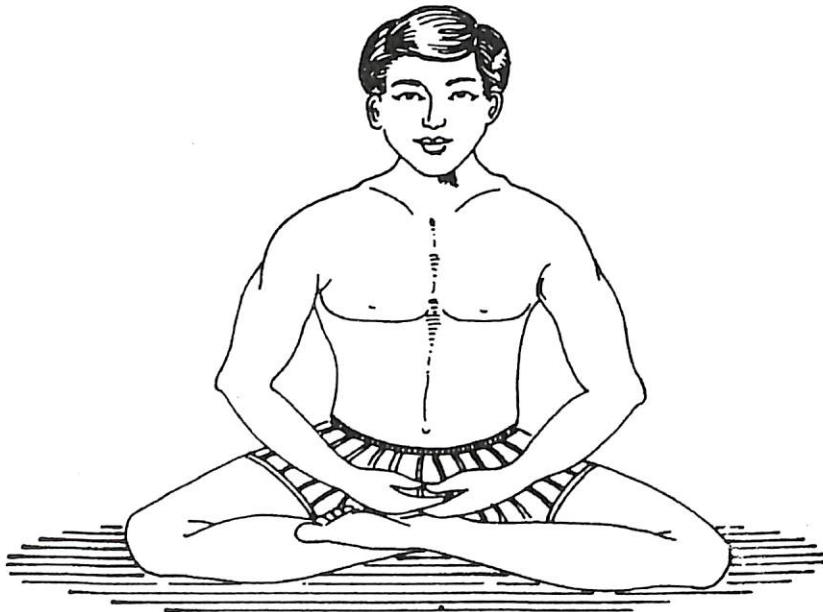
धारणा : सामने की स्थिति

प्रासंगिकता की दृष्टि से यह सीमा स्वेच्छा से गृहीत है। धारणा के आवश्यक पहलू के अभ्यास की उपयोगिता समझकर ही हम इसके अनावश्यक पहलुओं का यहां परित्याग कर रहे हैं। अंतर्दृष्टि-शक्ति में हमारी अभिरुचि उसी बिंदु तक है, जहां तक इसके कार्य एवं प्रकृति की जानकारी, इसके उपयुक्त तथा लाभकारी विकास में सहायक है।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण की सार्थकता तभी सरलता से समझ में आएगी, जब आप वास्तविक अभ्यास प्रारंभ करेंगे। जब आप किसी चीज को खुली आंखों से देखते हैं और फिर आप उसी चीज को अंत:चक्षु से देखने का प्रयास करते हैं, तो ऐसा करके आप धारणा का अभ्यास प्रारंभ कर देते हैं।

अंत:चक्षु द्वारा दृष्टिगोचरता में जैसी प्रगति होगी, उसी के अनुपात में धारणा की उपलब्धि में भी प्रगति होगी। इस प्रकार, अभ्यास की दीर्घता एवं अवधि इस पर निर्भर करेगी कि व्यक्ति-विशेष की रुचि तथा आवश्यकता क्या है।

धारणा के लिए उपरोक्त स्थिति (चित्रानुसार) में बैठना, उन लोगों के लिए कुछ कठिन एवं कष्टकर हो सकता है, जिन्हें फर्श पर बैठने का अभ्यास नहीं है। विशेषत: कुछ अमेरिकियों तथा पाश्चात्य देशों के योगाभ्यासियों के साथ यह बात हो सकती है। अत: यह सुझाव दिया जाता है कि इस आधार पर हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है। अभ्यासियों को देखकर यह आश्चर्य होगा कि केवल कुछ सप्ताहों के अभ्यास के पश्चात् बैठने में जो कठिनाई हो रही थी, वह दूर हो चुकी है। धारणा के लिए बैठने की दूसरी अवस्था निम्न चित्र के द्वारा ज्ञात की जा सकती है।

धारणा : बाएं पहलू की स्थिति

धारणा के अभ्यास के समय पूरी वायु को दोनों नासिका-छिद्रों द्वारा धीरे-धीरे तथा लगातार बाहर निकाल दें। जब श्वास-वायु का बाहर निकलना समाप्त हो जाए, एक सेकंड के लिए रुक जाएं और उसके बाद दोनों नासिका-छिद्रों से धीरे-धीरे तथा लगातार श्वास लेना प्रारंभ करें। जब श्वास लेना समाप्त हो जाए, तो पुन: एक सेकंड तक रुक जाएं और तब पहले की भांति श्वास छोड़ना प्रारंभ करें तथा जब यह समाप्त हो जाए, तो पुन: रुक जाएं।

अभ्यास के पहले दिन श्वास लेने तथा छोड़ने की यह क्रिया केवल पांच बार करें और समय के साथ-साथ इसे बढ़ाते जाएं। इस क्रिया से मुख्यत: पेट से संबंधित क्षेत्र प्रभावित होगा अर्थात् जब आप श्वास छोड़ रहे हों, तब पेट की मांसपेशियों को सिकुड़ना चाहिए। दूसरे शब्दों में जब आप श्वास छोड़ रहे हों, तब आपको अपने पेट का मेरुदण्डीय रज्जु (सुषुम्ना) की ओर भीतर ले जाना चाहिए। जब आप श्वास ले रहे हों, तब पेट की मांसपेशियों को फैलना चाहिए अर्थात् भीतर श्वास लेते समय पेट को आगे की ओर आ जाना चाहिए। पेट की मांसपेशियों के सिकुड़ने और फैलने की क्रिया लयबद्ध रूप में होनी चाहिए।

लयबद्ध श्वास-क्रिया के इच्छित चक्र पूरा करने के बाद कुछ मिनटों तक विश्राम करें। श्वास-क्रिया में आप जितना समय लगाते हैं, उसका लगभग चतुर्थांश समय विश्राम का होना चाहिए। किन्तु इस विश्राम में लेट नहीं जाना चाहिए।

विश्राम की स्थिति में सामान्य एवं स्वाभाविक रीति से श्वास लेते और छोड़ते रहें यानी श्वासक्रिया स्वाभाविक हो। यहां लयबद्ध श्वास-क्रिया के महत्त्व के बारे में जान लेना भी आवश्यक होगा। राजयोग के अनुसार यह लयबद्ध श्वास-क्रिया संपूर्ण शारीरिक प्रणाली में सामंजस्य ला देती है। यह श्वास-क्रिया जहां एक ओर स्नायु-तंत्र को सक्रिय एवं सशक्त बनाती है, उसी के साथ यह संपूर्ण शारीरिक प्रणाली या तंत्र को सुख पहुंचाती, शांति देती और सुव्यवस्थित भी करती है।

जब अभ्यास समाप्त हो जाए, तब भी स्थिरतापूर्वक शांत ही बैठे रहें। किन्तु अब, शरीर को ढीला करें और दो मिनट तक शिथिलन का विश्राम लेने की स्थिति में बैठें। जब आप यह कर लेते हैं, तब धारणा का आपका अभ्यास पूर्ण एवं समाप्त हो जाता है। अभ्यास-समाप्ति के पश्चात् आप भोजन करने, सोने या कोई अन्य कार्य करने लिए पूर्णतया स्वतंत्र हैं।

धारणा के अभ्यास की विधि से पूर्व, प्रारंभ में हमने पांच प्रकार की धारणाओं के बारे में बतलाया था। पंच धारणा में पंच महाभूतों की भावना होती है और साधक की चित्त उस-उस भूत एवं उसके अधिपति देवता में रमने लगता है। उस समय साधक के समक्ष अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं। उन विघ्नों से पार जाने में प्रयत्नशील साधक ही सिद्धि को प्राप्त हो पाता है।

उन विघ्नों में डाकिनी-शाकिनी आदि यक्षिणियां अनेक प्रकार के रूप दिखाकर चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने का प्रयत्न करती हैं। पहले वह अपना मादक और मनोहर रूप दिखाकर साधक को मोहित करती हैं। यदि वह मोहित नहीं होता, तो भयंकर रूप दिखाकर डराती हैं। उस समय राक्षसी या सिंहनी आदि उसे खाने को दौड़ती हैं। इस प्रकार यक्षिणियों का मादक या भयंकर रूप साधक को अंतर्दृष्टि से दिखाई देता है।

उस समय साधक को सावधान रहकर अपनी साधना में लगे रहना चाहिए। वह उनकी किसी भी कुचेष्टा से मोहित या भयभीत न होकर अविचल भाव से धारणा में चित्त को योजित रखे। इस प्रकार की अविचलता से उन विभिन्न रूपों का दिखाई देना स्वत: समाप्त हो जाता है। उसके लिए किसी प्रकार के प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यह सब साधक के योग की परीक्षा के लिए स्वप्न के समान मिथ्या माया ही है। इससे घबराने या भयभीत होने पर योग का भंग होना ही संभव है।

धारणा सिद्धि से आनंद की अनुभूति

इस प्रकार उक्त विघ्नों को मिथ्या समझकर दृढ़ चित्त से लक्ष्य की ओर बढ़ता हुआ साधक धारणा सिद्धि में पूर्ण रूप-से सफल होता है। उसे सत्-चित्-आनंद का अनुभव होने लगता है और दु:ख नाम की कोई वस्तु शेष नहीं रहती। जब ऐसी अवस्था प्राप्त हो तभी वह ध्यान का पूर्ण अधिकारी हो सकता है, इसलिए इस अवस्था की प्राप्ति के प्रयत्न में लगना ही कल्याणकारी होती है। इस विषय में निर्देश है—

यस्तु तिष्ठति कौन्तेय धारणासु यथाविधिं।
मरणं जन्मं दु:ख च सुखं च सविमुन्चति॥

''हे कौन्तेय! जो साधक विधिपूर्वक यौगिक धारणाओं का अभ्यास कर उन्हें सिद्ध कर लेता है, वह मरण, जन्म, दु:ख, सुख सभी से मुक्त हो जाता है।''

उपरोक्त श्लोक में ''मरणं जन्मं दु:खं च सुखं'' इत्यादि कहने से मरण को दु:ख और जन्म को सुख मानने का भी भाव प्रकट होता है, क्योंकि क्रम से मरण और जन्म की अनुभूति दु:ख और सुख की बनेगी। इससे भी यही सिद्ध हुआ कि दु:ख और सुख दोनों ही त्यागने योग्य हैं।

ग्रंथान्तर से धारणा विधि का वर्णन

''देहमध्यगते व्योम्नि बाह्याकाशं तु धारयेत्'', अर्थात् अपने शरीर में जो आकाश स्थित है, उसमें बाह्य आकाश की धारणा करें। शरीर में आकाश की स्थिति मूर्द्धा में मानी गई है। उसमें बाहरी आकाश की धारणा करने से आकाशी धारणा सिद्ध होती है। अब वायवी और आग्नेयी धारणा के विषय में कहते हैं—

*''प्राण बाह्यानिलं तद्वज्ज्वलने चाग्निमौदरे, ''*अर्थात् प्राण में बाह्य वायु की धारणा करनी चाहिए। यह वायवी धारणा हुई। जठराग्नि में बाह्य अग्नि की धारणा करें। इस प्रकार आग्नेयी धारणा का वर्णन हुआ। जल और पृथ्वी (पार्थिवी) की धारणा का वर्णन इस प्रकार है, *''तोयं तोयाशं भूमि भूमिभागे महामुने, ''* अर्थात्—हे महामुने! शरीरस्थ तरली में बाह्य जल की ओर पार्थिव भाग में संपूर्ण पृथ्वी की धारणा करनी चाहिए।

इस प्रकार पंच धारणाओं का वर्णन करते हुए आगे कहा गया है कि पृथ्वी के अंश भाग में ब्रह्मा का, जल के अंश भाग में विष्णु का, अग्नि के अंश भाग में रुद्र का, वायु के अंश भाग में ईश्वर का और आकाश के अंश भाग में सदाशिव का ध्यान करें।

इस प्रकार पंच धारणाओं का यह वर्णन साधकों के लिए अध्ययन के योग्य है। इसे ठीक प्रकार से समझ कर अभ्यास में तत्पर होना चाहिए। ज्ञानी पुरुष को अपनी आत्मा में बोधमय, आनंदमय और कल्याणमय परमात्मा की धारणा नित्य प्रति करनी चाहिए। इस धारणा के अभ्यास से सभी पापों की वृद्धि होती है, कार्य रूपी ब्रह्मा आदि को अपने-अपने कारण में लीन करके, अनिर्वचनीय परम कारण और अव्यक्त परमात्मा की धारणा अपनी ही आत्मा में करें तथा ऐसा करते समय अपने मन को सर्व कलामय ओंकार रूप परमात्मा में लीन कर दें, साथ ही इन्द्रियों को विषयों से निवृत्त करके आत्मा में ही योजित कर दें। परमात्मा का पूर्ण अभ्यास सिद्ध होने पर साधक कुण्डलिनी जाग्रत करने में समर्थ हो जाता है। इसलिए धारणा की सिद्धि में पूर्ण प्रयत्नशील होना ही श्रेयस्कर है।

ध्यान अर्थात् एकरस होना

धारणा के पश्चात् ध्यान का सोपान आता है। महर्षि पतंजलि ने इसकी परिभाषा, *''तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम्''* इन शब्दों में की है। जब धारणा के द्वारा प्रत्ययों की एकतानता हो जाती है अर्थात् वृत्तियों का प्रवाह एक रस हो जाता है तो उसको ध्यान कहते हैं। ध्यान के तीन प्रकार हैं—

स्थूल ध्यान—दृश्य अथवा अदृश्य पदार्थों की ज्ञान-प्राप्ति के लिए जो ध्यान किया जाता है, वो ही स्थूल ध्यान है। यह ध्यान प्राय: सभी प्रकार के साधकों के लिए सुगम होता है, विशेषकर किसी भी विधि से साधना आरंभ करने वालों के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है। ध्यान में नेत्रों को बंद कर, हृदय में, नासिका के अग्रभाग में अथवा भौंहों के मध्य में दृष्टि स्थिर करनी चाहिए। किसी भी ध्येय में तन्मय हो जाना ध्यान है।

ज्योतिर्ध्यान—इस ध्यान का वर्णन प्राय: सभी ग्रंथों में नहीं मिलता। न इसका प्रचलन विस्तृत रूप से है। घेरण्ड संहिता में इसका विवेचन *''मूलाधारे कुण्डलिनी भुजगाकाररूपिणी''* इत्यादि से किया गया है। उसके अनुसार

मूलाधार में सर्पाकार से कुण्डलिनी शक्ति रहती है, वही दीप कालिका के आकार में जीवात्मा की विद्यमानता है। यहां तेजोमय परात्पर ब्रह्म का ध्यान करना ही तेजोध्यान अथवा ज्योतिर्ध्यान है।

सूक्ष्म ध्यान—घेरण्ड ऋषि ने सूक्ष्म ध्यान में कुण्डलिनी शक्ति के ध्यान का निर्देश किया है, *''आत्मनः सहयोगेन नेत्ररन्ध्र विनिर्गता''*, इत्यादि के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति आत्मा के साथ संयुक्त होकर नेत्र रन्ध्रों से निकलती और ऊर्ध्वभाग में स्थित राजमार्ग में विचरण करती है, किन्तु वो अपने सूक्ष्मत्व और चंचलत्व के कारण दिखाई नहीं देती। इसका ध्यान शाम्भवी मुद्रा के साथ करना चाहिए। इसमें जिस राजमार्ग का वर्णन है, उसे महापथ भी कहते हैं। यह शरीर के ऊर्ध्वभाग में स्थित है। योगकुण्डल्युपनिषद् में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है, *''शरीरे सकलं विश्व पश्यत्माविभेदतः। ब्रह्माण्डोऽयंमहामार्गो राजदन्तोर्ध्वकुण्डली॥''* अर्थात् अभ्यास होने पर योगी अपने शरीर में ही संपूर्ण विश्व को देखने लगता है, क्योंकि जिह्वा में ब्रह्मरंध्र पर्यन्त जो महामार्ग है, उसी में ब्रह्माण्ड की स्थिति है। इसी राजमार्ग में कुण्डलिनी शक्ति विहार करती है।

शम (Quietness)

शांत-निश्चल ध्यान का महत्व इससे ज्यादा और क्या हो सकता है, इससे लक्ष्य को बेधने की सामर्थ्य आती है। महाभारत की यह कथा आपने पढ़ी ही होगी, जिसमें अर्जुन ने एकाग्रता की साधना के परिणामस्वरूप पक्षी की आंख को भेद दिया। द्रौपदी के स्वयंवर में मछली की आंख को भेदना अर्जुन की 'ध्यान' की पराकाष्ठा थी।

ध्यान का महत्व

ध्यान का महत्त्व इससे ज्यादा और क्या हो सकता है इससे लक्ष्य को बेधने की सामर्थ्य आती है। महाभारत की वह कथा आपने पढ़ी ही होगी, जिसमें अर्जुन ने एकाग्रता की साधना के परिणामस्वरूप पक्षी की आंख को भेद दिया। द्रौपदी के स्वयंवर में मछली की आंख को भेदना अर्जुन के ध्यान की पराकाष्ठा थी।

अति प्राचीन काल से साधकों ने मन को एकाग्र करने के उपायों की खोज की है। एकाग्रता के साथ-साथ उसके अभाव के कारणों और उनको दूर करने के साधनों पर भी विचार किया गया है। इस प्रकार भारतीय मनोविज्ञान ने अवधात, उसके विभिन्न प्रकार, उसके निर्णायकों के साथ-साथ अनवधान और उसके कारणों पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। पंतजलि ने अष्टांग योग के सिद्धांत में ध्यान को सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

योग में ध्यान और उसके साधनों का विस्तृत विवेचन मिलता है। सांख्यदर्शन के अनुसार, ध्यान के लिए रजस गुण का दमन आवश्यक है, क्योंकि वही चित्त को चलायमान रखता है। जब मन में तमस और रजस गुणों पर सत्त्व गुण का अधिकार हो जाता है, तो वह ध्यानयुक्त हो जाता है। इसके लिए चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जाता है। सत्त्व गुण बढ़ने के साथ-साथ चित्त-वृत्तियों का निरोध होता जाता है। इसके लिए वैराग्य और तितिक्षा तथा विवेक की आवश्यकता होती है। पर-वैराग्य और पर-ज्ञान का घनिष्ठ संबंध है। ज्ञान के होने से वैराग्य उत्पन्न होता है, क्योंकि मोह दूर होता है।

यद्यपि सांख्य निरीश्वर है, किन्तु योग में ईश्वर को मान्यता दी गई है और ईश्वर प्रणिधान को योग का साधन माना गया है। ईश्वर ध्यान लगाने के लिए सर्वोत्तम विषय है। मन में शम (Quietness) के विकास से ध्यान में सहायता मिलती है। पंतजलि के अनुसार, *''अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।''* अर्थात् अभ्यास और वैराग्य से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है।

वाचस्पति मिश्र ने ध्यान की परिभाषा करते हुए लिखा है, *''एकाग्रम् एकतानम्।''*इस प्रकार ध्यान मन का एकाग्र और एकतान हो जाना है। दार्शनिक विश्वनाथ के शब्दों में, *''प्रणिधानम् चित्त एकाग्रम्,''*अर्थात् प्रणिधान में चित्त एकाग्र हो जाता है। इस प्रकार ध्यान की क्रिया में चुनाव होता है। इसमें कुछ वस्तुओं को छोड़कर किसी विशेष वांछनीय वस्तु पर चित्त एकाग्र किया जाता है। इसमें मन प्रतिकूल वस्तुओं से हटकर अनुकूल विषय पर लग जाता है।

शुकदेव की कथा आती है पुराणों में। शुकदेव महर्षि व्यास के पुत्र थे। शुकदेव की जिज्ञासा को अट्ठारह पुराणों के रचयिता व्यास शांत न कर पाए, तो उन्होंने शुकदेव को महाराज जनक के पास जाने को कहा। जनक का एक नाम विदेह भी है। वे शास्त्र में पारंगत तो थे ही, ब्रह्मनिष्ठ भी थे।

पिता की आज्ञा से शुकदेव मिथिला पहुंचे। शुकदेव के आगमन की सूचना जब विदेह को मिली, तो उन्होंने शुकदेव को महलों में बुलाया। शुकदेव ने राजप्रासाद में जनक को जिस स्थिति में देखा, उसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। राजा जनक का एक हाथ नग्न सुंदरी के स्तनों पर रखा हुआ था। वे कोई प्रतिक्रिया करते कि जनक ने शुकदेव के आगमन का आशय पूछा। दृष्टि को जमीन में गाड़े हुए ही शुकदेव ने अनमने भाव से अपने आगमन का कारण बताया। बताते-बताते शुकदेव की नजर जिस पर पड़ी वह बात पहले से भी ज्यादा चौंकाने वाली थी। जनक का एक पैर दहकते अंगारों के ऊपर था।

''दोनों मायाजन्य हैं, इनमें उलझकर विक्षिप्त होना साधक के लिए उपयुक्त नहीं। अपनी जिज्ञासा और समाधान पर ध्यान को एकाग्र करो।'' जनक ने शुकदेव को सचेत किया।

इतनी देर में दूध से लबालब भरा एक पात्र सेवक ले आए थे। जनक ने समझाया, ''आत्मसाधना और आत्मतत्त्व के जिज्ञासु पर बाद में विचार करेंगे। यह लो इस पात्र को लेकर आप पूरे नगर के दर्शन कर आएं। ध्यान रहे, दूध की एक बूंद भी नीचे न गिरे।''

शुकदेव जब नगर घूमकर वापस आए, तो जनक ने पूछा, ''कैसी लगी मिथिला नगरी?''

शुकदेव ने जवाब दिया, ''नगरी मैंने देखी ही कहां? मेरा पूरा ध्यान तो आपकी इस आज्ञा के पालन में लगा हुआ था कि दूध की एक बूंद भी न गिरे।''

दृश्य था, दृष्टि थी। शुकदेव ने फिर भी कुछ नहीं देखा। ध्यान में एक लक्ष्य होता है सामने। यह इसका पोजिटिव पक्ष है। इसका नकारात्मक पहलू है लक्ष्य के अलावा अन्य दृश्य-वस्तुओं का पूर्णतया परिहार। विक्षेप रहित एकाग्रता के रूप में भी ध्यान की परिभाषा की जा सकती है।

एकाग्रता में दृष्टि और मन के संतुलन की आवश्यकता होती है

अनुकूल विषय पर ध्यान का लगना विधायक और प्रतिकूल विषय से हटना निषेधात्मक पहलू है। मन के अनियंत्रित रहने से अनवधान होता है। नियंत्रित मन में ध्यान सरलता से लगता है। ध्यान में मन के साथ-साथ इन्द्रियों की भी एकाग्रता सम्मिलित है। इस प्रकार प्रत्याहार अर्थात् इन्द्रियों को उनके विषय से समेट लेना ध्यान में सहायक कारक है। अनवधान के अभाव से भी ध्यान लगता है। इसलिए कहा गया है, *''एकाग्रम् विक्षेप रहितम् मन: ।''*

ध्यान की प्रकृति

ध्यान की उपरोक्त परिभाषा से उसकी प्रकृति स्पष्ट होती है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है, ध्यान न लगने का कारण रजस और तमस गुण होते हैं। रजस गुण बेचैनी और अत्यधिक सक्रियता का कारण होता है। तमस गुण से आलस्य, प्रमाद, तंद्रा आदि उत्पन्न होते हैं। ये सब ध्यान में बाधक कारक हैं। अत: मन को एकाग्र करने के लिए सत्त्व गुण की वृद्धि की जानी चाहिए। इसलिए भारतीय योग ग्रंथों में आहार की शुद्धता पर बल दिया गया है, क्योंकि आहार शुद्ध होने से सत्त्व गुण बढ़ता है, जिससे मन को एकाग्र करने में सहायता मिलती है।

ध्यान के लक्षण

ध्यान की प्रकृति बतलाते हुए बुद्ध घोष ने उसके निम्नलिखित लक्षण बतलाए हैं—

- ध्यान में चेतना का क्षेत्र सीमित हो जाता है।
- ध्यान से चेतना की विषय वस्तु स्पष्ट हो जाती है।
- ध्यान से प्रकाश का कारक पूर्ण विकसित हो जाता है।
- ध्यान शांति उत्पन्न करता है।

ध्यान बढ़ने के साथ-साथ उसके उपरोक्त लक्षण भी बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि ध्यान लगाने के लिए मन को उन सभी विषयों से हटाना पड़ता है जो कि ध्यान में बाधक हैं। इसके लिए शरीर और इन्द्रियों की क्रिया को नियंत्रित करना पड़ता है तथा शरीर की क्रियाओं को रोकना पड़ता है।

गीताकार ने कहा है कि मन के द्वारा बाह्य इन्द्रियों पर नियंत्रण किया जा सकता है और आत्मा से मन का नियंत्रण किया जा सकता है। केवल आत्म नियंत्रित व्यक्ति ही मन पर नियंत्रण कर सकता है। पूज्यपाद ने ध्यान की प्रकृति को बतलाते हुए उसे वांछनीय विषय पर मन को एकाग्र करना कहा है। इसके लिए अनेक विषयों को न लेकर किसी एक विषय पर ध्यान जमाना चाहिए। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ध्यान में मन, वचन, कर्म को अनेक विषयों से हटाकर किसी एक विषय पर लगाया जाता है।

ध्यान और प्रत्यक्षीकरण

प्रत्यक्षीकरण की क्रिया में ध्यान की आवश्यकता होती है। ध्यान के बिना प्रत्यक्षीकरण संभव नहीं है। ध्यान उसमें एक सोपान है। भारतीय विचारकों ने निर्विकल्प और सविकल्प प्रत्यक्ष में अंतर करते हुए दिखलाया है कि पहले कम और दूसरे में अधिक ध्यान की आवश्यकता पड़ती है। विकल्प न होने पर ध्यान की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती, जितनी आवश्यकता विकल्प होने पर पड़ती है।

प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांत के अनुसार इसमें आत्मा, ज्ञानेन्द्रिय, मनस और अंत:करण की सहायता से विषय के संपर्क में आता है। इसमें मनस और इन्द्रिय मात्र अचेतन होने के कारण स्वयं प्रत्यक्षीकरण नहीं कर सकते। यह कार्य आत्मा का है। ध्यान में वस्तु की उत्तेजना आत्मा को प्रभावित करती है, जिससे वस्तु के प्रति चेतना उत्पन्न होती है और उत्तेजना चेतना के क्षेत्र में आ जाती है। इस प्रकार सविकल्प प्रत्यक्षीकरण में ध्यान अत्यंत आवश्यक है।

ध्यान और स्मृति

किसी वस्तु पर ध्यान लगाने से वह स्मृति में स्थान पा लेती है और बाद में उसकी याद आती है। कोई वस्तु

शीघ्र और कोई कठिनता से याद आती है। इसका कारण भी स्मृति से ध्यान का संबंध है। ध्यान रहने पर स्मृति तीव्र होती है। स्मृति के लिए यह आवश्यक है कि मन को अनावश्यक विचारों से खींचकर आवश्यक विषय पर केंद्रित किया जाए। ऐसा होने से उसके स्मरण में सरलता होती है। ध्यान रहे, स्मृति का कार्य भी मनस नहीं करता, बल्कि उसके माध्यम से आत्मा करती है। अत: सक्रिय स्मृति के लिए सक्रिय ध्यान आवश्यक है।

ध्यान और चेतना

ध्यान स्पष्ट और विवेकयुक्त चेतना की अवस्था है। जब तक हम किसी वस्तु की ओर ध्यान नहीं देते, तब तक उसकी स्पष्ट चेतना नहीं होती, किन्तु जब विशिष्ट इन्द्रिय की सहायता से किसी वस्तु पर ध्यान को केंद्रित किया जाता है, उसकी स्पष्ट चेतना होती है। दूसरे शब्दों में ध्यान की एकाग्रता बढ़ते जाने के साथ-साथ चेतना का क्षेत्र घटता जाता है और विषय की स्पष्टता बढ़ती जाती है।

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार ध्यान की स्थिति में अंत:करण विषय का रूप ग्रहण कर लेता है। इसमें ध्यान और चेतना का घनिष्ठ संबंध स्पष्ट होता है। समाधि की अवस्था में मन विषय से पूर्णतया एकाग्र हो जाता है और दोनों में कोई अंतर नहीं रहता। इस प्रकार आत्म चेतना और विषय चेतना एकरूप हो जाते हैं।

ध्यान और रुचि

ध्यान रुचि पर निर्भर होता है। हम अपने परिवेश की प्रत्येक वस्तु पर ध्यान नहीं देते, केवल उसी वस्तु पर ध्यान देते हैं, जिसमें हमें रुचि होती है। जब कभी कोई व्यक्ति (या साधक) कुण्डलिनी जगाने के लिए सुषुम्ना नाड़ी पर ध्यान लगाता है, तो उसकी रुचि केवल नाड़ी पर ही स्पष्ट होती है। मन में अनेक प्रकार की रुचियां होने पर भी उनमें सबसे अधिक प्रबल रुचि ही ध्यान को निर्धारित करती है।

ध्यान और इच्छा

पूज्यपाद के अनुसार प्रत्यक्षीकरण के चार सोपान हैं, जिसमें सबसे पहले वस्तु की सामान्य रूपरेखा का निरीक्षण किया जाता है। यह अवग्रह है। इसके बाद ईहा अथवा इच्छा आती है जिसमें वस्तु के विशेष गुण आत्मा में रुचि उत्तेजित करते हैं। तीसरी स्थिति अवाय है जिसमें आत्मा वस्तु के कुछ विशेष गुणों पर ध्यान देती है और चौथी स्थिति धारणा की है। इससे इच्छा और ध्यान का संबंध स्पष्ट होता है। ध्यान को एकाग्र करने का उपाय बतलाते हुए नेमीचंद ने लिखा है कि अन्य वस्तुओं से रुचि हटाकर केवल एक ही विषय में रुचि लगानी चाहिए, इससे ध्यान सहज हो जाता है।

अनवधान

अनवधान का एक प्रकार ध्यान विचलन (Fluctuation) है, जिसमें मन एक विषय से दूसरे विषय की ओर सतत भागता रहता है। मन के इस विचलन को एक वस्तु पर ध्यान एकाग्र करके दूर किया जा सकता है। योग साधना पद्धति में मन के विचलन को रोकने के अनेक उपाय बतलाए गए हैं। तत्वार्थ राजवार्तिक में भट्ट अकलंक ने ध्यान विचलन के बारे में इस प्रकार कहा है, "ध्यान मन की एकाग्रावस्था है। इसकी उल्टी स्थिति अनेकाग्रता अथवा अनवधान कहलाती है। इसमें मन अनेक अवांछित वस्तुओं में भागा फिरता है। इसका कारण राग, द्वेष अथवा अविद्या इत्यादि दोष हैं। इसके मूल में रजस गुण होता है। साधारण रूप-से मन की इस अनेकाग्र दशा को विक्षप्त दशा कहा जाता है। इसमें मन कभी-कभी एकाग्र भी हो जाता है, किन्तु मन के अत्यधिक अनेकाग्र हो जाने पर विक्षिप्त दशा कहलाती है, जिसमें मन कभी भी एकाग्र नहीं हो पाता और चलायमान अथवा बेचैन रहता है। अनेकाग्रता को दूर करने के लिए मन में सत्त्व गुण बढ़ाया जाना चाहिए।" अनेकाग्रता के कारण निम्नलिखित हैं—

रोग

व्यास के अनुसार शरीर में वात, पित्त और कफादि विभिन्न तत्त्वों का समन्वय बिगड़ जाने से कोई विशेष

इन्द्रिय कम या अधिक काम करने लगती है। इससे रोग की दशा उत्पन्न हो जाती है और बेचैनी बढ़ती है।

मानसिक आलस्य

इससे मन में सक्रियता का अभाव हो जाता है।

संशय

किसी वस्तु के सही रूप के विषय में ज्ञान न होने को संशय कहते हैं। इससे मन एकाग्र नहीं हो पाता।

प्रमाद

इसमें व्यक्ति आवश्यक कार्यों को नहीं करता, जिससे वो विक्षिप्त बना रहता है।

निष्क्रियता

मन में तमस गुण और शरीर में आलस्य की अधिकता के कारण उत्पन्न हुई निष्क्रियता विक्षेप का मुख्य कारण है।

अप्रत्याहार

जबकि प्रत्याहार ध्यान में सहायक स्थिति है, अप्रत्याहार अर्थात् इन्द्रियों को उनके विषय-भोगों से न हटा सकना विक्षेप का कारण है।

भ्रम

किसी वस्तु का गलत प्रत्यक्षीकरण भ्रान्ति अथवा भ्रम कहा जाता है। यह भी विक्षेप का एक प्रमुख कारण है।

मानसिक अस्थिरता

मन के अस्थिर होने से विक्षेप उत्पन्न होता है और ध्यान नहीं जमता।

मानसिक बेचैनी—इससे मन अनेक विषयों की ओर भागता फिरता है।

निम्नलिखित उपाय विक्षेप को दूर करने के लिए हैं—

अभ्यास

विक्षेप का मूल कारण चित्त-विकार है, जिससे प्राण स्पंदन होता है। इसके दमन के लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता है।

प्राणायाम

योग साहित्य में प्राणायाम को ध्यान एकाग्र करने में सहायक माना गया है। प्राणायाम से चित्त की शुद्धि होती है, जिससे मन को एकाग्र करने में सहायता मिलती है।

वैराग्य

वैराग्य की भावना उत्पन्न होने पर समस्त विषय-भोगों से मन को हटाया जा सकता है। इसके लिए इन विषय के दोषों के चिंतन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंत में इन वस्तुओं से दु:ख ही मिलता है और कल्याण नहीं होता। वैराग्य से आत्मा और अनात्मा में अंतर संभव हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साधक को अनात्मा को छोड़कर आत्मा में मन को केंद्रित करना चाहिए। वैराग्य की भावना उत्पन्न हो जाने पर मन की एकाग्रता सहज हो जाती है। माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार, *''ज्ञानाभ्यास वैराग्य द्वयोपायेन मन: योजयेत्,''* अभ्यास के लिए मन को उसके स्वाभाविक विषय से हटाकर धैर्यपूर्वक उपयुक्त विषय पर लगाना चाहिए।

प्रेम, करुणा

विक्षेप को दूर करने के लिए भले व्यक्तियों के लिए प्रेम, दु:खी व्यक्तियों के लिए करुणा तथा दुष्ट व्यक्तियों के प्रति तटस्थता का भाव उत्पन्न किया जाना चाहिए।

सत्त्व गुण का विकास

विक्षेप का कारण रजस और तमस का बढ़ जाना है। इसलिए इनके दमन और सत्त्व गुण के विकास से विक्षेप दूर किया जा सकता है। बुद्धि में सत्त्व गुण बढ़ने पर मन के एकाग्र हो जाने से उसकी सहायता से मन को नियंत्रित किया जा सकता है।

सतसंग

साधु और सज्जन व्यक्तियों के संपर्क से मन के अनेक विक्षोभ और उत्तेजनाएं दूर हो जाती हैं और उसे एकाग्र करने में सहायता मिलती है।

इष्ट पूजा

विक्षेप दूर करने का एक उपाय इष्ट पूजा है। इष्टदेव पर मन को केंद्रित करना सरल होता है।

ओ३म् स्मरण

विक्षेप दूर करने का एक उपाय रहस्यवादी महावाक्य ओ३म् पर ध्यान को केंद्रित करना है। इसके बार-बार स्मरण करने से मन को एकाग्र करने में सहायता मिलती है।

चित्त शुद्धि

विक्षेप दूर करने के हेतु चित्त-शुद्धि अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि गुणों का विकास करना चाहिए। इससे मन के दुर्गुण दूर हो जाएंगे और सत्त्व गुण बढ़ेगा। सत्त्व गुण बढ़ने से मन, ध्यान को एकाग्र करने में सहायता मिलेगी तथा विक्षेप दूर होगा।

ध्यान के निर्णायक

अनेक विचारकों ने विक्षेप को दूर करने के साथ-साथ ध्यान जमाने के कारकों पर भी विचार किया है। इससे ध्यान के निर्णायक अर्थात् वे कारक स्पष्ट होते हैं, जिनसे ध्यान का होना या न होना निश्चित होता है। ध्यान के निर्णायक मुख्य कारक निम्नलिखित हैं—

विक्षेप के कारक

विक्षेप के कारकों के उपस्थित होने पर ध्यान नहीं लगता। ध्यान लगाने के लिए इनका दूर होना आवश्यक है। इसलिए योग की पद्धति में ध्यान के पहले यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा के सोपान बतलाए गए हैं। आसन से शरीर पर नियंत्रण होता है। प्रत्याहार से इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है। यम और नियम क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार शरीर और उसकी चेष्टाओं तथा इन्द्रियों आदि के नियंत्रण के बाद ही ध्यान जम पाता है।

तीव्रता

उत्तेजना की तीव्रता ध्यान का निर्णायक कारक है, क्योंकि वह इन्द्रिय को प्रभावित करती है। उससे अनायास ही वस्तु की ओर ध्यान चला जाता है। उससे चेतना का क्षेत्र सीमित हो जाता है।

रुचि

रुचि ध्यान का आंतरिक निर्णायक है। हम उन वस्तुओं की ओर ध्यान देते हैं, जिनमें हमारी रुचि होती है। रुचि से इच्छा उत्पन्न होती है और इच्छा से ध्यान निर्धारित होता है।

इच्छा

किसी वस्तु में इच्छा या अनिच्छा होना, उसकी ओर ध्यान अथवा विक्षेप निर्धारित करता है।

धारणा

अन्य वस्तुओं की ओर से ध्यान हटाने से विशेष स्थान या वस्तु में ध्यान लगाने में सहायता मिलती है। धारणा ध्यान का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है।

अभ्यास

अभ्यास का अर्थ मन को अन्य वस्तुओं से हटाकर विशेष वस्तु पर लगाने की क्रिया को बार-बार दोहराना है। इससे ध्यान निर्धारित होता है।

धृति

धृति के अभाव में ध्यान नहीं जमता। धृति ध्यान के निर्धारण का कारक है। इससे किसी लक्ष्य की ओर ध्यान एकाग्र करने में सहायता मिलती है। यह ध्यान का आत्मगत कारक है।

भाव

विभिन्न प्रकार के भाव अथवा संवेग ध्यान के आत्मगत निर्धारक हैं। प्रेम के कारण हम विशेष व्यक्तियों की ओर ध्यान देते हैं। घृणा के कारण घृणित वस्तुओं अथवा व्यक्तियों की ओर ध्यान जाता है। इसी प्रकार क्रोध, भय, शोक, लोभ, ईर्ष्या आदि भाव इन्हें उत्पन्न करने वाली वस्तुओं और व्यक्तियों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। अहंकार से व्यक्ति अपने काल्पनिक गुणों की ओर ध्यान देता है। जहां भाव ध्यान आकर्षित करते हैं, वहां वे विक्षेप के कारण भी हैं। जिन वस्तुओं से भावात्मक आघात लगता है, उसके प्रति मन में विक्षेप होता है।

ध्यान के भावात्मक कारकों में मनोवैज्ञानिकों ने काम को अत्यधिक महत्त्व दिया है और इसे उतने ही व्यापक अर्थों में लिया है, जितने व्यापक अर्थों में फ्रायड ने सेक्स शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार काम, ध्यान आकर्षित करने का मुख्य कारण है। इसको जीते बिना मन को एकाग्र नहीं किया जा सकता है।

संस्कार

अनेक विचारकों का यह कहना है कि व्यक्ति में पूर्वजन्म के अनेक संस्कार उसे कुछ वस्तुओं और व्यक्तियों की ओर ध्यान देने और अन्य वस्तुओं, व्यक्तियों और लक्ष्य से ध्यान हटाने के लिए बाध्य करते हैं। ये पूर्व संस्कार ही स्वभाव का निर्माण करते हैं। इसलिए स्वभाव के रूप में भी ये ध्यान का निर्धारण करते हैं। अस्तु, संस्कारों को नियंत्रित और संशोधित करने के लिए निरंतर लंबे काल तक अभ्यास की आवश्यकता है।

शारीरिक कारक

चिकित्साशास्त्र में ध्यान और विक्षेप के अनेक शारीरिक कारकों का विश्लेषण किया गया है। इनका महत्त्व बतलाते हुए इन कारकों को नियंत्रित करने के उपाय भी बतलाए गए हैं। उदाहरण के लिए 'भट्ट अकलंक' ध्यान लगाने के लिए अनुकूल भौतिक परिवेश, अनुकूल आसन, प्राणायाम, शारीरिक क्रियाओं का दमन, राग, द्वेष और मोह का दमन तथा शरीर में आलस्य और निद्रा का नियंत्रण आवश्यक मानता है।

'ब्रह्मदेव' के अनुसार, लक्ष्य पर ध्यान लगाने के लिए वैराग्य, राग और द्वेष से छुटकारा, शीत, उष्ण, भूख, प्यास आदि पर विजय, इच्छा और द्वेष से स्वतंत्रता तथा विवेक और ज्ञान की आवश्यकता होती है। भगवद् गीता में ध्यान को एकाग्र करने के अनेक उपाय बतलाए हैं। गीता के अनुसार शुद्ध आहार लेने से बुद्धि में सत्त्व गुण बढ़ता है, जिससे स्मृति पुष्ट होती है और लक्ष्य पर ध्यान लगाने में एकाग्रता बढ़ती है।

समाधि : स्वरूप शून्यता का दूसरा नाम

योग का लक्ष्य और सर्वोच्च सोपान तथा अष्टांग योग का आठवां अंग "समाधि" है। योग में धारणा से लेकर समाधि तक एक ही प्रक्रिया चलती है जो धारणा में आरंभ होकर समाधि में समाप्त हो जाती है। शास्त्र का कथन है, *दिन द्वादशकेन स्यात्समाधिः प्राण संयमात्* अर्थात् जब निरंतर बारह दिनों तक शरीर के भीतर प्राणवायु का संयम हो, तब समाधि होती है। अभिप्राय यह कि साधक जब बारह दिनों तक प्राणवायु को शरीर के भीतर तदाकार वृत्ति से रोककर ब्रह्मानंद में लीन हो जाए, तब वो अवस्था समाधि कहलाती है। योगदर्शन में समाधि का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि *"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"* अर्थात् जब ध्येयमात्र की ही प्रतीति हो और चित्त

का अपना स्वरूप शून्य हो जाए, वो ही समाधि है अर्थात् समाधि में त्रिपुटी का लय हो जाता है। त्रिपुटी का अर्थ है धारणा ध्यान में बदल जाए और ध्यान समाधि में बदल जाए अर्थात् मन ध्येय के अनुसार हो जाता है। चूंकि ध्यान योग में ध्याता तो, अपना व्यक्तित्व ईश्वर रूपी सागर में विसर्जित कर देता है और ईश्वर का निमित्त मात्र बनने तक निमग्न बना रहता है। ध्यान रहे समाधि, ध्यान की परिपक्व अवस्था है। धारणा ध्यान की परिपक्व अवस्था है और धारणा प्रत्याहार के अभ्यास से पकता है।

ध्यान रहे आत्मा परमात्मा का ही अंश है। जो गुण परमात्मा में है वही गुण आत्मा में है। इसलिए समाधि से परमात्मा के ही गुणों का जीवन में प्रस्फुटन होने लगता है। समाधि वह अवस्था है जहां आनन्द ही आनन्द है। जिसके बाद वह साधक जब भौतिक जगत में लौटता है तो उसके जीवन में चिन्ता, भय, तनाव, निराशा, अकर्मण्यता विस्मृति, मानसिक विकार जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, परदोष दर्शन समाप्त हो जाते हैं। वह पूर्ण कर्मयोगी बन जाता है। फिर भी वह अपने को अकर्ता ही मानता है और उसके जीवन में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, स्वाध्याय, संतोष, तपस्या, ईश्वर प्रणिधान स्वाभाविक गुण बन जाते हैं।

समाधि के विविध मार्ग

समाधि सिद्धि के अनेक मार्ग हैं। अष्टांग, भक्त योगी को भगवत प्रेम द्वारा 'भाव-समाधि' वेदान्ती को मिथ्यात्व बुद्धि और अन्वय की रीति से सच्चिदानन्द के चिन्तन द्वारा 'भेद-समाधि' प्राप्त होती है। ध्यान रहे उपरोक्त राजयोगी, भक्तियोगी एवं ज्ञानयोगी को केवल उसका शरीर हिलाकर या शंख आदि ध्वनि बजाकर उसकी समाधि से उसे सामान्य चेतना में ला सकते हैं किन्तु हठयोगी के साथ यह व्यवहार नहीं सफल होता क्योंकि हठ योग का साधक सारे शरीर से प्राण को खींचकर ऊपर शिर के ऊपरी भाग सहस्रार चक्र में ले जाता है तब वह समाधि में प्रवेश करता है। हठयोगी समाधि में कई वर्षों तक पृथ्वी के नीचे दबे रहते हैं।

समाधि का गणित

यदि ध्यान योग का अध्यासी अपने मन को किसी एक वस्तु पर अथवा मूर्ति पर दस सेकेण्ड (ढाई श्वास-प्रश्वास) तक स्थिरता से एकाग्र कर सके तो यह धारणा होती है। ऐसी दस धारणाओं (पच्चीस श्वास-प्रश्वास) को ध्यान कहते हैं। दस ध्यान (दो सौ पचास श्वास-प्रश्वास) से समाधि बनती है।

ईश्वरी ध्यान जब समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह अपनी चेतना खोकर ध्येय के साथ एकाकार हो जाता है। पुन: समझ लें ईश्वरी समाधि के फलस्वरूप रहस्यमयी ज्ञान की एक झलक मात्र से सारे भौतिक जगत की सत्ता का अन्त हो जाता है और संसार का स्मरण या विचार या संकीर्तन आदि आत्मा को बिलकुल छोड़ देता है। जिससे उसके शरीर, इन्द्रियों, मन एवं बुद्धि को गहरा विश्राम मिल जाता है और संसार में पुन: पूर्ववत् वैसी ही शक्ति से भर जाता है जैसे जब हम स्वप्न रहित प्रगाढ़ निद्रा के बाद अनुभव करते हैं किन्तु प्रगाढ़ निद्रा की अवस्था में जितने विश्राम का अनुभव होता है उतने विश्राम का अनुभव समाधि में कुछ मिनटों में मिल जाता है। इसलिए योगी अल्प ही सोता है या यों कहिए कि सामान्य व्यक्तियों की तरह वह सोने में समय नष्ट न करके समाधि के द्वारा अपने को तरोताजा किए रहता है। विज्ञपुरुषों ने अपने-अपने अनुभवों के आधार पर समाधि के छह प्रकार प्रमुख माने हैं—

ध्यानयोग समाधि

इसके अभ्यास में दीप्तिमान ज्योति का आत्मा में ध्यान करते हुए ऐसा प्रयास करें कि वह ज्योति बिंदु ब्रह्मरूप में दिखाई देने लगे। तदनन्तर यह ध्यान करें कि आकाश में हमारी ही आत्मा विद्यमान है। यह समाधि की प्रारंभिक अवस्था है, क्योंकि ध्यान की परिपक्वता के बिना समाधि नहीं हो सकती।

नादयोग समाधि

इसमें जिह्वा को ऊपर की ओर लौटाकर कपाल कुहुर में ले जाई जाती है, इससे खेचरी मुद्रा होती है। यह लौटी

हुई जिह्वा जब तक ब्रह्मरन्ध्र में स्थित रहती है, तब तक योगी की समाधि भंग नहीं होती। नादयोग का अर्थ है, मन का नाद में लीन हो जाना और ऐसा होने पर समाधि का होना स्वाभाविक है।

रासानंदयोग समाधि

जिस समाधि में ब्रह्मानंद रूप रसामृत का स्वादन होने लगे, वह रसानंद योग समाधि है। आचार्यों ने इसे समाधि की तीसरी अवस्था माना है।

लयलिद्धि समाधि

इस समाधि में साधक स्वयं को शक्ति का रूप मानकर इतना तन्मय हो जाता है कि वह परमात्मा को पुरुष रूप समझता हुआ उसके साथ विहार की भावना के साथ चित्त का लय कर देता है।

भक्तियोग समाधि

इस समाधि में योगी परमात्मा का आश्रय लेकर अपने चित्त को पूर्णरूप से लीन कर देता है। इसमें चित्त की इतनी अधिक तन्मयता हो जाती है कि नेत्रों से आनंद का अश्रु-प्रवाह होने लगता है, वह किसी प्रकार रुकता नहीं तथा शरीर पुलकायमान होकर मन में एकाग्रता और अचैतन्यता आकर ब्रह्म से साक्षात्कार होने लगता है। इसमें योगी को अपने शरीर का किंचित् भी बोध नहीं रहता।

राजयोग समाधि

इस समाधि में मन को सब ओर से हटाकर भौंहों के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र में लगाने का निर्देश है। योगी मन को आत्मा में योजित करे और फिर उसको परमात्मा में योजित करे, यही राजयोग समाधि है। इसमें आज्ञाचक्र के भेदन की ओर संकेत है। वो ही रुद्रग्रंथि है, जिसका भेदन अक्षर वायु से किया जाता है, *''रुद्रग्रंथिर्भ्रुवोमध्ये भिद्यतेऽक्षर वायुना,''* इसके अनुसार ब्रह्मग्रंथि, विष्णुग्रंथि, रुद्रग्रंथि और षट्चक्रों का भेदन करती हुई कुण्डलिनी शक्ति उससे भी ऊपर जाकर शिव से जा मिलती है। योग की यही अंतिम प्रक्रिया है।

संप्रज्ञात समाधि

समाधि की इस अवस्था का वर्णन करते हुए पंतजलि ने लिखा है, *''सर्वार्थतैकाग्रतयो: क्षयोदयौ चितस्य समाधिपरिणाम।''* अर्थात् जिस अवस्था में, चित्त में सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय हो, उसको समाधि परिणाम कहते हैं। साधारणतया मनुष्य का चित्त सर्वार्थ होता है अर्थात् उसमें अनेक प्रकार के पदार्थों की ओर प्रवृत्ति पायी जाती है। वह किसी एक स्थान पर नहीं टिक सकता। वह अस्थिर होता है। तमोगुण में अत्यधिक, रजोगुण में उससे कम और सत्त्व गुण में अस्थिरता सबसे कम होती है, किन्तु यह समाधि की स्थिति नहीं है।

बहिरंग सोपानों के पश्चात् धारणा और ध्यान के लम्बे अभ्यास से जब क्रमश: प्रत्ययों की एकतानता उत्पन्न हो जाती है तो सर्वार्थता समाप्त हो जाती है और एकाग्रता का उदय हो जाता है। इस प्रक्रिया के लिए लंबे समय तक अभ्यास की आवश्यकता है। पंतजलि के अनुसार चित्त की प्रशान्तवाहिता संस्कार के कारण होती है। इसके निरोध के लिए अभ्यास में पटुता आवश्यक है। अभ्यास में वृत्ति के क्षीण होने पर पारदर्शक मणि के समान ग्राहकता, ग्रहण और ग्राह्यों में तटस्थता और तदज्जन्य की समापत्ति प्राप्त होती है।

धारणा से ध्यान की भूमिका पर पहुंचने के बाद स्वभावतया समाधि की ओर विकास होता है। समाधि को उपाय प्रत्यय कहा गया है अर्थात् उसके लिए उपाय आवश्यक है। जो लोग पिछले जन्म में भारी उपाय कर चुके होते हैं, उनकी समाधि भवप्रत्यय कहलाती है अर्थात् जन्म के कारण ही उनकी समाधि है। ऐसे लोग बहुत थोड़े होते हैं। अधिकतर लोगों के लिए समाधि उपाय प्रत्यय होती है। इसके लिए समाधि की अनुभूति, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति समाधि तथा प्रज्ञापूर्वक होती है।

श्रद्धा के बिना अभ्यास नहीं हो सकता। यह श्रद्धा शास्त्र और गुरु में आस्था है। श्रद्धा से वीर्य उत्पन्न होता है, जिसका अर्थ तत्परता और उत्साह है। वीर्य बढ़ने से स्मृति की शुद्धता बढ़ती है। स्मृति के शुद्ध होने से चित्त में

एकाग्रता और स्थिरता की वृद्धि होती है। यही ''संप्रज्ञात समाधि'' है। संप्रज्ञात समाधि के निम्नलिखित 4 स्तर माने गए हैं—

सवितर्क समाधि—जब साधक किसी स्थूल वस्तु जैसे हाथी के शरीर को धारणा का आलम्बन बनाता है, तो उसकी धारणा क्रमश: ध्यान और ध्यान से समाधि में परिणत होने पर भी अनेक वितर्क बने रहते हैं। यह सवितर्क समाधि है।

सविचार समाधि—जब एकाग्रता का विषय स्थूल वस्तु न होकर कोई सूक्ष्म वस्तु जैसे पंचतन्मात्रों में से कोई एक हो तो उसमें जो समाधि की अवस्था प्राप्त होती है, वह सविचार समाधि कहलाती है।

सानन्द समाधि—सानन्द समाधि में सत्त्वगुण ही शेष रहता है और अन्य दोनों गुण समाप्त हो जाते हैं। इसके पहले की दोनों स्थितियों में सत्त्वगुण रजोगुण के साथ मिला रहता है।

सास्मित समाधि—इसमें आनंद के साथ-साथ अस्मिता भी रहती है। इसलिए इसे यह नाम दिया गया है।

उपरोक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त वितर्क और विचार समाधि के निम्नलिखित दो उपभेद भी माने गए हैं—

निर्वितर्क समाधि—पीछे जो हाथी के शरीर को धारणा का आलम्बन बनाने का उदाहरण दिया गया है, उसमें जब ध्यान का क्षेत्र संकुचित हो जाने से हाथी के नाम, गुण इत्यादि का ज्ञान समाप्त हो जाते हैं और चित्त स्थूल वस्तु मात्र पर एकाग्र हो जाता है, तो यह निर्वितर्क समाधि की अवस्था कहलाती है। इसमें स्थूल विषयों के संबंध में सब कुछ जान लिया जाता है।

निर्विचार समाधि—सूक्ष्म आलम्बन जैसे तन्मात्र इत्यादि पर ध्यान लगाने से जब वह विषय शुद्ध रूप में सामने आता है और उसकी सहवर्ती बातों का ज्ञान विलीन हो जाता है तो इसे निर्विचार समाधि कहते हैं।

इस प्रकार संप्रज्ञात समाधि के उपरोक्त 6 भेद माने गए हैं। समाधि की इन विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की सिद्धियां और विशेष शक्तियां प्राप्त होती हैं।

असंप्रज्ञात समाधि

इस समाधि की उपरोक्त विभिन्न भूमिकाओं में सर्वोच्च, सानंद और सास्मित समाधियों की अवस्थाएं पार करके जब योगी असंप्रज्ञात समाधि की सर्वोच्च भूमि पर पहुंचता है तो वह सर्वविज्ञ, सर्वकर्त्ता, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान बन जाता है। उसकी क्षमताओं के विषय में पंतजलि ने लिखा है, ''*ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।*'' अर्थात् उसकी प्रज्ञा ऋतम्भरा अर्थात् सत्य से परिपोषित होती है। वह चाहे जिस विषय का ज्ञान कर सकता है। आगे कहा गया है, ''*परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकार:।*''अर्थात् परमाणु से लेकर परम महत्त्व पदार्थ तक सभी उसके वश में हो जाते हैं। समाधि की इन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न सिद्धियां प्राप्त होती हैं। असंप्रज्ञात समाधि की परिभाषा करते हुए पंतजलि ने लिखा है, ''*विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्व: संस्कारशेषोऽन्य:।*'' अर्थात् जिसके पहले विराम प्रत्यय का आभास होता है और जिसमें संस्कार मात्र शेष रह जाता है उसे ''असंप्रज्ञात समाधि'' कहते हैं। विराम प्रत्यय से तात्पर्य चित्त वृत्तियों का रुक जाना है। इसका एक अर्थ निरोध की प्रत्यक्ष अनुभूति भी है। समाधि से भिन्न चित्त में तमोगुण और रजोगुण प्रधान होता है। समाधि की अवस्था में सत्त्वगुण प्रधान होता है। असंप्रज्ञात समाधि में कौन से संस्कार किस सीमा तक शेष रहते हैं, इसके बारे में पंतजलि ने कुछ नहीं कहा है। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि समाधि रहने तक संस्कार बने रहते हैं। संस्कार के कारण ही समाधि समाप्त होती है। समस्त संस्कार समाप्त हो जाने पर मृत्यु हो जाती है।

समाधि की स्थिति में प्रज्ञा दिखलाई पड़ती है। प्रज्ञा से तात्पर्य शंका आदि से रहित ज्ञान है। सवितर्क आदि समाधि में पंतजलि ने 7 प्रकार की प्रज्ञा मानी हैं। भोजन वृत्ति के अनुसार ये 7 प्रकार की प्रज्ञाएं निम्नलिखित हैं—

- हेय को जानने से उसे जानने की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

- हेय का हेतु क्षीण हो जाने से उसे क्षीण नहीं करना होता।
- निरोध समाधि के द्वारा हान का साक्षात्कार
- विवेक ख्याति रूप हानोपाय की भावना
- बुद्धि का चरिताधिकारी होना
- तीनों गुणों का लय होना और फिर उत्पाद न होना
- गुणों से संबंध को पार करके स्वरूप मात्र केवली दशा में स्थित होना

उपरोक्त सातों प्रज्ञाभूमियों में से पहली चार क्रियाविमुक्ति और बाद की तीन चित्तविमुक्ति कहलाती हैं। उपरोक्त भूमियों से यह स्पष्ट होता है कि योग में साधक की बुद्धि क्रमशः आत्मज्ञान प्राप्त करती है।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश हेय के हेतु हैं, विभिन्न प्रज्ञाभूमियों में ये हेतु क्रमशः नष्ट हो जाते हैं। असंप्रज्ञात समाधि के अनुभव को उपनिषदों के अतिरिक्त विभिन्न संतों ने अपनी वाणी में अभिव्यक्त किया है। इस अवस्था को पहुंचे हुए योगी के बारे में पंतजलि ने कहा है, *''प्रसंख्यानेऽकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेधर्ममेघः समाधि।''* अर्थात् प्रसंख्यान में भी कुसीद अर्थात् व्याज की इच्छा न रखने वाले व्यक्ति को सर्वथा विवेक ख्याति होने पर धर्ममेघ समाधि प्राप्त होती है। साधारण मनुष्य पुण्य का काम करने पर ब्याज के रूप में उससे लाभ की इच्छा रखता है। इस स्थिति में यह इच्छा नहीं होती।

प्रसंख्यान से तात्पर्य ज्ञान की ओर से भी विरक्त हो जाना है। विवेक ख्याति का अर्थ प्रधान और उसके विचारों की ओर से अलग होने की अनुभूति है। धर्ममेघ में धर्म का अर्थ परम पुरुषार्थ का साधक ज्ञान है। मेघ से तात्पर्य योगी पर इस ध्यान की निरंतर वर्षा है। अस्तु, उपरोक्त श्लोक का अर्थ यह होता है कि असंप्रज्ञात समाधि में योगी सब प्रकार से विरक्त होता है और उस पर निरंतर ज्ञान की वर्षा होती रहती है।

इस प्रकार का योगी अपने चारों ओर धर्म की वृद्धि करता है और लोगों का कल्याण करता है। उसके संकेतों से, बातचीत से, शरीर की मुद्राओं से, गति से चारों ओर जन कल्याण साधन होता है।

❑❑
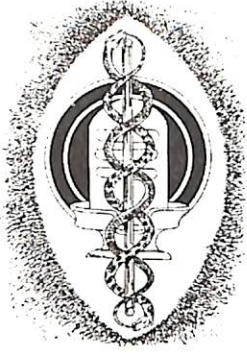
निःश्वास : तीन

कुण्डलिनी रहस्य

कुण्डलिनी शक्ति के रहस्य को समझने के लिए संपूर्ण योग चक्रों का, मानव शरीर से संबंधित समस्त व्यवस्था का, शरीर तंत्र का तथा षट्कर्मों के द्वारा शरीर के शुद्धीकरण का ज्ञान होना, प्रत्येक साधक के लिए अनिवार्य है। प्राणायाम, ध्यान, मुद्रा साधनादि के द्वारा मन, बुद्धि और सूक्ष्म शरीर का विकास करना भी कुण्डलिनी योग के साधक के लिए परम आवश्यक है। मूलाधार चक्र में सोई हुई योग की अत्यंत प्रचण्ड शक्ति को जगाने के निमित्त, अपने आपको पूर्ण रूप-से अनुशासित, संयमी, सद्गुरु के सान्निध्य से संपन्न साधक को अष्टांग योग का पालन करते हुए अपनी साधना सत्यनिष्ठा, पूर्ण आत्मविश्वास और संयम के साथ आरंभ करनी चाहिए।

अपनी संपूर्ण चित्तवृत्तियों को शांत किए बिना, जल्दबाजी में, बिना सोच-विचार किए और अनुभवी योग्य गुरु का निर्देश प्राप्त किए बिना, अपने ही मनमाने ढंग से खतरनाक कुण्डलिनी शक्ति को छेड़ने का प्रयास जो साधक करता है, वह हानि का शिकार तो होता ही है, उसका पतन भी अवश्य हो जाता है।

मानसिक इच्छाओं, कामनाओं, काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि की जो भी अनुचित वृत्तियां हैं, उन सब पर साधना, ज्ञान और संयम के द्वारा जो योगी साधक अंकुश लगाने की दृढ़ शक्ति प्राप्त कर लेता है और निरंतर योग साधना में बिना कोई लोभ अथवा किसी भी प्रकार का अभिमान किए, विनम्र भाव से निरंतर अभ्यास करता रहता है, उसी साधक को विश्व की सर्वोपरि शक्ति कुण्डलिनी के जागरण का अधिकार प्राप्त होता है।

मेरुदण्ड के निचले भाग में चतुर्दल पीतवर्ण के कमल-पुष्प की भांति बने मूलाधार चक्र में कुमारिका कुण्डलिनी शक्ति नीचे की ओर मुंह किए हुए सुप्तावस्था में पड़ी रहती है। उसी स्थान पर सुषुम्ना नाड़ी, इड़ा, पिंगला नाड़ियों सहित विद्यमान है। प्रबल आंतरिक त्राटक अर्थात् ध्यान के द्वारा सर्वप्रथम मूलाधार नामक पीतवर्ण के चतुर्दल कमल में **''लं''** बीज मंत्र का निरंतर जप और ध्यान करते रहने तथा बहुत समय तक साधना करने के अनंतर जब इस चक्र की शक्ति का उदय होने लगे तो पूर्वोक्त यौगिक साधनाओं का अभ्यास करते हुए कुण्डलिनी जागरण के मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिए।

मूलाधार चक्र पर पूर्व बताए ध्यान के अनुसार त्राटक करते हुए, नियमित रूप-से नाड़ी शोधन नामक प्राणायाम के दो सौ के लगभग अभ्यास करने से नासिका में जब सुगंधियां-सी आने लगें और यह क्रिया जब काफी समय तक होती रहे तो साधक को शरीर की समस्त नाड़ियों को शुद्ध हुआ समझना चाहिए।

इसके उपरांत साधक को कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के लिए पहला प्रयास करने के पूर्व ही कवच के रूप में योग की अत्यंत महत्त्वपूर्ण क्रिया ''मूलबंध'' का अभ्यास कटिबद्ध होकर करना चाहिए। यदि मूलबंध का अभ्यास किए बिना महाप्रबल प्रचण्ड कुल कुण्डलिनी, अपराजिता शक्ति को जगाने का प्रयास किया गया तो वह साधक का कल्याण करने के स्थान पर निश्चय ही उसका पतन कर देगी। इसलिए कुण्डलिनी के जागरण से पूर्व

मूलबंध को अत्यंत सुदृढ़ अवस्था तक पहुंचा देना चाहिए। मूलबंध साधना की परिपक्व स्थिति होते-होते साधक में कई प्रकार के चमत्कार स्वाभाविक ही उपस्थित हो जाते हैं।

मूलबंध की स्थिति प्राप्त होने पर साधक की संकल्प शक्ति एवं धारणा शक्ति अत्यंत प्रबल हो जाती है। उसकी आकृति में, उसकी चाल-ढाल में, उसकी वाणी में तथा उसकी दृष्टि में एक विशेष प्रकार का आकर्षण उपस्थित हो जाता है। शरीर में एक विशेष प्रकार की लावण्यता, स्निग्धता उत्पन्न हो जाती है। यही नहीं, उसके विचारों तक में दृढ़ता के साथ एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है। लोग अनायास ही उसकी ओर उन्मुख होने लगते हैं। लोगों को अपनी ओर खींचने की उसमें एक आकर्षक शक्ति आ जाती है।

वस्तुत: मूलबंध साधना ही कुण्डलिनी शक्ति को जगाने वाला एक चमत्कारी रहस्य है। यह भी सत्य है कि मूलबंध की साधना किए बिना कुण्डलिनी की साधना नहीं हो सकती। मूलबंध साधना ही इसकी मूल कुंजी है।

यदि मूलबंध साधना के साथ-साथ विभिन्न रहस्यमयी मुद्राओं की भी साधना की जाए, तो कुण्डलिनी जागरण का मार्ग सरल हो जाता है। निरंतर योग साधनाओं को करने से योगी व्यक्ति की सबसे बड़ी शक्ति का आधार पर शक्तिस्वरूपा महाकुल कुण्डलिनी के उदय स्थल पर एकाग्रता बन जाती है। इस एकाग्रता के कारण एक विशेष प्रकार का दबाव कुण्डलिनी शक्ति के निवास स्थान पर पड़ता हुआ अनुभव होने लगता है।

योगी साधक को किसी भी योग चक्र को थोड़े बहुत रूप-से स्पंदित करना हो तो, उस स्थान पर अपने आपको, अर्थात् अपने ध्यान एवं विचार को निरंतर एक ही स्थान पर और एक ही प्रकार के चिंतन के रूप में स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए। उससे उस स्थान (योग चक्र) पर निवास करने वाली दिव्य शक्ति बहुत धीरे-धीरे विकसित होने लगेगी।

यदि साधक कुण्डलिनी योग साधना के समस्त नियमादि का पालन पूर्णरूप से ठीक-ठीक करने में तत्पर है और योग मार्ग में आगे बढ़ने के लिए दृढ़ता के साथ कटिबद्ध है तो कुछ समय बाद ही उसमें सूक्ष्म शक्तियों का उदय होने लगेगा। तब साधक को मूलाधार चक्र पर मूलबंध की पूर्णरूप से परिपक्व साधना की स्थिति प्राप्त करते हुए कुण्डलिनी शक्ति पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास करना चाहिए। संस्कृत के एक मूल श्लोक का भावार्थ इस प्रकार है—

कुण्डलिनी जैसी ईश्वरीय योग शक्तियों को सच्चे साधक के लिए प्राप्त करना बहुत कठिन नहीं, अपितु अति सरल है।

किन्तु उन योगी साधकों की कुण्डलिनी कभी जाग्रत नहीं होती, जिन्हें इस पराशक्ति पर विश्वास नहीं। अविश्वास असफलता का सोपान है और विश्वास अवश्य ही सफलता दिलाने वाला है। श्रेष्ठ योगी भी अविश्वास के बल पर कुण्डलिनी जाग्रत नहीं कर सकता। जिन साधकों को परमात्म शक्ति, परम पराशक्ति मां कुण्डलिनी एवं अज्ञात शक्तियों पर, साथ ही भगवान पर विश्वास नहीं है, वो अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुंच सकते। उनके लिए छोटी-से-छोटी वस्तु भी दुर्लभ है।

प्रत्येक योगी, प्रत्येक साधक अविश्वासी मन को विश्वासी बनाए, मन की चंचलता को दूर करे और धूर्तता को पास भी न फटकने दे और विश्वास रखे कि इस समस्त दृश्य जगत के रूप में वह आदिशक्ति ही सर्वत्र उपस्थित है। अपने अंदर छुपी दिव्य शक्ति को देखने की सच्ची धुन, अटूट लगन और वास्तविक चाह उत्पन्न करे और अपने इस नश्वर अस्तित्व को सर्वथा और सर्वदा भूल जाने का वास्तविक प्रयत्न करें।
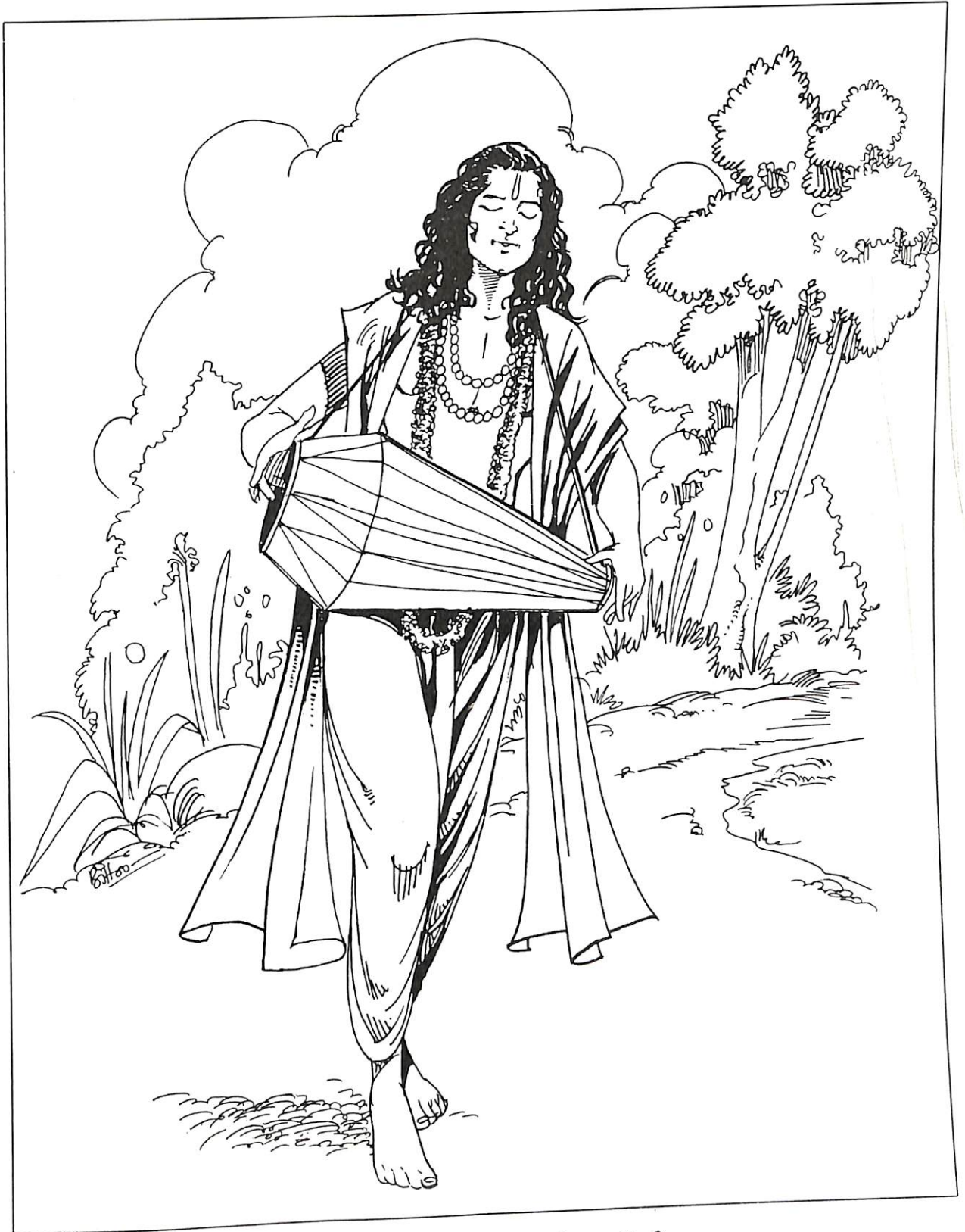
चैतन्य महाप्रभु : भावसमाधि की परम स्थिति

बस, ऐसी लगन लगाए, जिसने मीरा को कृष्ण का दीवाना कर दिया था। सूरदास को आंतरिक चक्षु प्रदान करा दिए थे। चैतन्य महाप्रभु को परम उच्चकोटि की भगवत् नाम कीर्तन करने में तन्मयता प्राप्त करा दी थी। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी रामतीर्थ को जिस प्रकार अपनी सुध-बुध भूल गई थी, जिस कुण्डलिनी शक्ति के स्फुरण मात्र से स्वामी विवेकानंद कई दिन के लिए समाधिस्थ हो गए थे और उनका जीवन ही बदल गया था, ऐसी तन्मयता, ऐसी चाह और ऐसी लगन जिस दिन जिस सच्चे योगी, साधक, संत, साधु और भक्त में जग जाएगी, उसे उस महाशक्ति के दर्शन में फिर कुछ चेष्टा नहीं करनी होगी और न ही उसके द्वारा कुण्डलिनी जागरण में कुछ विलंब ही होगा। ऐसी सिद्धि प्राप्त होने पर सब कुछ परम शांत, एकरस, एकाग्र और सर्वत्र आनंद-ही-आनंद का अनुभव होने लगेगा।

अपने अंदर की शक्ति को जगाने के लिए, उस अनन्त शक्ति के उद्गम का ध्यान करना चाहिए, हृदय से करुण पुकार उठनी चाहिए, उस दिव्य शक्ति को उजागर होने के लिए विवश कर दिया जाना चाहिए। जिस दिन ऐसी मार्मिक अंतर्हृदय से साधक के हृदय में अपने आपको और अपनी रहस्यमय कुण्डलिनी के जाग्रत कर देने की अत्यंत बलवती दृढ़ इच्छा पूर्णतया प्रबल आत्मविश्वास के साथ उदय हो जाएगी, बस ठीक उसी क्षण साधना के, उस निर्मल ज्ञान के, उस निर्मल सूर्य का उदय हो जाएगा। सच्चे आत्मप्रबोधन का विश्वास करने योग्य यही एकमात्र साधनमार्ग है।

ध्यान लगाने की सबसे उपयुक्त प्रक्रिया यह है—शांत होकर अपने नेत्र बंद करो और अपने अंतर्मन में धीरे-धीरे उतरते जाओ और क्रमशः बाहर की स्थिति से स्वयं को भूल जाने का प्रयत्न करो और साथ ही एक परम दिव्य, ज्योतिर्मय, सर्वव्यापक, नित्य शुद्ध, अजर-अमर, सर्वज्ञ, आनंद स्वरूप उस अनंत रहस्यों के रहस्य श्रीमन् नारायण का निरंतर ध्यान करते-करते मन की इतनी अनंत गहराइयों में उतरते जाओ जिसका कोई छोर, कोई अंत ही दिखाई न दे। ऐसा लगातार विचार करते-करते उस परम आनंदमय परात्पर, परब्रह्म स्वरूप मूलाधार चक्र में सुषुम्ना के द्वार पर स्थित कुल कुण्डलिनी शक्ति जो नेत्रों को चौंधिया देने वाले अवर्णनीय तेजोमय रूप से विद्यमान है, अपने प्राणों को अपान के साथ मिलाकर, उस स्थान पर स्थिर कर देने का अथक प्रयत्न करो, अपनी संपूर्ण प्रवृत्तियों को उधर ही लगा दो; इस क्रिया से परमानंद की प्राप्ति अवश्य प्राप्त होगी।

बंधों का परिचय

घेरण्ड संहिताकार ने योगसिद्धि में सहायक 25 मुद्राओं का वर्णन किया है। इन 25 मुद्राओं के अभ्यास के बिना कुण्डलिनी जाग्रत नहीं होती। मुद्राएं नाड़ियों के अंदर स्थित विकारों को दूर करने की अद्भुत शक्ति रखती हैं।

शरीर में अनेक प्रकार के विकार भरे पड़े हैं। गलत खान-पान के कारण एवं दूषित मल-विसर्जन प्रणाली के कारण दोषों का ठीक-ठीक बहिष्कार न होने के कारण कुछ विकार अंदर नाड़ियों में रुक जाते हैं। उनके निष्कासन में मुद्राओं का बड़ा महत्त्व है। इन्हीं मुद्राओं में तीन प्रकार के बंधों का भी वर्णन है। ये बंध मल-विसर्जन की क्रिया को तो नियमित करते ही हैं, कुछ चक्रों पर भी उनका अद्भुत प्रभाव पड़ता है।

उड्डीयान बंध, जालंधर बंध और मूलबंध। इन तीनों का वर्णन हठयोग शास्त्र में दिया गया है। ये स्वास्थ्य के लिए अत्यंत उपयोगी तो हैं ही, इनकी क्रियाएं भी सरल हैं। इनके करने में भी कठिनाई नहीं है।

इनके अभ्यास से मानसिक शक्ति बढ़ जाती है, पाचन-शक्ति प्रज्वलित हो जाती है। मूलाधार काम-केंद्र है, उस पर दबाव पड़ने से वासना का शमन होता है, अतः मानसिक व्याधियों का निराकरण सहज ही हो जाता है।

उड्डीयान बंध

संसार के किसी भी व्यायाम में ऐसी व्यवस्था नहीं है कि पेट के सभी यंत्रों को कुछ क्षण के लिए विश्राम दिया जा सके। यह व्यवस्था केवल यौगिक विधि में ही है। उड्डीयान बंध से पेट की पेशियों को पूर्णरूप से विश्राम तो मिल ही जाता है, उनकी मालिश की क्रिया भी हो जाती है।

उड्डीयान शब्द का अर्थ है, उड़ने की कला। यह बंध कुण्डलिनी को जाग्रत करने में सहायक होती है और बहिर्मुखी वृत्तियों को अंतर्मुखी बनाता है। इस प्रकार इस बंध के सध जाने से आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है।

उड्डीयान बंध निम्न दो प्रकार से किया जाता है—

- ❑ बैठकर
- ❑ खड़े होकर

बैठकर किया जाने वाला उड्डीयान पद्मासन में बैठने से सिद्ध होता है। इसमें पहले पद्मासन लगाकर बैठें और हाथों को घुटनों पर रखें। दाहिना हाथ दाहिने घुटने पर और बायां हाथ बाएं घुटने पर रहेगा। फिर अंदर की सारी वायु निकाल दें और श्वास बाहर ही रोककर पेट को अंदर की ओर खलाएं। जब पेट अंदर चला जाए, तब नाभि के नीचे के भाग को भी सिकोड़ें। इस प्रकार महाप्राचीरा (डायाफ्राम) ऊपर की ओर उठेगी और नाभि के नीचे के अंग, पेड़ू, गुदा और लिंग के आसपास की पेशियों का शिथिलीकरण हो जाएगा। नीचे के चक्रों का संचालन होगा।

खड़े होकर उड्डीयान करने की विधि यह है—पहले सीधे खड़े हो जाएं। थोड़ा घुटनों को मोड़ें और दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें। अब कंधों और गरदन का भार हाथों पर डाल दें। यह उड्डीयान बंध की पूर्व तैयारी की आकृति है।

इस आकृति में आकर श्वास बाहर निकाल दें। अंदर की सारी वायु बाहर निकल जानी चाहिए। फेफड़ा एकदम वायुरहित हो जाए। अब घुटनों पर हाथों द्वारा बल देते हुए पेट को अंदर खलाएं। पेट इतना खलाना चाहिए कि पेट के अंदर गड्ढा-सा बन जाए। इस स्थिति के बाद नाभि के नीचे के भाग पेड़ू एवं गुदा तथा लिंग-मूल के चारों ओर की पेशियों को ऊपर की ओर तानें। ऐसा करने से उदर एवं पेड़ू व नीचे की पेशियों का शिथिलीकरण हो जाएगा। इसी स्थिति में रहकर, पेट का तनाव कम कर दें और धीरे-धीरे श्वास अंदर जाने दें। फेफड़े में श्वास भर जाने दें। यह एक बार पूर्ण उड्डीयान हुआ।

जो योगी साधक नए हैं, उन्हें प्रारंभ में यह क्रिया एक ही बार करनी चाहिए। 4-5 महीने में अभ्यास के बाद 2 या 3 बार यह क्रिया की जा सकती है। यह संसार में प्रचलित सभी व्यायामों में अद्भुत व्यायाम है। इससे आध्यात्मिक शक्ति तो जाग्रत होती ही है, पेट की सभी पेशियों को विश्राम भी मिल जाता है। इस बंध के अभ्यास से प्राणवायु सुषुम्ना के मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र की ओर उड़ने लगती है।

जालंधर बंध

जालंधर नाम के एक योगिराज हुए हैं। हो सकता है कि उन्होंने ही इस बंध का आविष्कार किया हो, जिस कारण इस बंध का यह नाम पड़ गया हो। इसकी विधि यह है—पद्मासन पर बैठ जाएं। शरीर व मेरुदण्ड को सीधा और स्थिर रखें। फिर गरदन की मांसपेशियों को ढीला करके नीचे की ओर झुकाएं। इससे गरदन में स्थित मेरुदण्ड का भाग भी झुकेगा। गला और ठुड्डी स्पर्श करेगी। यह बंध लगाकर प्राणायाम का पूरक (श्वास रोकने की क्रिया) करें। जब तक श्वास रुकती है, तब तक बंध लगा रहता है। इसके पश्चात् गरदन को ढीला कर दिया जाता है और श्वास निकाल दी जाती है या रेचक किया जाता है।

कुछ आचार्य कहते हैं कि सिर और गरदन को इतना झुकाना चाहिए कि ठुड्डी, हंसली की हड्डी के नीचे छाती के भाग को स्पर्श करे और हृदय तथा ठुड्डी में 4-5 अंगुल का अंतर रह जाए। यह बंध बुढ़ापे को रोकता और झुर्रियों को नष्ट करता है। यह मृत्यु और रोग को जीतने वाला है। इडा और पिंगला दोनों नाड़ियों का इस बंध से अवरोध होता है। इनके अवरोध से प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी से प्रभावित होने लगती है।

कुण्डलिनी जागरण में बंधों का महत्त्व

इस बात को हम पहले कई बार बता चुके हैं कि कुण्डलिनी शक्ति का निवास स्थल ''मूलाधार चक्र'' में

अवस्थित है। अधिकांश रूप-से कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिए मूलाधार चक्र पर चेतना शक्ति को अर्थात् ध्यान को एकाग्र कर मेरुदण्ड के सबसे निचले स्थान पर, जहां महानाड़ी सुषुम्ना के द्वार पर नीचे की ओर मुख करके कुण्डली सुप्तावस्था में पड़ी हुई है, ले जाया जाता है। नए साधकों को इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि वे कुण्डलिनी को छेड़ने का साहस और प्रयास अत्यंत सावधानी के साथ करें।

साधक का सर्वप्रथम कर्तव्य है—कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्ध्वमुखी बनाना। ब्रह्मग्रंथि, विष्णुग्रंथि एवं रुद्रग्रंथि—इन ग्रंथियों को भेदन करना भी आवश्यक है। इसके अनंतर ही कुण्डलिनी जागरण आरंभ होता है। जब तक तीनों महाग्रंथियों का भेदन न हो जाए (अर्थात् साधक की संपूर्ण आसक्तियां, दुर्बलताएं, कामनाएं, इच्छाएं लोप न हो जाएं), तब तक कुण्डलिनी शक्ति का ऊर्ध्वमुखी होना आरंभ नहीं होता। उचित तो यही है कि पहले बंधों (मूलबंध, उड्डीयान बंध न जालंधर बंध) के द्वारा साधना करके सोलह आधारों को सिद्ध कर लेना चाहिए। आधारों का अर्थ है, शरीर के वे सक्रिय अंग जो मर्मस्थल कहलाते हैं। जब उन आधारों के मार्ग से चेतना को बाहर निकालने में समर्थ हो जाएं, तो बंध-साधन करना चाहिए।

इन सोलह आधारों के अवरुद्ध हो जाने के अनंतर चेतनशक्ति पूर्णतया अंतर्मुखी हो जाती है। मूलबंध.नामक अत्यंत महत्त्वपूर्ण यौगिक क्रिया जो अपने आप में गुप्त, रहस्यात्मक और चमत्कारी है; इसके साधन से कुण्डलिनी शक्ति के भयंकर तेज को सहने और संभालने की शक्ति प्राप्त होती है।

यौगिक क्रिया 'मूलबंध'

कुण्डलिनी जागरण से पहले की प्रक्रिया है, मूलबंध साधना! समस्त यौगिक क्रियाओं में मूलबंध अपना श्रेष्ठ स्थान रखती है। यह चमत्कारी क्रिया बाह्य, आंतरिक, स्थूल तथा सूक्ष्म है। इसमें देह (शरीर) के साथ-साथ मानसिक विचार का प्रयोग भी किया जाता है। ब्रह्मचर्य, जप, तप, भक्ति, ज्ञान-विज्ञान, मनन, चिंतन, कला, संगीत, अध्ययन तथा समस्त प्रकार की यौगिक साधनाएं मूलबंध के बिना व्यर्थ हैं।

मूलबंध की क्रिया के द्वारा कुण्डलिनी योग की शुरुआत की जा सकती है। वस्तुतः कुण्डलिनी योग के मूल में मूलबंध की ही शक्ति छिपी हुई है।

मूलबंध एक ऐसी अद्वितीय अप्रतिहत गति से कार्य करने वाली शक्ति है, जिसके द्वारा कुण्डलिनी योग की चरम अनुभूति प्राप्त हो सकती है। मूलबंध के द्वारा सांसारिक, शारीरिक आनंद की चरम सीमा को पहुंचा जा सकता है।

कुण्डलिनी साधना में प्रारंभ से अंतिम सोपान तक और इसमें और इससे भी ऊपर सूक्ष्मता के साथ जाने के लिए मूलबंध क्रिया को सदा साथ लेकर ही चलना होगा। यदि मूलबंध का सहयोग और साथ न लिया गया तो असफलता का मुंह तक देखना पड़ सकता है।

मूल सबसे नीचे का चक्र है। इसी को गुदा चक्र भी कहते हैं। इस मूल को बांधने का नाम मूलबंध है। योगियों ने इसे बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इस बंध में पेड़ू, शिश्नमूल, गुदा आदि संपूर्ण अंगों और वहां स्थित मांसपेशियों पर दबाव एवं खिंचाव पड़ता है। इस बंध में वीर्यवाहिनी नसों, मूत्रवाहिनी नसों एवं गुदा की संपूर्ण नसों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। वीर्यरक्षा में यह बंध बहुत सहायक है।

उड्डीयान बंध में पेड़ू के नीचे के सभी अंगों पर तनाव और शिथिलीकरण का प्रभाव पड़ता है, किन्तु यह बंध बैठकर भी किया जाता है और खड़े होकर भी किया जाता है, लेकिन मूलबंध सिद्धासन में बैठकर किया जाता है।

मूलबंध से वीर्य के गाढ़ा होने में मदद मिलती है, स्वप्नदोष जैसा रोग भी इससे जाता रहता है। शीघ्रपतन और शुक्र तारल्य जैसे वीर्य संबंधी रोगों में इससे लाभ होता है, किन्तु यह आसन श्रद्धापूर्वक नियमित रूप-से करना चाहिए। शारीरिक सामंजस्य इस प्रकार इस बंध के द्वारा बनता है कि निर्बलता तथा वृद्धावस्था के कारण उत्पन्न

झुर्रियां आदि लक्षण मिट जाते हैं और शरीर में बल-वीर्य बढ़ता है। रोग निवारक शक्ति बढ़ती है और शरीर हृष्ट-पुष्ट, सुंदर एवं सुडौल बनता है। पाचन-शक्ति जाग्रत होती है।

सिद्धासन की अवस्था

मूलबंध के अभ्यास से एक अति महत्त्वपूर्ण ऊर्जा का उदय होता है। योगी साधक का कर्तव्य है कि उस ओज को अपने दृढ़ संकल्प और संयमित जीवन द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में एकत्रित करे। उस ओज (ऊर्जा) को किसी प्रकार व्यर्थ न जाने दे। यह ऊर्जा कुण्डलिनी शक्ति को गलत दिशा में बढ़ने से रोकने का कार्य करती है।

मूलबंध क्रिया को संपादित करने के लिए मन, शरीर, बुद्धि, संकल्प शक्ति एवं ध्यान का आश्रय लेना पड़ता है। यौगिक साधना करते हुए साधक को ध्यान में जाने का प्रयत्न करते समय, अपने शरीरस्थ मल-मूत्र मार्ग को इच्छा के द्वारा ऊपर की ओर खींचने पर अपने ध्यान को चिंतन में लगाते हुए अपनी चेतन शक्ति को ऊंचे-से-ऊंचे ले जाने का प्रयत्न करें। फलतः कुछ दिन के इस प्रकार के चिंतन और अभ्यास से यह क्रिया ठीक रूप-से संचालित होने लगेगी।

मूलबंध क्रिया को करते हुए साधक का पेट हल्के से उड्डीयान बंध की तरह पीछे की ओर खिंच जाएगा। अपनी आंतरिक चेतना शक्ति को जाग्रत करने और ऊपर ले जाने के लिए, साधक को लगातार उपर्युक्त क्रियाओं को करते हुए, आज्ञाचक्र को और समस्त स्नायुमंडल के साथ ध्यान में एकाग्र होने की स्वयं को प्रेरणा देनी चाहिए।

ऐसी स्थिति में साधक के नेत्र या तो बंद हो जाएंगे या फिर अधखुली अवस्था में ऊपर को चले जाएंगे। मानसिक और शारीरिक ध्यान की ऐसी स्थिति का जब नियमित थोड़ी-थोड़ी वृद्धि करने पर और अच्छा अभ्यास हो जाए तो, मूलबंध का प्रभाव साधक स्वयं पर अनुभव करने लगता है अर्थात् स्नायुमंडल को चेतना प्राप्त होगी, ध्यान एकाग्र होने लगेगा, मन-मस्तिष्क को आनंद की अनुभूति होगी। कुण्डलिनी शक्ति की साधना में प्रवेश करने के लिए मूलबंध यौगिक क्रिया को करना आवश्यक है।

जब मूलाधार में स्थित सोई हुई कुण्डलिनी महाशक्ति का उत्थान आरंभ होता है, तब योग के छह चक्र तीनों महाग्रंथियों के भेदन के साथ-साथ विकसित होने लगते हैं। योगी के शरीर में स्थित महासुषुम्ना नाड़ी जिसका नीलवर्ण है, वह उस प्राणशक्ति के चलने का विशेष और प्रधान मार्ग हो जाता है। यह क्रिया प्रारंभ होते ही योगी मन, बुद्धि, समस्त इंद्रियां, सांसारिक आनंद एवं सुख की वस्तुओं के मोह से मुक्त हो जाता है।

मानो मृत्यु तक का भय समाप्त हो जाता है।
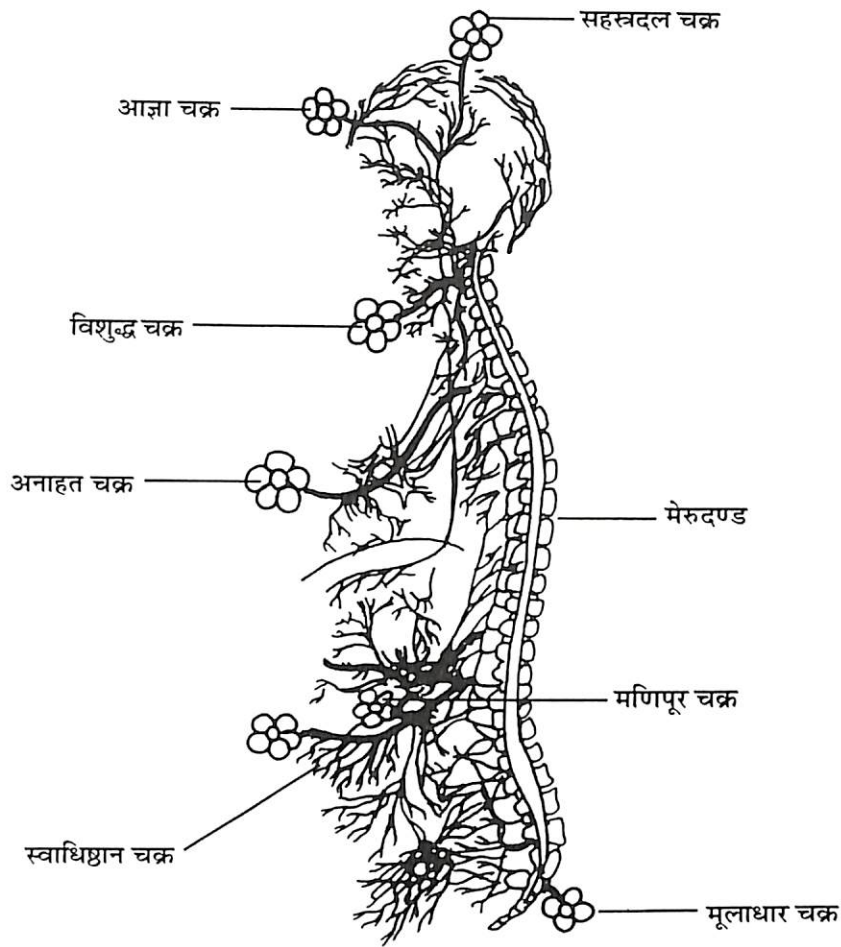
शरीर में विभिन्न योग चक्र

योग की सर्वोपरि महादेवी कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के निमित्त उपरोक्त प्रक्रियाएं, साधकों के लिए, योग-मार्ग में अग्रसर होने के लिए वरदान सिद्ध होंगी। कुण्डलिनी जैसी शक्ति का यह ज्ञान बड़ा ही रहस्यमय और विचित्र है। साधक को कुण्डलिनी से संबंधित पहले कुछ साधारण क्रियाएं करनी चाहिए। तदनंतर कुछ और बड़ी क्रियाएं करने का प्रयास करना चाहिए। अंततः पूर्ण यौगिक संयम का (अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि का) मिश्रित प्रयास, अभ्यास एवं साधना करके उस परात्पर परब्रह्म अर्थात् स्वयं को जानने का अवसर मिल जाता है। इस संबंध में अनगिनत जागे हुए ऋषि-मुनि, संत-महात्मा आदि विद्वानों एवं शास्त्रियों ने बहुत ही स्पष्ट रूप-से कितने ही स्थानों पर अनुभवों को बताया है कि इस प्रकार की ज्ञानमयी, भक्तिमयी, योगमयी, खेचरी, प्राण-अपान साधन सहस्त्रदल कमल की कर्णिका विशेष से, जो अमृत बिंदु का क्षरण होता रहता है, उसका पान करना। ऐसी विभिन्न क्रियाओं और साधनों की उपासना से जो अद्वितीय चमत्कृत कर देने वाला, जगा देने वाला, अतुल ज्ञान प्राप्त होगा, उससे योगी का अथवा जीवात्मा का सर्वस्व परिवर्तन हो जाएगा।

इस विषय में विद्वानों का कथन है—

यदि साधना, उपासना, उत्कृष्ट प्रकार के यौगिक अभ्यासों के साधन, ज्ञान-विज्ञान, नाद, प्राण-क्रिया, भक्ति योग, सभी प्रकार के यम, नियम, संयम, तपश्चर्या आदि संपूर्ण प्रकार के साधनों के द्वारा प्रयत्न करके ज्ञान प्राप्त कर ले, तो फिर साधक के लिए कुछ और सीखने की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी। जिनकी श्रुति ऊर्ध्वगामी हो चली

है, अर्थात् जिनकी वह परचेतना महाकुण्डलिनी शक्ति सत् प्रयत्नों, साधनों, दृढ़ संकल्प और तप के प्रभाव से जाग्रत हो चली है, वह जीवात्मा साक्षात् नारायण ही हो जाता है अर्थात् जो योगी अपने प्राणों की ऊर्ध्वगति प्राप्त करा लेता है, फिर वह मनुष्य नहीं, देव तुल्य हो जाता है। समस्त धर्म, संपूर्ण योग एवं तप आदि का रहस्य कुण्डलिनी है।

मूलबंध की विधि

योग विज्ञान के अंतर्गत मूलबंध एक ऐसी महत्त्वपूर्ण यौगिक क्रिया है, जिसके जाने बिना और सीखे बिना, कुण्डलिनी साधक की स्थिति ऐसी है, जैसे बिना लगाम का घोड़ा। लगाम के द्वारा ही घोड़ा पूरी तरह से कोचवान (चालक) के वश में रहता है।

मूलबंध लगाने के लिए पहले सीधे बैठ जाइए। दोनों टांगों को सामने की ओर सीधी फैला लीजिए। अब दोनों में से किसी भी टांग को घुटने से मोड़कर, गुदा और अंडकोष के बीच में जो थोड़ी जगह बची है, उसी खाली स्थान में एड़ी को लगा लीजिए। दूसरे पांव की एड़ी को शिश्न मूल (लिंग मूल) के ऊपर जमा दीजिए। इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि यह क्रिया करते हुए अण्डकोष या जननेन्द्रिय को किसी प्रकार का कोई आघात न पहुंचे।

अब उपर्युक्त आसन में बैठे हुए, गुदा के चारों ओर की पेशियों का बलपूर्वक संकोचन करें अर्थात् ऊपर की ओर खींचिए। यह बंध आसन पर नहीं, बल्कि खिंचाव पर निर्भर करता है। इस खिंचाव या तनाव के कारण लिंग के चारों ओर की नसों और मांसपेशियों का संकोचन होता है।

अपान वायु ऊपर को उठती है। इस ऊर्ध्वगमन में लिंग और अण्डकोषों को नियंत्रण करने वाली नसों में बल आता है और शीघ्रपतन एवं नपुंसकता आदि दोष मिटने लगते हैं। इससे मानसिक शांति भी मिलती है, कुण्डलिनी शक्ति मरे हुए सर्प की भांति सीधी हो जाती है और उसकी शक्ति का प्रवाह सुषुम्ना द्वारा ऊपर की ओर होने लगता है।

जब अपान वायु ऊर्ध्व गमन करने लगती है, तब इसका संघर्ष प्राण वायु से होता है। प्राण वायु के संघर्ष से एक प्रकार की विद्युत का प्रवाह होने लगता है। इस विद्युत के प्रभाव से पाचन शक्ति में बल आ जाता है और पाचन शक्ति प्रबल होने से बल की वृद्धि होती है।

बज्रौली और विंदु साधन नामक दो क्रियाएं योगी लोग करते हैं, उन क्रियाओं की प्रथम सीढ़ी यह मूलबंध है। बज्रौली और विंदु साधन का अभ्यास उच्चकोटि के योगी करते हैं, जो ब्रह्मचर्य से कभी भ्रष्ट नहीं होते तथा ब्रह्मसिद्धि में लगे रहते हैं। कामी लोग इसे कदापि न करें।

उड्डीयान, जालंधर और मूल—ये तीन बंध हमने ऊपर लिखे हैं। ये तीनों अलग-अलग हैं और अलग-अलग लोग करते भी हैं, किन्तु प्राणायाम साधन में तीनों बंध एक साथ किए जाते हैं। पहले पद्मासन में बैठना होता है और पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर, मूलबंध लगा लिया जाता है। इसके बाद पूरक करते हैं, श्वास को अंदर भरते हैं, श्वास पूरी भर जाने पर जालंधर बंध लगा लिया जाता है; ठुड्डी को छाती से चिपका लिया जाता है और तब कुम्भक किया जाता है। श्वास को अंदर ही रोके रखने की क्रिया की जाती है।

जब कुम्भक पूर्ण हो जाता है, तब जालंधर बंध खोल देते हैं, ठुड्डी को छाती पर से ऊपर उठाकर गरदन सीधी कर लेते हैं और इसके बाद उड्डीयान बंध से पेट को खाली कर सारी श्वास बाहर निकाल देते हैं, रेचक करते हैं। इस प्रकार तीनों बंध एक साथ लगते हैं। तीनों बंध एक साथ लगाकर प्राणायाम करने से प्राण वायु सरलता से मेरुदण्ड की सुषुम्ना से गमन करने लगती है। अन्यथा इड़ा-पिंगला से गमन करती है।

कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के लिए सिद्धासन और पद्मासन दोनों योगासनों का बहुत अच्छा अभ्यास होना चाहिए। आसन सिद्धि के लिए किसी भी एक आसन में साधक को साढ़े तीन घंटे की अवधि तक सुखपूर्वक बैठने का अभ्यास होना परमावश्यक है। वैसे पद्मासन सभी योग साधनाओं के लिए सर्वदा सिद्धि प्रदान करने वाला महत्त्वपूर्ण आसन माना गया है। किन्तु कुण्डलिनी शक्ति के प्रारंभिक साधनकाल में सभी साधक कुछ समय के लिए सिद्धासन से भी अभ्यास करें तो अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

नितांत एकांत स्थान में गोपनीयता के साथ, आलस रहित होकर, शांत स्थिति में मूलबंध लगाना चाहिए तथा प्रबल इच्छाशक्ति के साथ ऊपर बताई विधि के अनुसार संकोचन-क्रिया को धीरे-धीरे बढ़ाने का अभ्यास करना चाहिए।

शिव संहिता और हिरण्य संहिता आदि योग के अनेक ग्रंथों में इस क्रिया का विशेष वर्णन किया गया है। इस क्रिया के अभ्यास के बिना योग मार्ग पर चलना और उसकी अद्भुत गतियों का चमत्कार देखना संभव नहीं है।

वैसे तो योग विद्या में अनगिनत ऐसी विचित्र क्रियाएं उपस्थित हैं जिनको जाने बिना कोई भी साधक तीव्र गति से आगे नहीं बढ़ सकता। फिर भी मूलबंध एक ऐसी अद्वितीय यौगिक विधि है जो अकेली ही दस विशेष क्रियाओं के समान मानी जाती है। मूलबंध लगाने से योगी का ध्यान बिना प्रयास के ही लग जाता है। योगी का क्षय बंद हो जाता है, मानसिक शक्ति दिनोंदिन बढ़ने लगती है, धारणा स्वाभाविक ही दृढ़ होने लगती है, आलस्य भाग जाता है और प्राणों की गति में अंतर आ जाता है।

❑❑
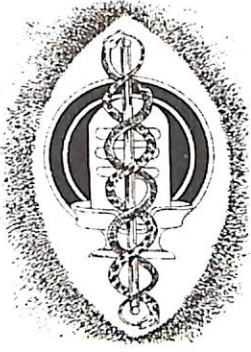
निःश्वास : चार

मुद्राएं और कुंडलिनी

मुद्रा का अर्थ है स्थिति। साधना में इसका तात्पर्य हाथों और उंगलियों की विशेष स्थिति से होता है। योग व तंत्र ग्रंथों के अनुसार मुद्राओं से साधक की आंतरिक स्थिति का ज्ञान होता है। आंतरिक स्थिति की सहज अभिव्यक्ति हुआ करती हैं ये मुद्राएं। साधक जब मुद्राओं द्वारा अर्चन, उपासना या ध्यान आदि क्रियाएं करता है, तो वह बाहर से भीतर की यात्रा करने का प्रयास सिद्ध करता है। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है जिस प्रकार सूक्ष्म स्थितियों का प्रभाव स्थूल क्रियाओं पर पड़ता है, उसी प्रकार सायास स्थूल क्रियाओं से सूक्ष्म भी प्रभावित होता है। प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हंसने-मुस्कराने के रूप में होती है, यह बात जितनी सच है, उतना ही वैज्ञानिक यह तथ्य भी है कि हंसने-मुस्कराने से (भले ही वह शुरू में बनावटी लगे) प्रसन्नता की लहर हृदय का बहुत गहरे में अवश्य संस्पर्श करती है।

मुद्रा चिकित्सा रहस्य एवं प्रयोग

सम्पूर्ण प्रकृति और हमारा शरीर पांच तत्त्वों से बना है। मानव-शरीर लघु ब्रह्माण्ड स्वरूप है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतीक यह मानव-शरीर भी ब्रह्माण्ड के समान ही पांच तत्त्वों (अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी, जल) के योग से बना है। मुद्रा-विज्ञान का आधारभूत सिद्धांत यह है कि शरीर में इन पंच तत्त्वों में असंतुलन से रोगोत्पत्ति होती है तथा पंच तत्त्वों में समता व सन्तुलन होने से हम स्वस्थ रहते हैं। स्वस्थ शब्द को यहां शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संदर्भों में स्वयं में अपनी प्रकृति में स्थित रहने से लेना चाहिए।

मानव-शरीर प्रकृति की सर्वोत्तम रचना है और हाथ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग। हाथों में से एक विशेष प्रकार की प्राण-ऊर्जा या शक्ति/विद्युत चुंबकीय तरंगें/जीवनी शक्ति (AURA) निरन्तर निकलती रहती है। विभिन्न प्रकार की रहस्यमयी चिकित्साओं में हाथों के संस्पर्श मात्र से नीरोगी बनाने के पीछे यही ऊर्जा छिपी है।

भारतीय मनीषियों के अनुसार, मानव-हस्त की पांचों उंगलियां अलग-अलग पंच तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं और प्रत्येक उंगली का संबंध एक तत्त्व विशेष से है। आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि प्रत्येक उंगली के सिरे से अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा तरंगें (इलेक्ट्रो मैगनेटिक वेव्स) निकलती रहती हैं। प्राचीन भारतीय ऋषियों की अद्‌भुत खोज मुद्रा-विज्ञान के अनुसार पंच तत्त्वों की प्रतीक उंगलियों को परस्पर मिलाने, दबाने, मरोड़ने या विशेष प्रकार की आकृति बनाने से विभिन्न प्रकार के तत्त्वों में परिवर्तन, अभिव्यक्ति, विघटन एवं प्रत्यावर्तन होने लगता है। दूसरे शब्दों में, उंगलियों की सहायता से (बनाई जाने वाली विभिन्न मुद्राओं द्वारा) इन पंच तत्त्वों को इच्छानुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है। कौन-सी उंगली किस तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है, चित्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अंगूठा = अग्नि
तर्जनी (अंगूठे के पास वाली उंगली) = वायु
मध्यमा (सबसे बड़ी अंगुली) = आकाश

अनामिका (चौथी उंगली) = पृथ्वी
कनिष्ठिका (सबसे छोटी उंगली) = जल

पंच तत्त्व नियंत्रक मुद्राएं कैसे बनाई जाती हैं?

हाथों की उंगलियों को एक दूसरे से विशेष प्रकार से मिलाने, स्पर्श करने, दबाने अथवा मरोड़ने से विभिन्न प्रकार की मुद्राएं बनती हैं। इस प्रकार केवल उंगलियों को एक दूसरे के साथ किसी विशेष स्थिति में रखने या परस्पर सटा देने भर की क्रिया मात्र से ही शरीर में भिन्न-भिन्न तत्त्वों का प्रभाव आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ा सकते हैं और पंच तत्त्व नियंत्रक उंगली-मुद्राओं के नियमित अभ्यास के द्वारा तत्त्वों में संतुलन लाकर स्वस्थ रह सकते हैं। सारांश यह है कि प्रकृति के समान ही मानव शरीर पंच तत्त्वों से बना है। आरोग्य का आधार इन पंच तत्त्वों का संतुलन है। विभिन्न उंगली-मुद्राएं शरीर में चेतना के शक्ति केन्द्रों के रिमोट कंट्रोल बटन के समान हैं। उनके उचित अभ्यास से स्वास्थ्य-रक्षा और रोग-निवारण, दोनों सम्भव हैं।

उदाहरणार्थ—किसी व्यक्ति को अचानक दिल का दौरा पड़ा है और उसके पास तत्क्षण कोई प्रभावशाली दवा नहीं है। ऐसी स्थिति में, भले ही उसने किसी व्यक्ति को डॉक्टर बुलाने भेज दिया हो, यदि वह तत्काल अपने दोनों हाथों से अपानवायु मुद्रा करे तो कुछ ही क्षणों में हृदय की ओर चढ़ता और दिल पर दबाव देता हुआ गैस का गुबार निकल जाएगा। फलत: डॉक्टर के आने से पहले ही वह व्यक्ति मौत के चंगुल से बच जाएगा।

वैसे तो शास्त्रों में कई प्रकार की मुद्राओं की चर्चा योग व तंत्र ग्रंथों में मिलती है, यहां जिन विशेष मुद्राओं का वर्णन किया जा रहा है, वे तन-मन स्वस्थ रखने में तो उपयोगी हैं ही, आध्यात्मिक उन्नति में भी विशेष भूमिका निभाती हैं। षट्चक्रों का संबंध पंच तत्त्वों से है और ये मुद्राएं पांचों तत्त्वों को संतुलित करती हैं। सद्गुरु के सान्निध्य में इन मुद्राओं का प्रयोग कर साधक प्रसुप्त अनंत संभावनाओं को जाग्रत करने में सफल हो जाता है। इनसे प्रसुप्त चक्रों में विशेश आघात होता है, जिससे वे चालित हो जाते हैं।

ज्ञान मुद्रा

हाथ की तर्जनी (अंगूठे के साथ वाली) अंगुली के अग्रभाग (सिरे) को अंगूठे के अग्रभाग के साथ मिलाकर रखने और हल्का-सा दबाव देने से ज्ञान मुद्रा बनती है। इस मुद्रा में दबाना जरूरी नहीं है। बाकी उंगलियां सहज रूप से सीधी रखें।

यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अंगुली-मुद्रा है। इस मुद्रा का सम्पूर्ण स्नायुमण्डल और मस्तिष्क पर बड़ा ही हितकारी प्रभाव पड़ता है।

❑ ज्ञान मुद्रा किसी भी आसन या स्थिति में की जा सकती है। ध्यान के समय इसे पद्मासन में करना सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसे आप दोनों हाथों से, चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, गृहस्थी के कार्य करते समय या आराम के क्षणों में, जब चाहें किसी भी समय, किसी भी स्थिति में और कहीं भी कर सकते हैं।

❑ इसे अधिक-से-अधिक समय तक किया जा सकता है। इस मुद्रा के लिए समय की कोई सीमा नहीं है।

❑ हस्तरेखा विज्ञान की दृष्टि से, इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से जीवन रेखा और बुध रेखा के दोष दूर होते हैं तथा अविकसित शुक्र पर्वत का विकास होता है।

ज्ञान मुद्रा समस्त स्नायुमण्डल को सशक्त बनाती है। विशेषकर, मानसिक तनाव के कारण होने वाले दुष्प्रभावों को दूर करके मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं को सबल करती है। ज्ञान मुद्रा के निरन्तर अभ्यास से मस्तिष्क की सभी विकृतियां और रोग दूर हो जाते हैं। अनिद्रा रोग में यह मुद्रा अत्यंत कारगर सिद्ध होती है। मस्तिष्क शुद्ध और विकसित होता है। मन शान्त हो जाता है। चेहरे पर अपूर्व प्रसन्नता झलकने लगती है।

❑ ज्ञान मुद्रा मानसिक एकाग्रता बढ़ाने में सहायक होती है। तर्जनी अंगुली और अंगूठा जहां एक दूसरे को स्पर्श करते हैं, हल्का-सा नाड़ी स्पन्दन महसूस होता है। वहां ध्यान लगाने से चित्त का भटकना बन्द होकर मन एकाग्र हो जाता है।

❑ ज्ञान मुद्रा विद्यार्थियों के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। इसके अभ्यास से स्मरण शक्ति उन्नत और बुद्धि तेज होती है।

साधना के क्षेत्र में साधक द्वारा लगातार ज्ञान मुद्रा करने से उसका ज्ञान-नेत्र (शिव-नेत्र) खुल सकता है, अन्त:दृष्टि प्राप्त होकर छठी इंद्रिय का विकास हो सकता है। दिव्य-चक्षु के खुलने से साधक त्रिकाल की घटनाओं को यथावत् देख सकने तथा दूसरे के मन की बातें जान सकने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

वायु मुद्रा

तर्जनी (अंगूठे के साथ वाली) अंगुली को मोड़कर अंगूठी की जड़ में लगाकर उसे अंगूठे से हल्का-सा दबाने पर वायु मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से रोगी के शरीर में वायु तत्त्व शीघ्रता से घटने लगता है। अत: वायु के प्रकुपित होने से उत्पन्न होने वाले सभी रोग इस मुद्रा से शान्त हो जाते हैं।

❑ वायु मुद्रा की सहयोगी प्राण मुद्रा है। यदि इससे लाभ नजर न आता हो, तो इसके साथ प्राण मुद्रा का अभ्यास कुछ देर तक करना हितकर सिद्ध होता है।
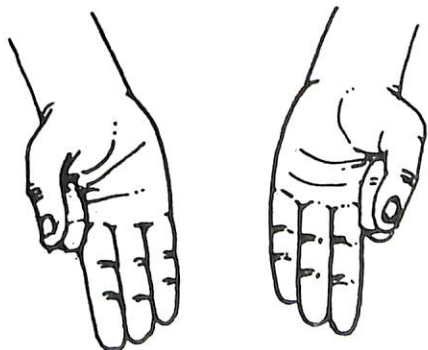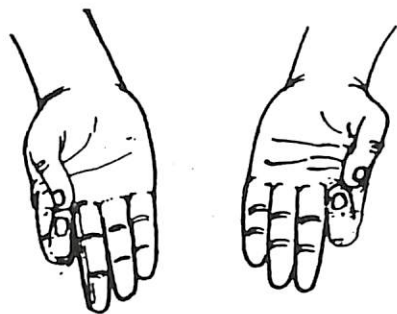
❑ हस्तरेखा विज्ञान की दृष्टि से इससे शनि पर्वत और रेखा के दोष दूर होते हैं।

आकाश मुद्रा

मध्यमा (सबसे बड़ी उंगली) को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाने पर आकाश मुद्रा बन जाती है। बाकी अंगुलियां सहज-सीधी रखनी चाहिए।

इस मुद्रा को करने से शरीर में आकाश तत्त्व में वृद्धि होती है। मध्यमा उंगली का हृदय के साथ खास सम्बन्ध है, अत: यह मुद्रा हृदय के लिए लाभदायक है। आपने देखा होगा कि अधिकांश जप-क्रिया या माला फेरने में मध्यमा उंगली का उपयोग किया जाता है।

भौतिक सुखों जैसे—द्रव्य प्राप्ति, संतान प्राप्ति, परिवार शांति आदि के लिए माला अंगूठे पर रखकर मध्यमा उंगली से फेरने का विधान है जबकि मोक्ष हेतु अनामिका अंगुली से और बैर-क्लेश आदि के नाश के लिए तर्जनी उंगली से माला फेरना उचित है। माला को सदैव दाहिने हाथ के अंगूठे पर रख हृदय के पास स्पर्श करते हुए फेरना चाहिए। साथ ही ध्यान रखें कि माला के मणियों को फिराते समय उनके नख न लगें और सुमेरु का उल्लंघन न हो, अन्यथा लाभ कम होता है। इसके अतिरिक्त ये भी नियम है कि माला साफ, समान व पूरे 108 मणियों तथा सुन्दर सुमेरु वाली हो। शुभ कार्यों के लिए सफेद माला व कष्ट निवारण के लिए लाल माला का प्रयोग प्राय: किया जाता है।

माला की तरह प्रणाम करने का विधान भी अर्थपूर्ण है। प्रणाम करने के लिए अपने बाएं हाथ से पूजनीय व्यक्ति के बाएं पैर को और दाएं हाथ से उसके दाएं पैर को छूते हुए प्रणाम करना चाहिए अर्थात् हमें हाथों को क्रॉस बनाते हुए गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिए। इससे व्यक्ति का हमारे सीधे हाथ से सीधा पैर और उलटे हाथ से उलटा पैर ही स्पर्श होगा। इस प्रकार पूजनीय व्यक्ति के शरीर से निकलने वाला विद्युत प्रवाह (ऋणात्मक और धनात्मक) या तेज का प्रभाव चरण स्पर्श करने वाले के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

❑ हस्तरेखा विज्ञान की दृष्टि से, शनि ग्रह से सम्बन्ध रखने वाले रोगों में यह मुद्रा लाभप्रद सिद्ध होगी जबकि जन्मकुंडली में शनि नीच का हो।

यदि जम्भाई लेते या उबासी लेते हुए अचानक जबड़ा फंस जाए और मुख बन्द न हो तो अंगूठे को मध्यमा उंगली के साथ रगड़ने या चुटकी बजाने से फंसा हुआ जबड़ा तत्काल खुल जाता है। यही कारण है कि बहुत से लोग उबासी लेते हुए (कारण न जानते हुए भी) मध्यमा और अंगूठे को मुंह के पास ले जाकर चुटकी बजाते हैं।

यह मुद्रा हृदय रोगों में भी लाभकारी है।

शून्य मुद्रा

आकाश तत्त्व की प्रतीक मध्यमा उंगली को अंगूठे की गद्दी (शुक्र के पर्वत) पर रखकर, ऊपर से अंगूठे से हल्का-सा दबाने से शून्य मुद्रा बन जाती है।

यदि किसी कारणवश शरीर में आकाश तत्त्व बढ़ गया हो तो इस मुद्रा के प्रभाव से घटकर सन्तुलित हो जाता है।

❑ सामान्यत: इसे रोग शान्त हो जाने तक करना चाहिए। इस मुद्रा के अभ्यास से बहरे व्यक्ति के अतिरिक्त गूंगे भी लाभान्वित हो सकते हैं। जन्म से बहरे या गूंगे होने पर इस मुद्रा का प्रभाव नहीं होता।
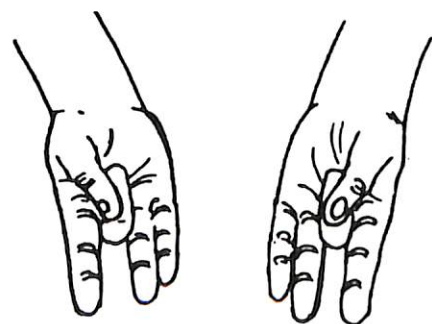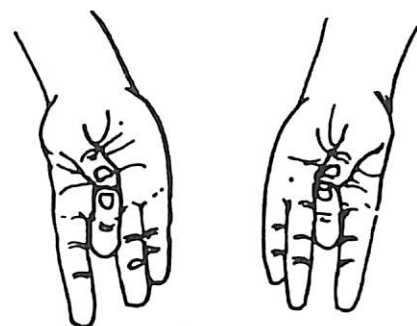
पृथ्वी मुद्रा

अनामिका (छोटी उंगली के पास वाली) उंगली तथा अंगूठे के सिरे को परस्पर मिलाने से पृथ्वी मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा को करने से शरीर में पृथ्वी तत्त्व बढ़कर सम होता है जिससे सभी प्रकार की शारीरिक कमजोरियां दूर होती हैं।

❑ अनामिका एक महत्त्वपूर्ण उंगली है। अंगूठे की तरह अनामिका से भी तेज का विशेष विद्युत प्रवाह होता है। योग शास्त्र के अनुसार ललाट पर द्विदल कमल का आज्ञाचक्र स्थित है। उस पर अनामिका और अंगूठे के द्वारा शुभ भावना के साथ विधिवत् तिलक करके कोई भी व्यक्ति अपनी अदृश्य शक्ति को दूसरे में पहुंचाकर उसकी शक्ति में बढ़ोत्तरी कर सकता है, जिसे शक्तिपात कहते हैं। इसे किसी भी आसन या स्थिति में बैठकर अधिकाधिक समय तक इच्छानुसार किया जा सकता है।

❑ इस मुद्रा के प्रभाव से आंतरिक सूक्ष्म तत्त्वों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होने पर विचारों की संकीर्णता मिटकर उदारता आने लगती है।

❑ आध्यात्मिक साधक को आगे बढ़ने में इस मुद्रा से सच्चे साथी की तरह सहयोग प्राप्त होता है।
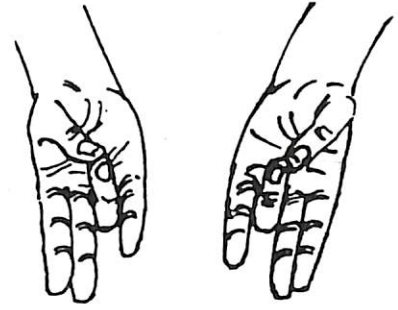
सूर्य मुद्रा

अनामिका (सबसे छोटी उंगली के पास वाली) अंगुली को अंगूठे की जड़ में लगाकर अंगूठे से हल्का-सा दबाने पर सूर्य मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा को पद्मासन में बैठकर दोनों हाथों से करना अच्छा रहता है।

❑ इस मुद्रा से अनामिका द्वारा हथेली में थाइरॉइड ग्रंथि का केन्द्र दबता है।

❑ सूर्य मुद्रा को प्रतिदिन सुबह-शाम 5 से 10 मिनट तक करना चाहिए।
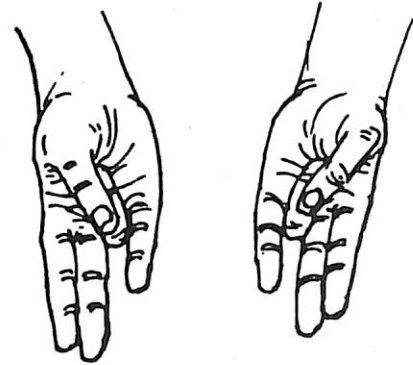
वरुण मुद्रा

सबसे छोटी उंगली (कनिष्ठिका) को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाने पर वरुण मुद्रा बनती है। इस तत्त्व की कमी से जहां त्वचा में रूखापन आता है, वहीं स्वभाव में भी चिड़चिड़ापन बन जाता है। एक अजीब-सा तनाव हमेशा तन-मन में बना रहता है। परिणामस्वरूप अपने सामाजिक ढांचे को भी ऐसा व्यक्ति बिगाड़ लेता है। इसको विपरीत अर्थात् जल तत्त्व की वृद्धि होने की कल्पना की उड़ान ऊंचाइयां छूने लगती हैं। कमी में पहली मुद्रा और अधिकता में दूसरी मुद्रा से लाभ होता है।
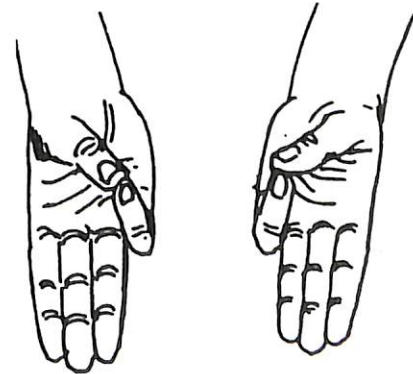
कनिष्ठिका को पहले अंगूठे की जड़ में लगाकर फिर अंगूठे से कनिष्ठिका को दबाने से दूसरी मुद्रा बनती है। इसमें बीच की तीन उंगलियां सहज एवं सीधी रहती हैं।
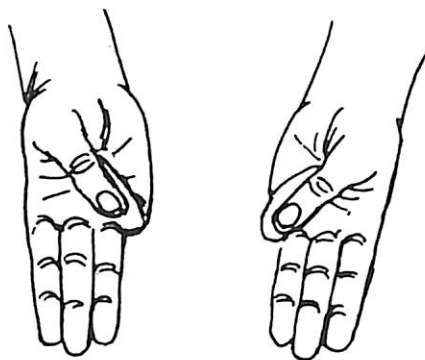
अपान मुद्रा

मध्यमा तथा अनामिका, दोनों उंगलियों के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिला देने से अपान मुद्रा बनती है। इस मुद्रा में कनिष्ठिका और तर्जनी उंगलियां सहज एवं सीधी रहती हैं।
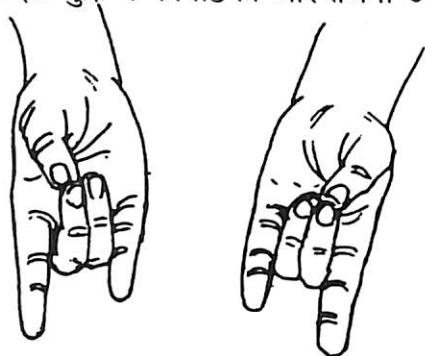
मानव स्वास्थ्य-रक्षा के लिए अपान मुद्रा बहुत महत्त्वपूर्ण क्रिया है। क्योंकि यह स्वस्थ शरीर की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता—विसर्जन क्रिया को नियमित करती है और शरीर को निर्मल बनाती है। यद्यपि योगासनों द्वारा भी शारीरिक निर्मलता प्राप्त होती है, फिर भी साधक के शरीर को योग की उच्च स्थिति में पहुंचने के लिए जिस सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वच्छ स्थिति की आवश्यकता रहती है, वह हठयोग की क्रियाओं के पश्चात्, अपान मुद्रा के निरन्तर अभ्यास द्वारा ही सम्भव हो पाती है।

❑ साधना में प्राण एवं अपान को सम करके मिला देने का नाम ही एक प्रकार से योग है। दूसरे शब्दों में, योग की ऊंची उड़ान के लिए प्राण-अपान का संयोग होना परम आवश्यक है। प्राण एवं अपान मुद्रा को प्रतिदिन बार-बार करते रहने से प्राण व अपान वायु की स्थिति शरीर को समत्व प्रदान करती है।

❑ इस मुद्रा की कोई समय-सीमा नहीं है। इस मुद्रा का अभ्यास जितना अधिक किया जाए, उतना ही अधिक लाभदायक रहेगा।

अपान मुद्रा के प्रभाव से शरीर निर्मल होता है और सम्पूर्ण विजातीय द्रव्य या मल सरलतापूर्वक शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

इसके अभ्यास से सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं और इनमें वृद्धि भी होती है।

प्राण मुद्रा

कनिष्ठिका और अनामिका (सबसे छोटी तथा उसके पास वाली) उंगलियों के सिरों को अंगूठे के सिरे से मिलाने पर प्राण मुद्रा बनती है। शेष दो उंगलियां सीधी रहती हैं।

प्राण मुद्रा एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मुद्रा है। रहस्यमय है जिसके संबंध में ऋषि-मुनियों ने अनन्तकाल तक तप, स्वाध्याय एवं आत्मसाधना करते हुए कई महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं। इसका अभ्यास प्रारंभ करते ही मानो

शरीर में प्राण शक्ति को तीव्रता से उत्पन्न करने वाला डायनमो चलने लगता है। फिर ज्यों-ज्यों प्राण शक्ति रूपी बिजली शरीर की बैटरी को चार्ज करने लगता है, त्यों-त्यों चेतना का अनुभव होने लगता है। प्राण शक्ति का संचार करने वाली इस मुद्रा के अभ्यास से व्यक्ति शारीरिक व मानसिक दृष्टि से शक्तिशाली बन जाता है।

❑ ज्योतिष के हिसाब से सूर्य की अंगुली अनामिका समस्त विटामिन और प्राण शक्ति का केन्द्र मानी जाती है। बुध की उंगली कनिष्ठिका युवा शक्ति व कुमारावस्था का प्रतिनिधित्व करती है अर्थात् इस मुद्रा में सूर्य-बुध की उंगलियों का अग्नि (तेज) के प्रतीक अंगूठे के साथ महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इस मुद्रा के अभ्यास से जीवन और बुध रेखा के दोष दूर होते हैं। शुक्र के अविकसित पर्वत का विकास होने लगता है।

❑ इस मुद्रा में पृथ्वी तत्त्व के प्रतीक अनामिका व जल तत्त्व की प्रतीक कनिष्ठिका का अंगूठे अर्थात् अग्नि तत्त्व से मिलन होता है। इसके परिणाम स्वरूप न केवल शरीर में प्राण शक्ति का संचार तेज होता है बल्कि रक्त संचार उन्नत होने से रक्त नलिकाओं की रुकावट दूर होती है तन-मन में नवस्फूर्ति, आशा एवं उत्साह उत्पन्न होता है।

यदि योग-साधना या महीनों लम्बी तपस्या के दौरान अन्न-जल न लेने से अत्यन्त कृशता या कमजोरी महसूस हो रही हो तो ऐसी स्थिति में प्राण मुद्रा करने से साधक को भूख-प्यास की तीव्रता नहीं सताती। कुल मिलाकर यह मुद्रा समस्त गड़बड़ियां दूर करके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास में सहायता करने वाली है।

अपानवायु मुद्रा

तर्जनी (अंगूठे के पास वाली) उंगली को अंगूठे की जड़ में लगाकर अंगूठे के अग्रभाग को मध्यमा और अनामिका (बीच की दोनों अंगुलियां) के अगले सिरे से मिला देने से अपानवायु मुद्रा बनाती है। इस मुद्रा में कनिष्ठिका अलग से सहज एवं सीधी रहती है।

इस मुद्रा का प्रभाव हृदय पर विशेष रूप से पड़ता है। अत: इसे हृदय मुद्रा या मृत संजीवनी मुद्रा भी कहते हैं।

❑ अपानवायु मुद्रा में दो मुद्राएं अपान मुद्रा तथा वायु मुद्रा एक साथ की जाती हैं। अत: दोनों मुद्राओं का सम्मिलित और तत्क्षण प्रभाव एक साथ पड़ता है। जैसे पेट की गैस और शारीरिक वायु दोनों का ही शमन होता है।

❑ हाथ में सूर्य पर्वत अति विकसित और चन्द्र पर्वत अविकसित होने तथा हृदय रेखा दोषपूर्ण होने पर यह मुद्रा 15 मिनट सुबह-शाम करने से लाभ मिलता है।

शंख मुद्रा

बाएं हाथ के अंगूठे को दोनों हाथ की मुट्ठी में बंद करके बाएं हाथ की तर्जनी उंगली को दाहिने हाथ के अंगूठे से मिलाने से शंख मुद्रा बनती है। इस मुद्रा में बाएं हाथ की बाकी तीन उंगलियों को पास में सटाकर दाएं हाथ की
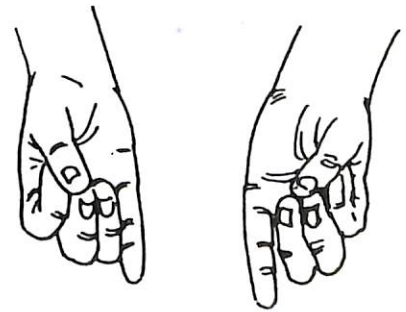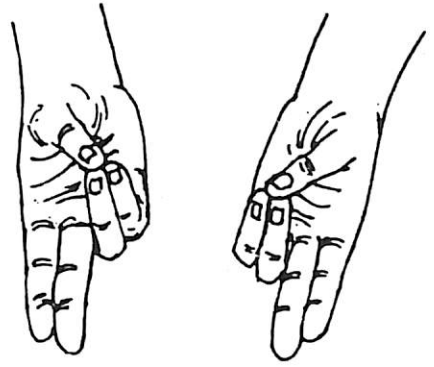
बन्द उंगलियों पर हल्का-सा दबाव दिया जाता है। इसी प्रकार हाथ बदल कर अर्थात् दाएं हाथ के अंगूठे को बाएं हाथ की मुट्ठी में बन्द करके शंख मुद्रा बनाई जाती है।

इस मुद्रा में अंगूठे का दबाव हथेली के बीच के भाग पर और मुट्ठी की तीन उंगलियों का दबाव शुक्र के पर्वत पर पड़ता है जिससे हथेली में स्थित नाभि और थायरॉइड (पूल्लिका) ग्रंथि के केन्द्र दबते हैं। परिणामस्वरूप नाभि और थायरॉइड ग्रंथि के विकार ठीक होते हैं।

- यह मुद्रा पूजन में भी प्रयुक्त होती है।
- इसका प्रयोग लम्बे समय तक किया जा सकता है।
- इस मुद्रा का नाभिचक्र से विशेष सम्बन्ध है जिसके कारण नाभि से सम्बन्धित शरीर की नाड़ियों पर सूक्ष्म और स्वास्थ्यवर्धक प्रभाव पड़ता है तथा स्नायुमण्डल शक्तिशाली बनती है।

सहज शंख मुद्रा

यह एक दूसरे प्रकार की शंख है जो दोनों हाथों की उंगलियों को आपस में फंसाकर, हथेलियां दबाकर तथा दोनों अंगूठों को बराबर में सटाकर रखने से बनती है।

इसे वज्रासान या सुखासन में 5 से 10 मिनट तक करना चाहिए। द्विगुणित लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से इसे मूलबन्ध (गुदा के संकोचन) और प्राणायाम के साथ भी किया जा सकता है।
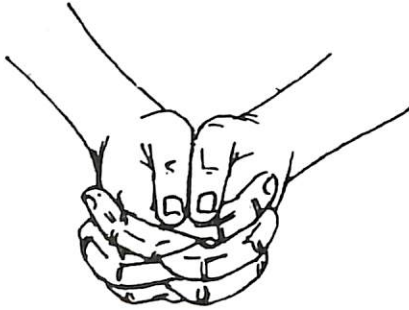
- मूलबन्ध करते समय सांस की गति स्वाभाविक रूप से रुक जाती है और शरीर में कम्पन-सा होने लगता है। योग के शब्दों में शौच की अवस्था में जब हम मल को रोकते हैं, तब शंखिनी नाड़ी को ऊपर की ओर खींचना पड़ता है, जबकि मूत्र को रोकने के लिए कुहू नाड़ी को खींचा जाता है। मूलबन्ध के नियमित अभ्यास से गुदा प्रदेश के स्नायु और काम ग्रंथियां सबल एवं स्वस्थ होती हैं। इससे स्तम्भन शक्ति बढ़ती है।

- हथेलियों की गद्दियों में मणिपूर चक्र व पेट की नसें मिलती हैं। अतः हथेलियों को परस्पर दबाने से हथेली में अंगूठे के नीचे गद्दी स्थित मणिपूर शक्ति के केन्द्र पर विशेष असर पड़ता है। इससे हृदय व नाभिचक्र प्रभावित होते हैं तथा रक्त का संचार सही होता है।

लिंग मुद्रा

दोनों हाथों की उंगलियों को आपस में फंसाकर अंगूठे (बायां या दायां कोई एक) को सीधा रखने से लिंग मुद्रा बन जाती है।

इस मुद्रा से शरीर में गर्मी की वृद्धि होती है, अतः इसे सर्दी में करना विशेष उपयोगी है। इस मुद्रा को करने के दौरान कुछ अधिक मात्रा में पानी पीना अथवा फलों के रस, दूध-घी का सेवन करना अच्छा रहता है।

- इस मुद्रा का अभ्यास किसी भी समय किया जा सकता है, लेकिन सिर्फ आवश्यकतानुसार। शरीर में उष्णता उत्पन्न करने वाली इस मुद्रा को अधिक लम्बे समय तक और स्वेच्छानुसार नहीं करना चाहिए।

शरीर में अधिक सर्दी महसूस होने या शीत बाधा होने पर लिंग मुद्रा के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। इसे अधिक देर तक करने से सर्दियों में भी पसीना आता है।

ध्यान मुद्रा

पद्मासन में बैठकर बाएं हाथ की हथेली पर दाएं हाथ की हथेली को (उल्टे हाथ पर सीधे हाथ को) हल्के से रखने से ध्यान मुद्रा बनती है।

ध्यान रखें कि इस मुद्रा में सिर, गर्दन एवं रीढ़ की हड्डी सीधी रहे। आंखें और होंठ सहजता से बन्द रहें। ध्यान अपने इष्टदेव के स्वरूप पर टिकाएं अथवा कायोत्सर्ग करें अर्थात् शरीर से समता रखते हुए कुछ देर के लिए विचार रहित अवस्था में रहने का प्रयास करें।

अष्टांग योग (यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) के एक अंग 'ध्यान' की साधना में यह मुद्रा विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुई है।

❑ जो व्यक्ति पद्मासन नहीं कर सकते, उन्हें ध्यान मुद्रा सुखासन या स्वस्तिक अथवा पालथी आसन में करना चाहिए। यह सहज ध्यान मुद्रा है। सहज ध्यान मुद्रा को साधारण व्यक्ति अधिक लम्बे समय तक सरलता से कर सकता है। इससे ध्यान मुद्रा के लाभ भी मिल जाते हैं।

❑ ध्यान मुद्रा में यदि हथेलियां एक दूसरे पर रखने के बाद दोनों हथेलियां ज्ञान मुद्रा की स्थिति में रखी जाएं तो ध्यान मुद्रा तथा ज्ञान मुद्रा के सम्मिलित लाभ के साथ पद्मासन के लाभ भी मिल जाते हैं।

❑ साधक के लिए ध्यान मुद्रा में समय की कोई सीमा नहीं है। लेकिन सहजता के साथ पद्मासन करने की क्षमता के अनुरूप ध्यान मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। साधारण व्यक्ति को इसे धीरे-धीरे बढ़ाते हुए कम-से-कम 20 मिनट से एक घंटे तक करना चाहिए। ध्यान मुद्रा न कर सकने की अवस्था में सहज ध्यान मुद्रा करके लाभ उठाना चाहिए।

❑ मन की चंचलता शांत होकर चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। सात्विक विचारों की उत्पत्ति होती है और प्रभु भजन में मन लगता है।

❑ ध्यान के प्रभाव से साधक को ध्यान की उच्चतर स्थिति में पहुंचने में सहायता मिलती है। आत्म साक्षात्कार और ईश्वर के साक्षात्कार में यह मुद्रा सहायक है।

मुद्रा-विज्ञान : एक नजर में

क्रमांक	नाम	अंगूठे से उंगली	मुद्राओं से होने वाले लाभ
1.	ज्ञान मुद्रा	अंगूठे से तर्जनी	स्नायुमण्डल, मस्तिष्क एवं मानसिक विकार नष्ट होते हैं। अनिद्रा में यह रामबाण है।
2.	वायु मुद्रा	अंगूठे से तर्जनी	वात विकार, लकवा एवं वायुशूल में लाभ होता है।
3.	आकाश मुद्रा	अंगूठे से मध्यमा	आकाश तत्त्व की कमी के कारण होने वाले विकारों में उपयुक्त है। हृदय और हड्डियों के विकार में उपयोगी है।
4.	शून्य मुद्रा	अंगूठे से मध्यमा	कान के विकारों में लाभकारी
5.	पृथ्वी मुद्रा	अंगूठे से अनामिका	शारीरिक कमजोरी दूर करके जीवन तत्त्वों का निर्माण करती है।
6.	सूर्य मुद्रा	अंगूठे से अनामिका	शरीर का वजन घटाने के लिए लाभकारी है।
7.	वरुण मुद्रा	(क)अंगूठे से कनिष्ठिका (ख)अंगूठे से कनिष्ठिका	रक्त दोष और त्वचा रोगों में लाभदायक है। शरीर में पानी की अधिकता से उत्पन्न होने वाले रोगों को दूर करने में लाभदायक है।
8.	अपान मुद्रा	अंगूठे से मध्यमा और अनामिका	शारीरिक उत्सर्जन क्रिया को कार्यक्षम बनाने के लिए लाभदायक है। साधना और प्राण और अपान सम करके मिलाना ही एक महान योग है। इस मुद्रा से बुरे विचार हटकर मन में सात्विक विचार आते हैं।
9.	प्राण मुद्रा	अंगूठे से अनामिका	इस मुद्रा से शरीर में प्राण शक्ति, रोग निरोधक शक्ति तथा कनिष्ठिका प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। कमजोरी दूर होकर आंखों के विकार नष्ट होते हैं। मानसिक कमजोरी दूर होती है।
10.	शंख मुद्रा	कृति देखिए	कंठ के सभी दोष दूर होते हैं। नाभि और थायरॉइड ग्रंथि के दोष समाप्त होते हैं।
11.	सहज शंखमुद्रा	कृति देखिए	सभी लाभ शंख मुद्रा के समान हैं।
12.	अपानवायु मुद्रा	अंगूठे से तर्जनी, मध्यमा और अनामिका	इसे हृदय मुद्रा या मृतसंजीवनी मुद्रा भी कहते हैं। यह हृदय विकार में लाभदायक और उच्च रक्तचाप में उपयोगी है।
13.	लिंग मुद्रा	कृति देखिए	सर्दी, खांसी और बुखार दूर करने के लिए उपयोगी है।
14.	ध्यान मुद्रा	कृति देखिए	ध्यान के लिए अधिक उपयुक्त है।

अनेक योगी इस बात को जानते हुए भी कि मूलबंध साधना ही वस्तुत: कुण्डलिनी शक्ति को जगाने वाला एक महत्त्वपूर्ण रहस्य है, मानव शरीर में स्थित विभिन्न चक्रों की स्थिति की चर्चा ही अधिक करते हैं। कई विद्वान लेखकों ने भी अपनी पुस्तकों में चक्रों को ही प्रमुखता प्रदान की है, यह जानते हुए भी कि मूलबंध की साधना किए बिना कुण्डलिनी शक्ति की साधना नहीं हो सकती। सर जॉन बुडरॉफ ने भी कुण्डलिनी जागरण के लिए मूलबंध नामक क्रिया को ही श्रेष्ठ माना है। मूलबंध को लगाने के साथ ही मूलबंध क्रिया का पूरा-पूरा लाभ साधक को उठाना चाहिए अर्थात् विशेष यत्न द्वारा अपने पेट को खींचकर और श्वास को बाहर निकालकर दृढ़ उड्डीयान बंध लगा लेना चाहिए। इससे मूलबंध नामक योग क्रिया में कई प्रकार की नवीन आंतरिक सूक्ष्म क्रियाएं संपादित होने लगेंगी। इसके साथ ही साधक को योनि मुद्रा का अभ्यास विशेष रूप-से पद्मासन लगाकर करना चाहिए।

योनि मुद्रा

यौगिक दृष्टि से अपने अंदर कई प्रकार के रहस्य छिपाए रखने वाली मुद्रा का वास्तविक नाम ''योनि मुद्रा'' है। तत योग के अनुसार केवल हाथों की उंगलियों से महाशक्ति भगवती की प्रसन्नता के लिए योनि मुद्रा प्रदर्शित करने की आज्ञा है। प्रत्यक्ष रूप-से इसका प्रभाव लंबी योग साधना के अंतर्गत तंत्र-मंत्र-यंत्र साधना से भी दृष्टिगोचर होता है। इस मुद्रा के निरंतर अभ्यास से साधक की प्राण-अपान क्रियाओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

योग रहस्यों से परिचित सिद्ध योगियों ने प्राण-अपान वायु को मिला देने वाली मूलबंध क्रिया को भी साथ करने से जो स्थिति बनती है, उसे ही योनि मुद्रा की संज्ञा दी है। यह बड़ी चमत्कारी मुद्रा है।

पद्मासन की स्थिति में बैठकर, दोनों हाथों की उंगलियों से योनि मुद्रा बनाकर और पूर्व मूलबंध की स्थिति में सम्यक् भाव से स्थित होकर प्राण-अपान को मिलाने की प्रबल भावना के साथ मूलाधार स्थान पर यौगिक संयम करने से कई प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं।

ऋषियों का मत है कि जिस योगी को उपरोक्त स्थिति में योनि मुद्रा का लगातार अभ्यास करते-करते सिद्धि प्राप्त हो गई है, उसका शरीर साधनावस्था में भूमि से आसन सहित ऊपर अधर में स्थित हो जाता है। संभवत: इसी कारण आदि शंकराचार्यजी ने अपने योग रत्नावली नामक विशेष ग्रंथ में मूलबंध का उल्लेख विशेष रूप-से किया है।

मूलबंध योग की एक अद्भुत क्रिया है। इसको करने से योग की अनेक कठिनतम क्रियाएं स्वत: ही सिद्ध हो जाती हैं, जिनमें अश्विनी और बज्रौली मुद्राएं प्रमुख हैं। इन मुद्राओं के सिद्ध हो जाने से योगी में कई प्रकार की शक्तियों का उदय हो जाता है।

अश्विनी मुद्रा

इस मुद्रा से साधक में घोड़ों जैसी शक्ति आ जाती है, जिसे ''हॉर्स पॉवर'' कहते हैं। इस मुद्रा में गुदा-द्वार का बार-बार संकोचन और प्रसार किया जाता है। इसी से मुद्रा की सिद्धि हो जाती है। इसके द्वारा कुण्डलिनी जागरण में सुगमता रहती है और अनेक रोग नष्ट होकर शारीरिक बल की वृद्धि होती है।

अश्विनी मुद्रा सिद्ध होने से साधक की अकालमृत्यु कभी नहीं होती। गुदा और उदर से संबंधित रोगों का इसके द्वारा शमन होता है तथा दीर्घजीवन की उपलब्धि होती है। बिना मूलबंध के अश्विनी मुद्रा नहीं हो सकती।

बज्रौली मुद्रा

बज्रौली मुद्रा भी मूलबंध का अच्छा अभ्यास किए बिना किसी प्रकार संभव नहीं है। यह मुद्रा केवल योगी के लिए ही नहीं, भोगी के लिए भी अत्यंत लाभकारी है। इस मुद्रा में पहले दोनों पांवों को भूमि पर दृढ़तापूर्वक टिकाकर, दोनों पांवों को धीरे-धीरे दृढ़तापूर्वक ऊपर आकाश में उठा दें। इससे बिंदु-सिद्धि होती है।

शुक्र को धीरे-धीरे ऊपर की आकुंचन करें अर्थात् इंद्रिय के आंकुचन के द्वारा वीर्य को ऊपर की ओर खींचने का अभ्यास करें तो यह मुद्रा सिद्ध होती है। विद्वानों का मत है कि इस मुद्रा के अभ्यास में स्त्री का होना आवश्यक है, क्योंकि भग में पतित होता हुआ शुक्र ऊपर की ओर खींच लें तो रज और वीर्य दोनों ही चढ़ जाते हैं। यह क्रिया अभ्यास से ही सिद्ध होती है।

कुछ योगाचार्य इस प्रकार का अभ्यास शुक्र के स्थान पर दुग्ध से करना बताते हैं। जब दुग्ध खींचने का अभ्यास सिद्ध हो जाए, तब शुक्र को खींचने का अभ्यास करना चाहिए। वीर्य को ऊपर खींचने वाला योगी ही ऊर्ध्वरेता कहलाता है।

इस मुद्रा से शरीर हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी, सुंदर, सुडौल और जरा-मृत्यु रहित होता है। शरीर के सभी अवयव दृढ़ होकर मन में निश्चलता की प्राप्ति होती है। इसका अभ्यास अधिक कठिन नहीं है। यदि गृहस्थ भी इसे करें, तो बलवर्द्धन और सौंदर्यवर्द्धन का पूरा लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

शक्तिचालिनी मुद्रा

आठ अंगुल लंबा और चार अंगुल चौड़ा मुलायम वस्त्र लेकर नाभि पर लगाएं और कटिसूत्र में बांध लें। फिर शरीर में भस्म रमाकर सिद्धासन में बैठें और प्राण को अपान से युक्त करें। जब तक गुह्य द्वार से चलती हुई वायु प्रकाशित न हो, इस समय तक गुह्य द्वार को संकुचित रखें। इससे वायु का जो निरोध होता है, उसमें कुम्भक के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती हुई सुषुम्ना मार्ग से ऊपर जाकर खड़ी हो जाती है। योगमुद्रा से पहले इसका अभ्यास करने पर ही योनि मुद्रा की पूर्ण सिद्धि होती है।

इस मुद्रा से कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। यह शरीर के अधोभाग में सोती रहती है। इसका आकार सर्प के समान होता है। जब तक यह सोती है, तब तक सभी आंतरिक शक्तियां सुप्त पड़ी रहती हैं। इसलिए कुण्डलिनी का जाग्रत होना साधक के लिए बहुत आवश्यक है।

प्राण-अपान को संयुक्त करने की क्रिया प्राणवायु को पूरक द्वारा भीतर खींचने और उड्डीयान बंध से अपान वायु को ऊपर की ओर आकर्षित करने से पूर्ण होती है। इसमें गुह्य प्रदेश के संकोच और विस्तार का अभ्यास होने से अधिक सरलता हो सकती है।

तड़ागी मुद्रा

दोनों पांवों को दण्ड के समान धरती पर पसार लें और हाथों से उनके अंगूठों को पकड़ने तथा दोनों जांघों पर सिर को स्थापित करें, साथ ही उदर को तड़ाग (सरोवर) के समान कर लें। यह मुद्रा अनेक रोगों और वृद्धावस्था को भी दूर करने में सहायक सिद्ध होती है।

माण्डवी मुद्रा

मुख को बंद करके जुबान को तालु में घुमाएं और सहस्रार से टपकते हुए सुधारस को जुबान से धीरे-धीरे पीने

का यत्न करें। यही माण्डवी (या माण्डुकी) मुद्रा है। इसके द्वारा बालों की सफेदी, उनका झड़ना; शरीर पर झुर्रियों, मुंहासों आदि का पड़ना तथा निर्बलता आदि दूर होकर चिर-यौवन की प्राप्ति होती है। इससे रसोत्पादन होकर अमृतत्त्व की उपलब्धि होना संभव हो जाता है।

शाम्भवी मुद्रा

दृष्टि को दोनों भौंहों के मध्य स्थिर करके एकाग्र मन से परमात्मा का चिंतन करें तो ध्यान की परिपक्वता होने पर ज्योति-दर्शन होता है। यही शाम्भवी मुद्रा है। आत्मसाक्षात्कार के आकांक्षी पुरुषों के लिए यह अत्यंत कल्याणकारी मुद्रा है।

पंचधारणा मुद्रा

धारणा का अभिप्राय है, ध्यान के द्वारा ग्रहण करने की शक्ति। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पंच महाभूतों से यथार्थ का ज्ञान होना ही पंचधारणा मुद्रा का वास्तविक उद्देश्य है। यह मुद्रा पंच तत्त्वों से संबंधित होने के कारण उसको पृथक-पृथक धारणा में परिपक्व करती है, इसलिए यह निम्न पांच प्रकार की मानी जाती है—

- पार्थिवी : भूमि-संबंधी
- शाम्भवी : जल-संबंधी
- वैश्वानरी या आग्नेयी : अग्नि-संबंधी
- वायवी : वायु-संबंधी
- आकाशी : आकाश-संबंधी

इनकी सिद्धि होने पर मनुष्य सशरीर स्वर्गादि लोकों में आ-जा सकता है।

पाशिनी मुद्रा

दोनों पांवों को कंठ के पीछे की ओर ले जाकर उन्हें परस्पर मिलाएं और पाश के समान दृढ़ता से बांध लें। इसके अभ्यास से भी कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में बहुत सुगमता हो जाती है तथा साधक के शरीर में बल और पुष्टि का आविर्भाव होता है। मानसिक बलवर्द्धन में भी यह बहुत हितकर है।

काकी मुद्रा

मुख के होंठों का इस प्रकार संकोचन करें, जिससे कि कौए की चोंच के समान उसकी आकृति बन जाए (प्राय: मुख से सीटी बजाने में भी ऐसी आकृति बन जाती है)। इस प्रकार की आकृति बनाकर धीरे-धीरे वायु खींचकर पान करें। यह ध्यान रहे कि इस मुद्रा में नासिका-छिद्रों द्वारा वायु नहीं खींची जाती (नासिका द्वारा श्वास नहीं लिया जाता)।

यह गुदा, उदर, कंठ और हृदय विकार आदि को दूर करने के लिए बहुत उपयोगी है। साधक की जठराग्नि तीव्र होती है और कोष्ठबद्धता आदि विकारों का शमन हो जाता है।

मातंगिनी मुद्रा

यह मुद्रा जल में कंठ पर्यन्त खड़े होकर की जाती है। इसमें नासिका से जल खींचकर मुख-द्वार से बाहर निकाल दिया जाता है। यह क्रिया बार-बार दोहराई जाती है। इस प्रकार विपरीत क्रम से बार-बार अभ्यास करें। इस

मुद्रा के अभ्यास से शरीर में बल की वृद्धि होती है, वृद्धावस्था का आगमन रुक जाता है और मृत्यु का भी भय नहीं रहता। कुण्डलिनी जाग्रत करने में इसका सहयोग विशेषकर मिलता है।

भुजंगिनी मुद्रा

इसमें मुख को फैलाकर कंठ से बाहरी वायु खींची जाती है। तालु और जिह्वा के मध्य वायु के घूमने से शरीर में अद्‌भुत शक्ति का आविर्भाव होता है। यह मुद्रा अजीर्ण आदि उदर रोगों को नष्ट करने में भी बहुत उपयोगी है।

इस प्रकार मुद्राओं के अभ्यास से साधक को सब प्रकार के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की प्राप्ति होती है। योगाचार्यों के अनुसार, ''*नास्ति मुद्रासनकिंचित्‌सिद्धिदंक्षितिमण्डले* (घेरण्ड संहिता)'' अर्थात्‌ मुद्राओं के समान सिद्धिदायक कोई अन्य साधन भू-मंडल पर नहीं है। इसलिए योगसिद्धि के आकांक्षीजनों को मुद्राओं का अभ्यास करना श्रेयस्कर है।

मुद्राओं को भोगी पुरुषों के लिए भोगप्रद और मुमुक्षुओं के लिए मोक्षप्रद माना गया है। इसलिए मुद्राएं गृहस्थ और संन्यासी दोनों के लिए उपयोगी हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी मुद्राओं को किया जाए, वरन्‌ जो अपनी शारीरिक स्थिति के अनुकूल और अभ्यास में सरल प्रतीत हो, उसी को करना चाहिए। ऐसा करने वाले साधक को अवश्य ही योगसिद्धि हो सकती है और वह कुण्डलिनी जाग्रत करने में पूर्णयता समर्थ हो सकता है।

साधना करने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह साधना में कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं पर पूरा नियंत्रण रखे तथा समय-समय पर उचित तांत्रिक प्रक्रियाओं का भी समन्वय करता रहे। इस दृष्टि से जिस प्रकार आसन पात्रासादन, अर्चन आदि में क्रियाओं का विधान है, उसी प्रकार उनके साथ कुछ मुद्रा बनाने का विधान है। ये मुद्राएं मुख्य रूप-से हाथ और उसकी उंगलियों के प्रयोग से बनती हैं। जैसे हमारा शरीर पंचतत्त्वमय है। अतः शास्त्रकारों ने कहा है कि इन उंगलियों के प्रयोग से इन तत्त्वों की न्यूनाधिकता दूर की जा सकती है तथा तत्त्वों की समता-विषमता से होने वाली कमी को उंगलियों की मुद्रा से सम बनाया जा सकता है। इतना ही नहीं, ऐसी मुद्राओं के सहयोग से उन तत्त्वों को स्वेच्छापूर्वक घटाया-बढ़ाया भी जा सकता है। ये तत्त्व क्रमशः अंगुष्ठ में अग्नि, तर्जनी में वायु, मध्यमा में आकाश, अनामिका में पृथ्वी और कनिष्ठिका में जल के रूप में विद्यमान रहते हैं।

''*मुदं रातीति मुद्रा,* '' इस व्युत्पत्ति के अनुसार ये मुद्राएं देवताओं के समक्ष बनाकर दिखलाने से उन्हें प्रसन्नता प्रदान करती हैं। पूजा-विधानों में ''मुद्रा'' एक आवश्यक अंग माना गया है। देवी-देवताओं के समक्ष प्रकट की जाने वाली मुद्राएं पृथक-पृथक कर्म की दृष्टि से हजारों प्रकार की होती हैं, जिनमें कुछ जपांगभूत हैं तो कुछ नैवेद्यांगभूत। कुछ का प्रयोग कर्मविशेष के प्रसंग में होता है, तो कुछ मानस पूजा और अन्य पूजाओं के साथ प्रयुक्त होती हैं।

योगतंत्र के ग्रंथों में प्रायः प्रत्येक जप-पूजादि विधानों में देवता के अनुरूप मुद्रा दिखाने के बारे में निर्देश दिया गया है। जैसे श्रीगणेश-पूजा में एकदंत मुद्रा, बीजापूर मुद्रा, अंकुश मुद्रा, मोदक मुद्रा आदि। ऐसे ही शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्यादि देवों की मुद्राएं हैं। इनका नित्य, नैमित्तिक और काम्य-प्रयोग की दृष्टि से भी मंत्रपूर्वक साधन होता है और मंत्र सिद्ध हो जाने पर इनके प्रयोग से अभीष्ट फल प्राप्त होता है।

देवताओं की प्रसन्नता, चित्त की शुद्धि और विविध रोगों के नाश में मुद्राओं से बड़ी सहायता मिलती है। मुद्रातत्त्व को समझकर, प्रत्येक योगी को इनका साधन करना चाहिए। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में इन मुद्राओं से सहायता मिलती है। यहां हमने जिन मुद्राओं का वर्णन एवं चित्रण किया है, उससे प्रत्येक योगी, साधक को परिचित होना चाहिए।

मुद्राओं की आकृतियां
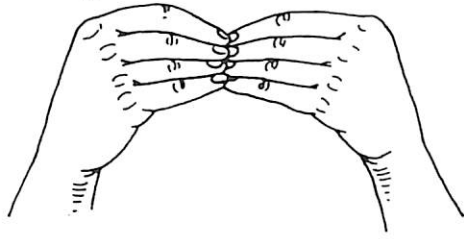
1. सुमुखम्

2. सम्पुटम्

3. विततम्
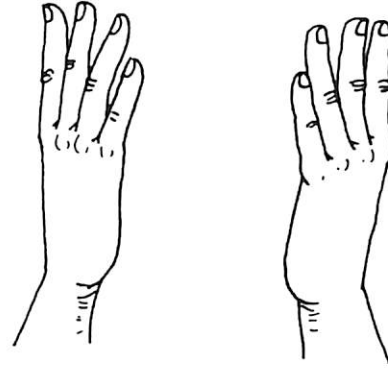
4. विस्तृतम्
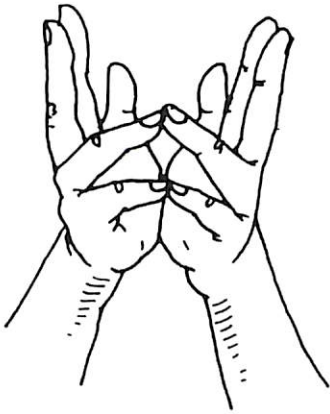
5. द्विमुखम

6. त्रिमुखम्
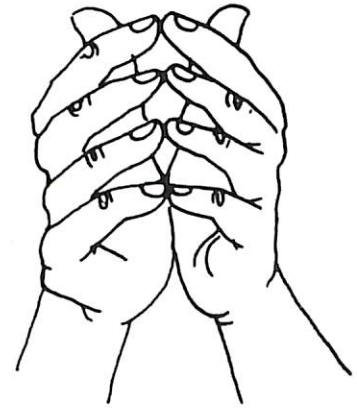
7. चतुर्मुखम्

8. पंचमुखम्
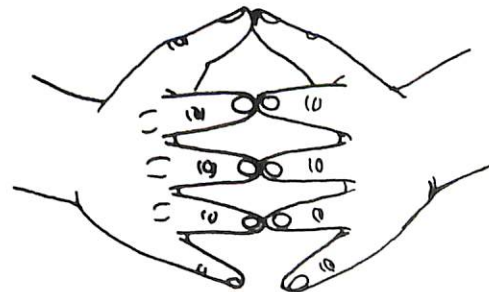
9. षणमुखम्
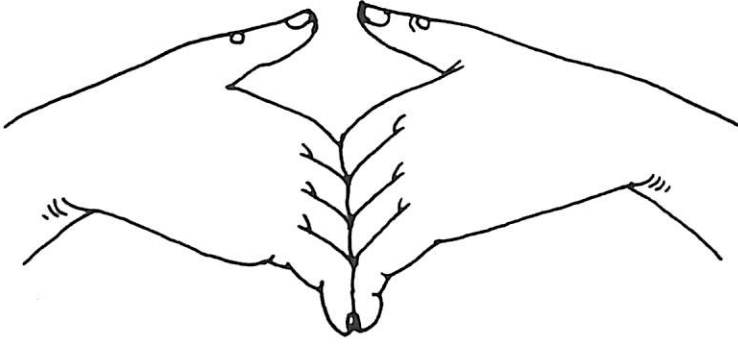
10. अधोमुखम्
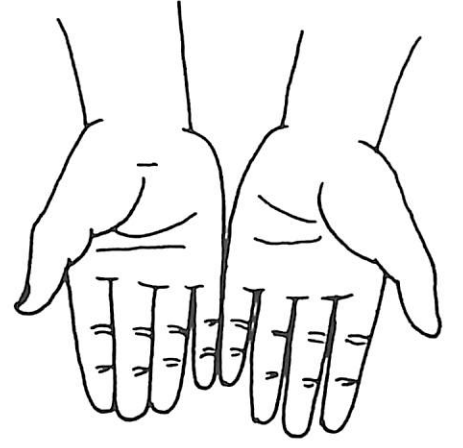
11. व्यापकांजलिम्
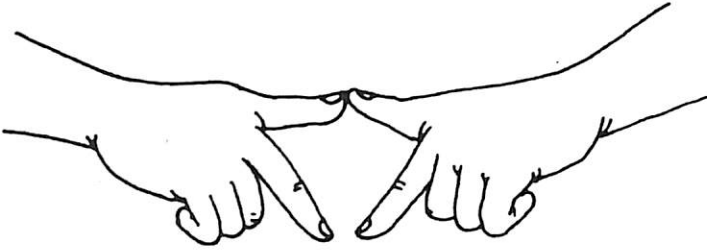
12. शकटम्
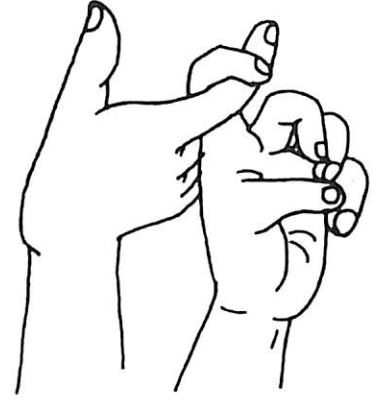
13. यमपाशम्
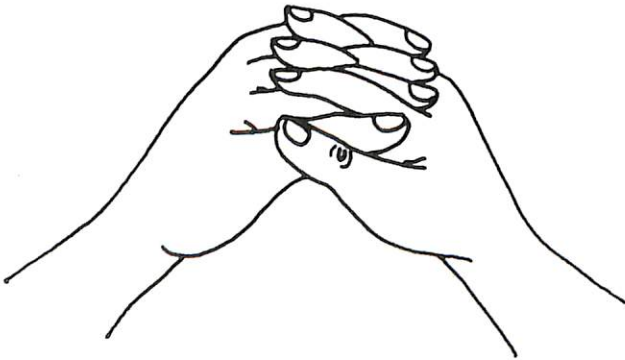
14. ग्रथितम्
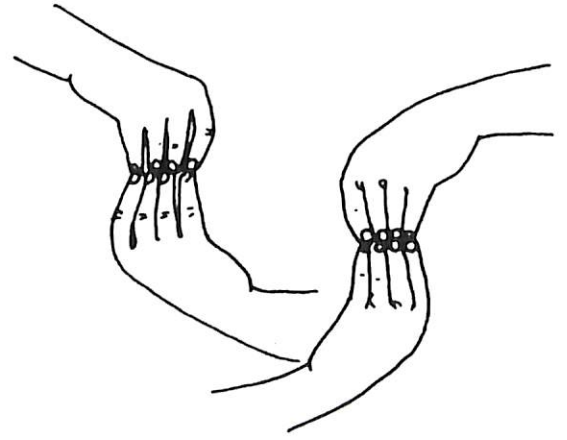
15. उन्मुखोन्मुखम्
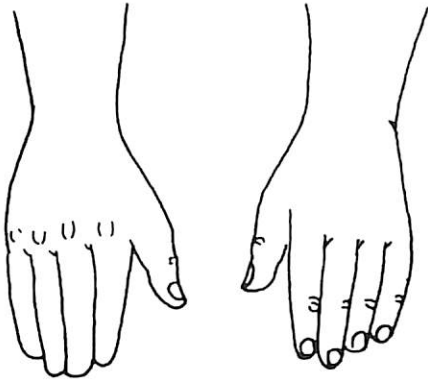
16. प्रलम्बम्
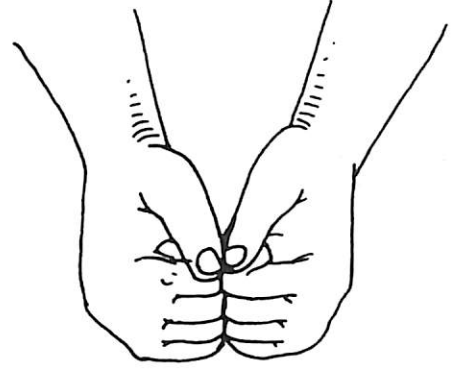
17. मुष्टिकम्

18. मत्स्यः

19. कूर्मः
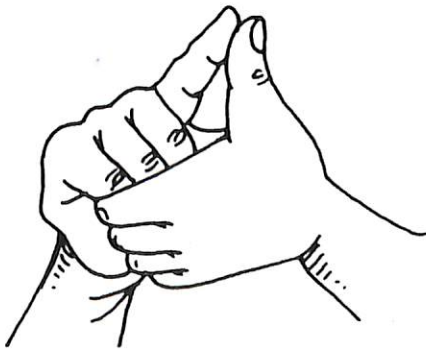
20. वराहकम्

21. सिंहाक्रांतम्
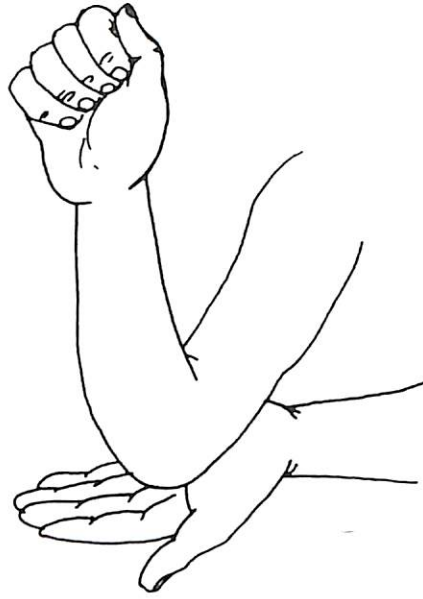
22. महाक्रांतम् *23. मुद्गरम्* *24. पल्लवम्*

निम्न 8 मुद्राएं जपादि में प्रयुक्त होने वाली 24 मुद्राओं के बाद की हैं—
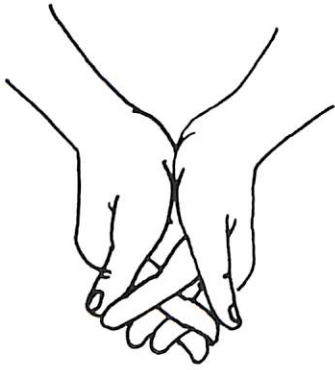
1. सुरभिः

2. ज्ञानम्

3. वैराग्यम्
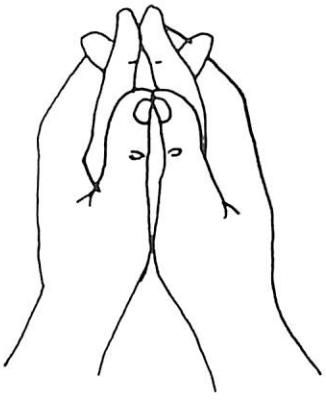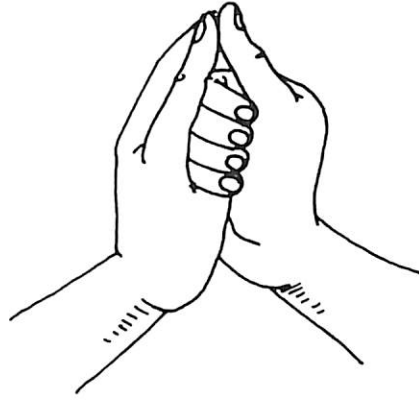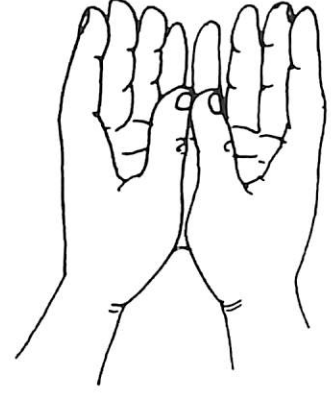
4. योनि *5. शंख* *6. पंकजम्*

7. लिंगम् *8. निर्वाणम्*

- **सुमुखम्**—दाएं-बाएं दोनों हाथों की दसों उंगलियां मोड़कर आपस में मिलाएं।
- **सम्पुटम्**—अपने दोनों हाथों को फुलाकर परस्पर मिलाएं।
- **विततम्**—दोनों हथेलियां आमने-सामने करें।
- **विस्तृतम्**—चित्रानुसार दोनों हाथों की उंगलियों को खोलकर हाथों को कुछ अधिक अलग करें।
- **द्विमुखम्**—दोनों हाथों की अनामिका से अनामिका और कनिष्ठिका से कनिष्ठिका मिलाएं।
- **त्रिमुखम्**—दोनों हाथों की मध्यमा उंगलियों को परस्पर मिलाएं।
- **चतुर्मुखम्**—दोनों तर्जनी उंगलियां और मिलाएं।
- **पंचमुखम्**—अब दोनों अंगूठे भी मिला दें।
- **षणमुखम्**—हाथ पूर्ववत् रखे हुए ही दोनों कनिष्ठिका खोलें।
- **अधोमुखम्**—हाथों को उल्टी अवस्था में ले जाकर, उंगलियों को मोड़ें और नीचे की तरफ करें।
- **व्यापकांजलिम्**—पूर्ववत् मिले हुए हाथों को शरीर की तरफ घुमाकर सीधा करें।
- **शकटम्**—दोनों हाथों को उल्टा कर, अंगूठे से अंगूठा मिलाएं तथा तर्जनियों को सीधा रख, मुट्ठी बांधें।
- **यमपाशम्**—तर्जनी से तर्जनी बांध, दोनों मुट्ठी बांधें।
- **ग्रथितम्**—दोनों हाथों की पांचों उंगलियों को आपस में बांधें।

❑ **उन्मुखोन्मुखम्**—दोनों हाथों की उंगलियों को मिलाकर पहले बाएं पर दाहिना, फिर दाहिने पर बायां हाथ रखें।

❑ **प्रलम्बम्**—दोनों हाथों की उंगलियों को हल्का मोड़कर हाथों को उल्टा कर, नीचे की ओर करें।

❑ **मुष्टिकम्**—अंगूठे ऊपर रखते हुए, मुट्ठियां परस्पर मिलाएं।

❑ **मत्स्यः**—दाहिने हाथ की पीठ पर बायां हाथ रखकर दोनों अंगूठे मिलाएं, जैसा कि चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

❑ **कूर्मः**—सीधे (चित्त) बाएं हाथ की मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठिका मोड़कर उल्टे दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका को उन तीनों उंगलियों के नीचे देकर बायीं तर्जनी पर दाहिनी कनिष्ठिका और बाएं अंगूठे पर दाहिनी तर्जनी रखें।

❑ **वराहकम्**—दाहिनी तर्जनी को बाएं अंगूठे से मिला, दोनों हाथों की उंगलियों को आपस में बांधें।

❑ **सिंहाक्रांतम्**—दोनों हाथों को कानों के पास करें।

❑ **महाक्रांतम्**—दोनों हाथों की उंगलियों को कानों के सामने करें।

❑ **मुद्गरम्**—दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधकर, उसकी कोहनी को बाएं हाथ की हथेली पर रखें।

❑ **पल्लवम्**—दाहिने हाथ की उंगलियों को मुंह के सामने कर हिलाएं।

इस प्रकार 24 मुद्राएं चित्रों की सहायता से करनी चाहिए। बाद की आठों मुद्राओं का वर्णन निम्न है—

❑ **सुरभि**—दोनों हाथों की उंगलियां गूंथकर बाएं हाथ की तर्जनी से दाहिने हाथ की मध्यमा, मध्यमा से तर्जनी, अनामिका से कनिष्ठिका और कनिष्ठिका से अनामिका उंगली मिलाएं।

❑ **ज्ञानम्**—दाहिने हांथ की तर्जनी से अंगूठा मिलाकर हृदय में तथा इसी प्रकार बायां हाथ बाएं पैर पर सीधा रखें।

❑ **वैराग्यम्**—दोनों हाथों की तर्जनियों से अंगूठा मिलाकर पैर पर सीधा रखें।

❑ **योनि**—दोनों मध्यमा के नीचे से बायीं तर्जनी के ऊपर दाहिनी अनामिका और दाहिनी तर्जनी पर बायीं अनामिका रख, दोनों तर्जनियों से बांध, दोनों मध्यमाओं को सीधा करें। तत्पश्चात् दोनों अंगूठे मध्यमा पर रखें।

❑ **शंख**—बाएं अंगूठे को दाहिनी मुट्ठी में बांधकर, दाहिने अंगूठे से बायीं उंगलियों को मिलाएं।

❑ **पंचकम्**—दोनों हाथों के अंगूठे तथा उंगलियों को मिलाकर ऊपर की ओर करें।

❑ **लिंगम्**—दाहिने अंगूठे को सीधा रखते हुए दोनों हाथों की उंगलियों को गूंथकर बायां अंगूठा दाहिने अंगूठे की जड़ के ऊपर रखें।

❑ **निर्वाणम्**—उल्टे (करपृष्ठ की तरफ) बाएं हाथ पर दाहिना हाथ सीधा रख, उंगलियों को परस्पर गूंथ, दोनों हाथ अपनी ओर घुमाकर, दोनों तर्जनियों को सीधी कान के समीप करें।

इस प्रकार उपरोक्त आठों मुद्राएं बन जाती हैं।

योगमुद्रा

यह मुद्रा पद्मासन का एक रूपांतर है। मत्स्यासन में पद्मासन लगाकर पीठ के बल लेटने की आवश्यकता पड़ती है और इस मुद्रा में पद्मासन लगाकर आगे की ओर झुककर मस्तक को भूमि पर सटा देने की क्रिया करनी पड़ती है। इस मुद्रा से कमर में लोच आती है। पाचक अंग अपने स्वाभाविक स्थानों पर स्थिर रहते हैं। कुण्डलिनी जाग्रत करने में इस आसन का उपयोग अधिक होता है। इसी कारण इसको ''योगमुद्रा'' कहते हैं।

इस मुद्रा को बनाने के लिए सर्वप्रथम फर्श पर कंबल या दरी बिछाकर, उस पर पांव फैलाकर बैठ जाएं। अब दाहिने पांव को घुटने से मोड़कर बाएं जंघे की जड़ में सटाकर रख दें। इसके बाद बाएं पैर को घुटने से मोड़कर दाहिनी जंघा की जड़ में सटाकर रख दें। दोनों पांवों की एड़ियां पेड़ू को दबाती रहनी चाहिए।

तत्पश्चात् दोनों हाथों को पीठ की ओर ले जाकर बाएं हाथ से दाहिने हाथ की कलाई पकड़ लें (जैसा कि चित्र में दिखाया गया है)। अब कमर से धड़ को धीरे-धीरे आगे की ओर झुकाएं।
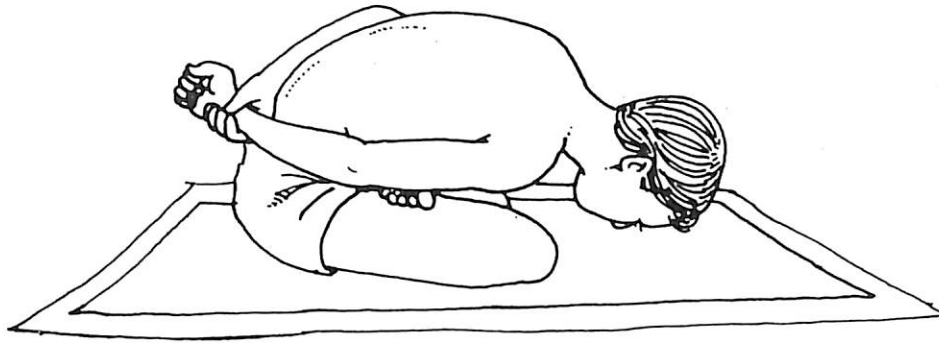
योग मुद्रा : पहली विधि

झुकाने में जल्दी करने की या झटके से झुकाने की कोशिश कभी नहीं करनी चाहिए। बल्कि झटका देने से अधिक मोड़ने पर भीतर के पाचक अंगों पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है। कमर से जितना सरलता से झुका जाए, उतना ही झुकने का प्रयास करना चाहिए। कुछ दिनों के अभ्यास से कमर में झुकने का बल और लोच आ जाएगा। इस मुद्रा को जबरदस्ती बनाने से हानि हो सकती है। धीरे-धीरे झुकते-झुकते ललाट को फर्श पर टिका दें। इस अवस्था को ही इस मुद्रा की पूर्णता मानी जाती है।

योगमुद्रा की दूसरी विधि इस प्रकार है—इस विधि का लाभ यह है कि यदि पाचक अंग, जैसे नाभि आदि, अपने स्थान से कुछ हट गए हों तो योगमुद्रा की इस विधि से उनके अपने स्थान पर लौट आने में सहायता मिलती है। यह मुद्रा बनाने के लिए पहले फर्श पर बैठकर पद्मासन की अवस्था में हो जाएं। हाथ की दोनों हथेलियों को एक में मिलाकर गेंद की तरह गोल बनाएं और एड़ियों के ऊपर नाभि पर लगा लें।
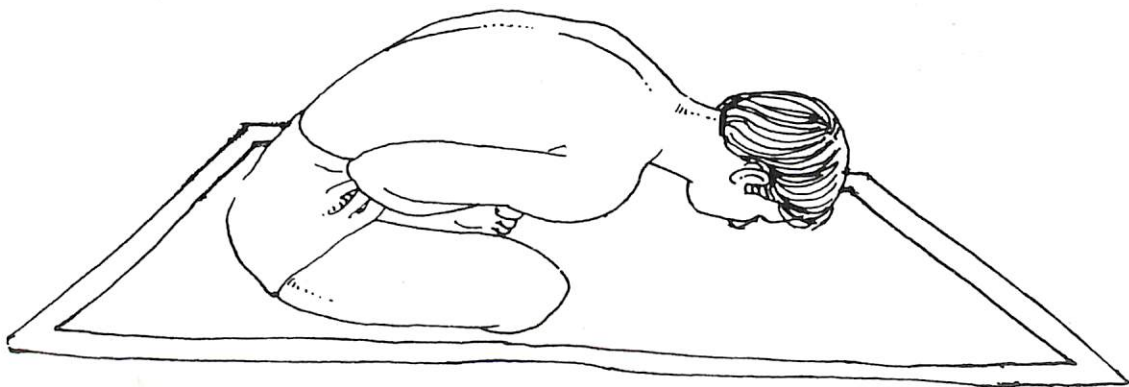
योग मुद्रा : दूसरी विधि

इसके बाद आगे की ओर झुकें। इससे मुट्ठी पर पेड़ू का दबाव पड़ेगा तथा पेड़ू अंदर को दबेगा। इसी तरह पेड़ू को दबाते हुए, धड़ को झुकाकर ललाट को भूमि से सटा दें। इस प्रकार योगमुद्रा की दूसरी मुद्रा पूर्ण हो जाती है। इसे ऊपर द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

विशेष—इस मुद्रा में श्वास का कोई विशेष नियम नहीं है, किन्तु मुद्रा की सुगमता की दृष्टि-से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि झुकते समय श्वास बाहर निकाल दी जाए। इससे पेट अंदर दबता है और जब सिर उठाया जाए, तब श्वास भीतर भर ली जानी चाहिए।

विपरीतकरणी

योगियों ने मुद्राओं का आविष्कार शरीर को स्वस्थ एवं नीरोग रखने के लिए किया। वस्तुतः मुद्राएं कुण्डलिनी जाग्रत करने में साधक की सहायता करती हैं। योगियों को इनसे बल की प्राप्ति होती है। विपरीतकरणी मुद्रा सर्वांगासन का ही एक रूपांतर है। सर्वांगासन में जालंधर बंध लग जाता है, गरदन के निचले भाग पर शरीर का सारा बोझ रहता है और गरदन से लेकर पीठ-पांव आदि एक सीधी लाइन में होते हैं, किन्तु विपरीतकरणी मुद्रा में गरदन, कंधा और बांहों के पिछले भाग पर शरीर का बोझ होता है और कमर से लेकर पांव तक का भाग लंबा न होकर तिरछा रहता है।
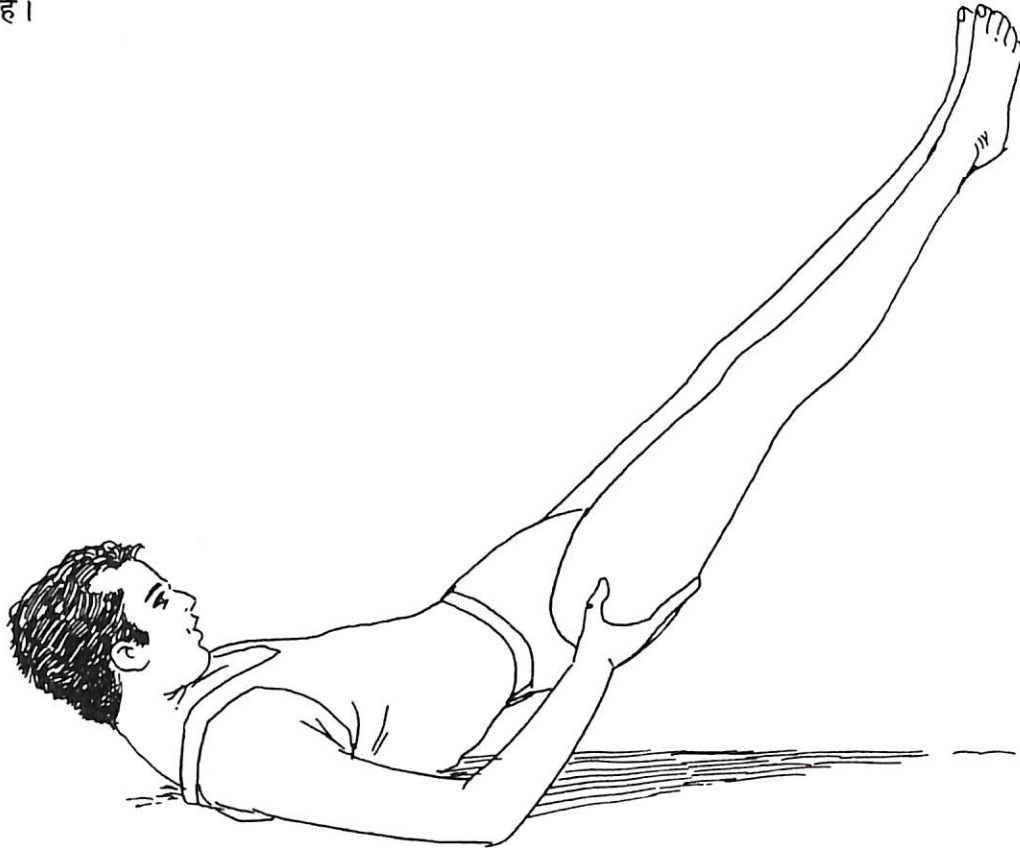
विपरीतकरणी मुद्रा

विपरीतकरणी मुद्रा की विधि इस प्रकार है—भूमि पर कंबल आदि बिछाकर पीठ के बल चित्त लेट जाएं। हाथ बगल में रहेंगे और पांव तने हुए लंबे रहेंगे। इस अवस्था में आकर शरीर को ढीला छोड़ दें और श्वास को भरकर, टांगों को 30 डिग्री के कोण पर उठाएं। 5-6 सेकंड इस अवस्था में रहकर, श्वास को भरकर पैरों को 30 डिग्री और ऊपर ले जाएं। यहां भी 5-6 सेकंड रुककर श्वास भरें और पैरों को 30 डिग्री और ऊपर उठाएं। अब कमर से पीठ और गरदन तक का भाग कंबल पर रहेगा और टांगें 90 डिग्री के समकोण पर रहेंगी। अब श्वास भरकर कमर का भाग भी ऊपर को उठाएं और दोनों हाथों से कमर को सहारा दें। शरीर का सारा बोझ गरदन, कंधा और दोनों भुजाओं पर होगा।

सीने से ठुड्डी का भाग दूर रहेगा। पैरों को इसी अवस्था में रखते हुए और कमर को हाथों का सहारा देते हुए पांवों और धड़ को थोड़ा तिरछा या टेढ़ा कर लें। इस अवस्था में शरीर गरदन और कंधों के बल हाथों पर टिका रहेगा। इसमें जालंधर बंध नहीं लगेगा और कमर से पांव तक का अंश कुछ तिरछा या टेढ़ा रहेगा। इस मुद्रा में शरीर को संभालने में बांहों पर बहुत जोर पड़ता है। किन्तु यहां जिह्वाबंध लगाने का विधान है। जिह्वाबंध की विधि यह है कि जुबान को उलटकर पीछे की ओर मोड़ें और तालु के आगे, जहां कौवा और टोंटी है, उस स्थान पर सटाएं। यह विपरीतकरणी मुद्रा की पूर्णता है।

जिह्वाबंध ही इस मुद्रा की विशेषता है। योगी लोग कहते हैं कि ललाट से एक प्रकार का अमृत झरता है। वह अमृत शरीर के उपयोग में नहीं आता, अंदर चला जाता है और पाचकाग्नि या नाभि में स्थित सूर्य उसको भस्म कर देता है। तालु में जुबान को सटाकर वह झरता हुआ अमृत रस पान करने की चेष्टा की जाती है।

विपरीतकरणी मुद्रा से वृद्धावस्था नहीं आती और यौवन बना रहता है। किन्तु इतना लाभ योगी लोग ही प्राप्त कर सकते हैं, साधारण व्यक्ति नहीं।

यहां इस बात को विशेषरूप से ध्यान में रखना चाहिए कि साधना में जो बातें बहुत साधारण दिखती हैं, वे क्रियात्मक स्तर पर वैसी सामान्य नहीं हैं। इसीलिए जब तक इनके सकारात्मक व नकारात्मक पक्षों की जानकारी विधिवत् न हो (इसे ही दीक्षा कहते हैं) इनसे खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। संयम और सावधानी ये दो मूलमंत्र हैं साधना के, इनकी उपेक्षा क्षणभर के लिए भी नहीं करनी चाहिए। 'जिज्ञासा' की पराकाष्ठा के परिणामस्वरूप साधक में उसकी संपूर्ण पात्रता समाहित हो जाती है। ❑❑

निःश्वास : पांच

कुण्डलिनी उपासना का मार्ग

एक समय था जब पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित लोग योगशास्त्र से विमुख होते जा रहे थे, किन्तु कुछ उपासना एवं आत्मशक्ति के धनी महापुरुषों और सिद्धों के द्वारा लोगों में अब इस शास्त्र के संबंध में श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न हो गया है। कुछ भारतीय ऋषि, महर्षि एवं उच्चकोटि के सिद्ध महात्माओं, विचारकों और चिंतकों के त्याग और परिश्रम के द्वारा पिछले कुछ समय से पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताओं, गहन चिंतकों, उच्चकोटि के वैज्ञानिक तथा विद्वान मनीषियों को भारतीय विज्ञान, पराविद्या एवं योगशास्त्र के संबंध में सोचने के लिए विवश कर दिया है और भारतवर्ष के अन्यत्र रहने वाले विश्व के उन उच्चकोटि के साहित्यकारों, चिकित्सकों, वैज्ञानिकों और अधिकांश बुद्धिजीवियों को योगशास्त्र का गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया है। यही कारण है कि आज अनगिनत योगी साधकों में कुण्डलिनी शक्ति के रहस्य को जानने और समझने की होड़-सी लग गई है। यजुर्वेद, कुण्डल्युपनिषद्, षट्चक्र निरूपण, घेरण्ड संहिता, ज्ञानार्नव तंत्र, ललिता सहस्रनाम, लघुस्तुति, वामकेश्वर तंत्र, योग शिखोपनिषद्, हठयोग प्रदीपिका और ज्ञानेश्वरी आदि ग्रंथों में कुण्डलिनी रहस्य का सविस्तार मिलता है।

भारतीय ऋषियों ने कुण्डलिनी शक्ति के संबंध में बड़े विस्तार के साथ अनुसंधानात्मक प्रयोग करके, इसके सभी पहलुओं को हर तरह से अच्छी प्रकार जाना कि मनुष्य को इस कुण्डलिनी शक्ति से किस-किस प्रकार के कितने अधिक लाभ हो सकते हैं तथा यह भी जानने का प्रयास किया कि इस शक्ति से कितने रूप में, कौन-कौन-सी हानियां कब और किस प्रकार हो सकती हैं।

कुण्डलिनी शक्ति का रहस्य अत्यंत गूढ़ है। साधारण मानव की वहां तक पहुंच नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु की श्री हरिनाम स्मरण करते-करते बड़ी विचित्र अवर्णनीय अवस्था हो गई थी। वह निर्जन वनों में कस्तूरी मृग से भी अधिक भगवान के आनंद और उसके परम स्वरूप को ढूंढते हुए यत्र-तत्र हिरण की भांति लंबी-लंबी कुलांचें भरते फिरते थे। उनका कुलांचें भरना उनका नृत्य था या उनके हृदय की अकुलाहट थी अथवा निरंतर हरिनाम स्मरण करते रहने से, जिस शक्ति का प्राकट्य हुआ था, उस पराशक्ति के आनंद और प्रभाव से वह विस्मित हुए थे।

वस्तुतः परमात्मास्वरूप चैतन्य महाप्रभु जी को अपने तन-बदन का उस समय कुछ भी होश नहीं था, कोई सुध-बुध न थी। वह यदा-कदा स्वल्प समय के लिए अपनी इस देह में उतरकर आते थे। किन्तु अधिकांश तो वे हरिनाम के उस परम आनंद में ही समाहित रहते थे। उस समय उनके संपर्क में जो भी आया, उसे भी उस आनंदमय रहस्यमयी शक्ति का रसास्वादन कुछ समय के लिए अवश्य ही हुआ।

श्रीरामकृष्ण परमहंसजी तो अधिकांश समय देहात्म बुद्धिरहित स्थिति से ऊपर उठकर, अपनी अकल्पनीय विशुद्ध यौगिक स्थिति में तन्मय ही रहा करते थे। उन्होंने अपने जीवन में कुण्डलिनी शक्ति का भी साधन किया और उसके साथ ही एकेक नहीं, दस-बीस से भी अधिक विचित्र साधना पद्धतियों से साधना करके प्रत्यक्ष अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया और उसका वृत्तांत जिज्ञासु भक्त साधकों को वितरित किया तथा अपने शरीर को समाप्ति के समय

तक साधकों की जिज्ञासा, उत्कंठा और प्रश्नों का उत्तर एवं अपनी साधना की दिव्य अनुभूतियों से अपने सत्संग में आने वाले अधिकांश सभी साधकों को उसका प्रत्यक्ष दर्शन, अनुभव कराते रहे। इसका जीता-जागता उदाहरण स्वामी विवेकानंद से दिया जा सकता है, जिनकी कुण्डलिनी का जागरण उन्होंने अपने तनिक से स्पर्श मात्र से ही करा दिया था।

कुण्डलिनी साधना के इस मार्ग में अर्थात् कुण्डलिनी योग के संबंध में जानने और साधन करने योग्य बहुत सारी विद्याएं हैं, जिनकी साधना और ज्ञान के बिना महाशक्ति कुण्डलिनी का उपासक इस महत्त्वपूर्ण साधना के क्षेत्र में तीव्रगति से आगे नहीं चल सकता।

कुण्डलिनी साधना की चमत्कृत कर देने वाली बातें, युक्तियां और विधियां बड़ी गुंजलदार और दुस्साध्य प्रतीत होती हैं, किन्तु एक बार उनके गर्त में जाने के बाद वे बड़ी सहज और सरल प्रतीत होने लगती हैं।

प्राचीन योगियों और ऋषि-महर्षियों ने मनुष्य के शरीर में स्थित बड़ी-बड़ी विचित्र नाड़ियों और योगचक्र जिन्हें स्नायु-गुच्छ के नाम से भी जाना जा सकता है, उनका वर्णन विशेष रूप-से किया है। उनके बारे में जानना और समझना हरेक साधक, हरेक योगी का कर्तव्य है। इन नाड़ियों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, विश्वोदरा, हस्तजिह्वा, यशस्विनी, पूषानाड़ी, चित्रानाड़ी, वज्रानाड़ी, शंखिनी, कुहूनीनाड़ी, ब्रह्मनाड़ी, सूर्यरूपा, ऊर्ध्वगामिनी, योगनाड़ी और लंबिका आदि 72 हजार नाड़ियों का वर्णन योगशास्त्र में किया है।
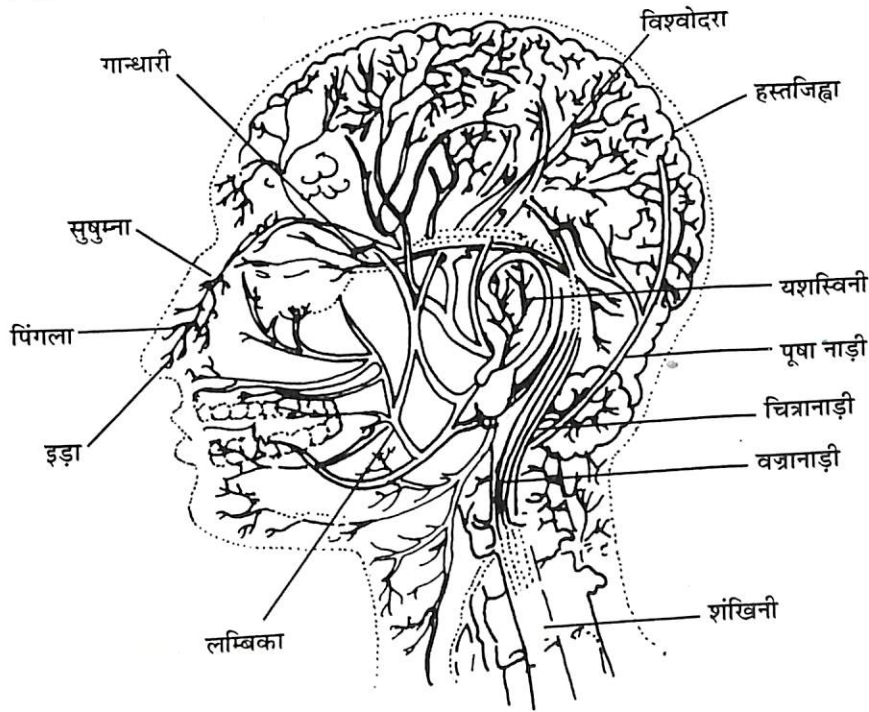
विभिन्न नाड़ियां

इन संपूर्ण नाड़ियों के बड़े ही अलौकिक कार्य हैं और ये नाड़ियां विभिन्न प्रकार की अलग-अलग मुद्राओं द्वारा योग की विभिन्न क्रियाओं द्वारा संचालित होती हैं और अपने प्रभाव, चमत्कारिक रूप में प्रदर्शित करती हैं। ये नाड़ियां भौतिक शरीर में प्रवाहमान प्राण के मार्ग हैं।

नाड़ियां शरीर के भीतर प्राण के बृहत् यातायात स्नायु-संस्थान को शक्ति प्रदान करती हैं तथा उसे आगे और पीछे इच्छित स्थानों में ले जाती हैं। इन नाड़ियों से प्राण, जीवनी-शक्ति, प्रेरणाएं तथा अन्यान्य ऊर्जाएं विद्युत-तरंगों के समान बहती हैं तथा शरीर के विभिन्न कोशों और अंगों के स्वास्थ्य तथा तालबद्धता को ये सही-सलामत रखती हैं। 72 हजार नाड़ियों में 10 नाड़ियां ही प्रमुख मानी गई हैं। ये 10 नाड़ियां ही शरीर में चेतना तथा प्राण का वितरण व नियंत्रण करती हैं। योगियों का मत है कि सिद्धासन लगाने से समस्त 72 हजार नाड़ियों का शोधन हो जाता है। प्रमुख 10 नाड़ियां निम्न हैं—

- इड़ा
- पिंगला
- सुषुम्ना
- गान्धारी
- हस्तजिह्वा (हस्तिजिह्वा)
- पूषा
- यशस्वनी (यशस्विनी)
- वज्रा
- कुहूनी
- शंखनी (शंखिनी)

मेरुदण्ड के वाम (बाएं) भाग में इड़ा, दक्षिण (दाएं) भाग में पिंगला, मध्य में सुषुम्ना, बाएं नेत्र में गान्धारी, दाएं नेत्र में हस्तिजिह्वा, बाएं कान में यशस्विनी, दाएं कान में पूषा, मुख में वज्रा (कुछ लोग मुख में अलंबुषा मानते हैं), लिंग में कुहूनी तथा गुदा में शंखिनी का वास है। इस प्रकार मानव-शरीर के 10 द्वारों में 10 नाड़ियां हैं।

उपरोक्त 10 नाड़ियों में से तीन का महत्त्व सर्वाधिक है। यही तीनों नाड़ियां ही अन्य सभी नाड़ियों को नियंत्रण में रखती हैं। ये तीन नाड़ियां इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना हैं। इड़ा नासारन्ध्र से चलने वाली इन्द्र नाड़ी है। उसका वर्ण शुभ्र है और पिंगला दाएं नासारन्ध्र से चलने वाली सूर्य नाड़ी रक्तवर्ण की है।

इड़ा को अमृत-विग्रहा और पिंगला को रौद्रात्मिका भी कहते हैं। ये दोनों नाड़ियां काल स्वरूप दिखती हैं। ये दोनों जब समगति से चलती हैं, तब सुषुम्ना नाड़ी में उनका लय होता है। इसी अवस्था में सुषुम्ना नाड़ी में कुण्डलिनी प्रवेश करती है। मूलाधार से जहां ये तीनों निकलती हैं, उसे मुक्तत्रिवेणी और आज्ञा चक्र के समीप जहां ये मिलती हैं, उसे युक्तत्रिवेणी कहते हैं।

इड़ा—गंगारूपा, पिंगला—यमुनास्वरूपा एवं सुषुम्ना—सरस्वतीरूपिणी हैं। ये ही तीनों नाड़ियां आज्ञा चक्र के ऊपर जिस स्थान पर मिलती हैं, उस स्थान का नाम त्रिवेणी है। स्नानविहीन व्यक्ति को बाह्य स्नान से कोई फल नहीं मिलता। गुरुकृपा से जो आत्मतीर्थ को जानकर आज्ञा चक्र के ऊपर इस तीर्थराज त्रिवेणी में यौगिक स्नान करता है, वो निश्चय ही मुक्तिपद लाभ करता है।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना—इन तीनों प्रधान नाड़ियों में सुषुम्ना सर्वप्रधान है। इसके गर्भ में वज्राणी नाड़ी है। यह नाड़ी शिश्न-प्रदेश से निकलकर, शिरःस्थान तक जाती है। वज्रनाड़ी (वज्राणी) के बीच में आद्यन्त प्रणव युक्ता अर्थात् चंद्र, सूर्य और अग्नि-स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव (महेश) से आदि एवं अंत में मिली हुई मकड़ी के जाले की तरह बहुत सूक्ष्म चित्राणी नाड़ी के बीच में एक विद्युत के समान वर्ण वाली नाड़ी है, उसे 'ब्रह्मनाड़ी' कहते हैं। यह ब्रह्मनाड़ी मूलाधार-पद्म स्थित महादेव के मुख से प्रारंभ होकर शिर-स्थित सहस्रदल तक फैली हुई है।

इस ब्रह्मनाड़ी के विषय में रात-दिन योगियों को ध्यान करना चाहिए, क्योंकि योग-साधना का चरमफल इसी ब्रह्मनाड़ी से प्राप्त होता है। इसी ब्रह्मनाड़ी के अंदर से गमन कर सकने पर आत्म-साक्षात्कार होता है एवं योग का उद्देश्य सिद्ध होकर मुक्तिलाभ होता है।

मेरुदण्ड के दोनों ओर एक स्नायु-प्रणाली है। बायीं स्नायु-प्रणाली को इड़ा और दायीं को पिंगला कहते हैं। जैसा कि हमने पहले भी बताया कि ये प्राणवाहक नाड़ियां हैं। इड़ा में चंद्र का व पिंगला में सूर्य का वास है। इसी कारण इड़ा शीतल और पिंगला उष्ण है। इड़ा नासिका के वाम और पिंगला दाएं रन्ध्र से चलती है। इनमें से प्रत्येक ढाई-ढाई घड़ी (एक घंटा) चलती है। उन्हीं के अनुसार स्वर बदलते रहते हैं। उक्त दोनों नाड़ियों के चलते रहने पर मनुष्य सांसारिक कार्यों में लगा रहता है।

नाड़ी-मण्डल में सुषुम्ना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। सारा ब्रह्माण्ड इसी पर स्थित है और यही मोक्ष का मार्ग है। यह गुदामार्ग के पिछले भाग में स्थित है और मेरुदण्ड से लगी हुई सिर में स्थित ब्रह्मरन्ध्र तक चली गई है। इसके दाहिने तरफ पिंगला और बायीं तरफ इड़ा है। इसके जाग्रत होते ही योगी का वास्तविक कार्य होने लगता है।

उसे समाधि लगने लगती है और वह संसार से विमुख होता जाता है। योगीजन सुषुम्ना में प्रवेश करके महा-प्रयाण का समय बदल देते हैं। इसलिए कहते हैं कि सुषुम्ना नाड़ी काल भक्षक या काल रोधक है। इसी कारण योगी लोग सदा अपने प्राण को सुषुम्ना में, जिसे ब्रह्मनाड़ी भी कहते हैं, चलाने का प्रयत्न करते हैं। यह 72 हजार नाड़ियों को भेदकर व्याप्त रहती है।

ये तीनों नाड़ियां प्राण-वाहक नाड़ियां हैं और चंद्रमा, सूर्य व अग्नि क्रम से इनके देवता हैं। सुषुम्ना के समय ध्यान अच्छा लगता है। सुषुम्ना के चलते समय ध्यान का अभ्यास करते-करते कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है और वह सुषुम्ना में होती हुई षट्चक्रों का भेदन करती हुई
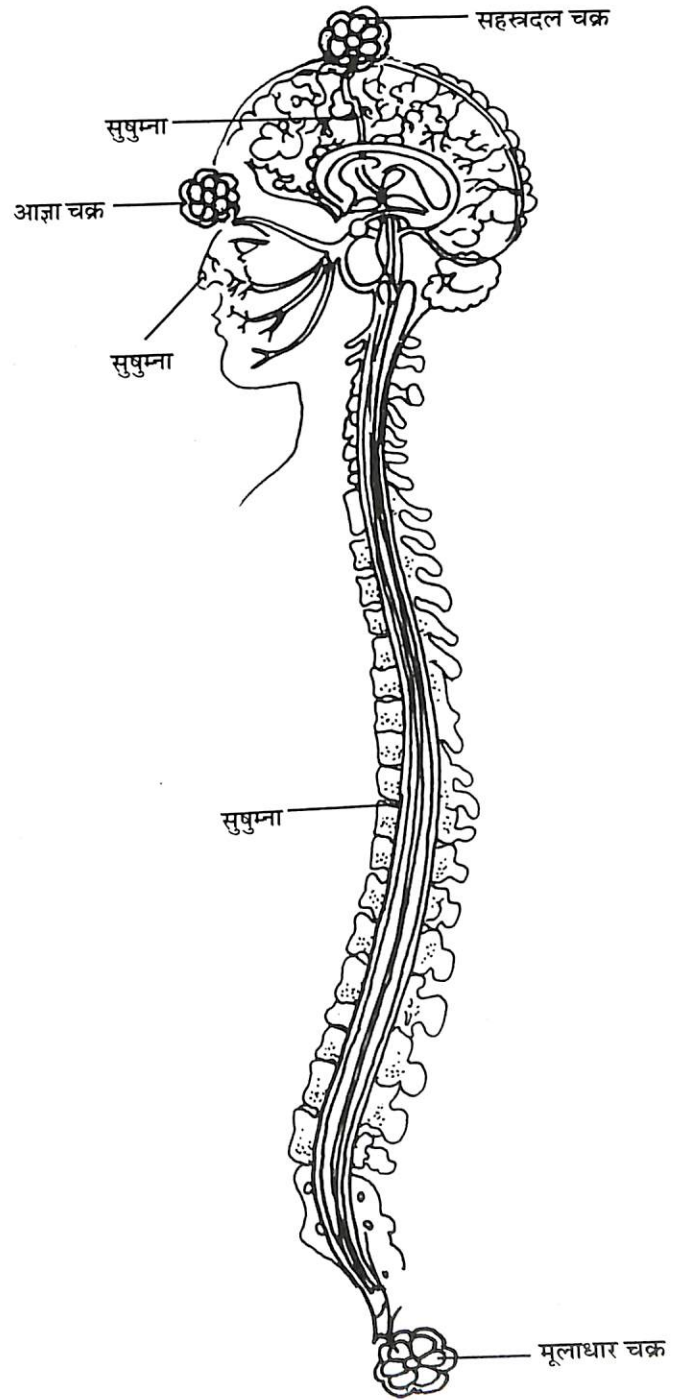
ऊपर चढ़ने लगती है। उस समय योगी को अनेक प्रकार के अनुभव, शक्तियां और आनंद प्राप्त होने लगते हैं। इस नाड़ी को स्थिर करके प्राणायाम करने से वह शीघ्र सिद्ध होता है।

एक योग्य गुरु का कर्तव्य है कि वह इन नाड़ियों के जाल में साधक को किसी भी प्रकार से उलझने न दे। अपितु उसे युक्ति-युक्त मार्ग पर धीरे-धीरे चलाते हुए अर्थात् साधना कराते हुए मध्य मार्ग के द्वारा ऊंचे से ऊंचा ज्ञान और कठिन-से-कठिन युक्तियों और साधनाओं को अत्यंत सरल रूप से बताते हुए, इस रहस्यमयी साधना की ओर चलाने का प्रयत्न करे।

हठयोग की भांति लययोग में भी मनुष्य के शरीर में स्थित नाड़ियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—इड़ा, पिंगला नाड़ी, सुषुम्ना नाड़ी को दोनों तरफ से घेरे हुए मूलाधार स्थान से टेढ़ी-मेढ़ी चाल के द्वारा योग-चक्रों को निश्चित स्थानों पर बनाती हुई आज्ञा चक्र तक जो भ्रूमध्य में स्थित है, वहां पहुंचती हैं। ये योग-चक्र अनंत शक्तियों के उद्गम स्थान हैं।

प्राणों का सुषुम्ना में इड़ा अथवा पिंगला नाड़ियों के द्वारा पहुंचकर, प्राण अपान को मिलाकर योगी स्वयं को श्मशानवत् बनाकर अपने ध्यान को, अर्थात् प्राणों को मूलाधार चक्र के सन्निकट स्वयंभू के मुख वाले स्थान पर संयम के द्वारा प्राणों को स्पंदित कर, मूलबंध एवं क्रोध बीज मंत्र का मानसिक उच्चारण कर, दृढ़ निश्चय के साथ सुषुम्ना का मुख खुलते ही तत्क्षण उसमें प्रवेश करने के लिए कटिबद्ध हो जाए।

उपर्युक्त सारी क्रियाओं को करते हुए साधक द्वारा जब दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ-साथ कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए क्रोध बीज मंत्र दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ मानसिक उच्चारण किया जाएगा, तो सुषुम्ना-द्वार को स्वाभाविक ही खुलना होगा। इस स्थिति में साधक को पहले से भी और अधिक सावधानी रखते हुए, तटस्थ और सम्यक् भाव से परम शांत ध्यानमयी यौगिक स्थिति में रहते हुए अपने प्राणों को सुषुम्ना द्वार में सरलता और अत्यंत दृढ़ता के साथ प्रवेश करा देना चाहिए। साधक का यह, इस कुण्डलिनी शक्ति के संबंध में अर्थात् मार्ग में अग्रसर होने का सर्वप्रथम सोपान है।

❑❑
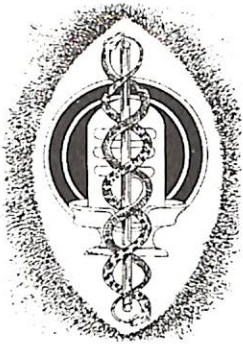
निःश्वास : छः

योग साधक एवं साधना

योग साधना का स्वरूप और विस्तार वस्तुतः एक जन्म में पूरा नहीं हो सकता, यह कथन समाधि की अवस्था को पहुंचे हुए एक योगी का है। उन्होंने कहा है कि कभी-कभी किसी साधारण साधक को कुछ समय उपासना करने के अनंतर कोई पूर्व जन्म की साधना के प्रभाव से स्वल्प काल में ही कोई चमत्कार उपस्थित हो जाने पर यों प्रतीत होने लगता है कि वो अब योगशास्त्र का पूरी तरह से जानकार हो गया है और उसके लिए अब कुछ और साधन करना, जानना अथवा तपश्चर्या पूर्ण जीवन व्यतीत करना कोई आवश्यक नहीं रह गया है। इस प्रकार का भ्रम कभी किसी साधक में पैदा नहीं होना चाहिए। क्योंकि ऐसा भ्रम पैदा होने पर कालांतर में साधक को हानि उठानी पड़ती है। ऐसे अनेक योग साधक देखने में आए हैं जो योग की आखिरी मंजिल तक भी नहीं पहुंच पाए और मृत्यु को प्यारे हो गए।

एक महात्माजी का तो यहां तक मानना है कि योग विद्या का ज्ञान व्यक्ति को अगला जन्म लेने के बाद भी रहता है और यह विद्या काल के प्रभाव से अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्कर से प्रभावित नहीं होती। अपितु ऐसे व्यक्ति को, जिनकी मृत्यु अधूरी साधना में ही हो जाती है, योग-भ्रष्ट कहा जाता है। किन्तु ऐसी योग-भ्रष्ट आत्माओं का पुनर्जन्म, पहले जन्म में की हुई योग साधना के प्रभाव से अच्छे घरों में ही होता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

इससे सिद्ध होता है कि योग की उन्नति अर्थात् शिक्षा को देश, काल, परिस्थिति और मृत्यु भी नहीं रोक सकती। एकमात्र यही एक ऐसा ज्ञान है, जिसे दूसरा जन्म लेने पर भी व्यक्ति (साधक) भूलता नहीं है। योग की एक विशेषता यह भी है कि प्रकृति के नियमानुसार योग-भ्रष्ट का पुनर्जन्म ऐसे परिवार अथवा माहौल में होता है, जहां वह पूर्वजन्म की अपनी छोड़ी गई अधूरी साधना को पूर्ण कर सकने में समर्थ होता है।

जो साधक एक बार विधिवत् योग की पाठशाला में भाग्यवश या सौभाग्यवश प्रवेश पा गया और वह भी किसी अच्छे उपासक, सद्गुरु की कृपा द्वारा, तो फिर समझिए कि वह प्रकृति की, संसार की सबसे बड़ी और कभी न समाप्त होने वाली योगविद्या को प्राप्त किए बिना न रहेगा, चाहे इस विद्या की पूर्णता के लिए उसे बार-बार जन्म क्यों न लेना पड़े।

योग अत्यंत गूढ़ और गंभीर विद्या है। यह विद्या श्रेष्ठ योगी (गुरु) से ही प्राप्त की जा सकती है। उपनिषदों के शिक्षा मनोविज्ञान में गुरु को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। गुरु दीक्षा पाए बिना कोई भी लक्ष्य पर नहीं पहुंच सकता। कठोपनिषद् में कहा गया है, "उठो, जागो और जो तुमसे श्रेष्ठ हैं, उनसे सीखो; क्योंकि आत्मलाभ का लक्ष्य तलवार की धार के समान पैना है।" ऋषियों ने इसको दुर्गम पथ कहा है। इसी उपनिषद् में यह भी कहा गया है कि

जब तक गुरु ने स्वयं आत्मलाभ न किया होगा, तब तक वो दीक्षा कैसे दे सकता है। छान्दोग्यउपनिषद् में गांधारवासी मनुष्य को जब डाकू उसकी आंखें मूंदकर उसे उसके देश से दूर ले जाकर जंगल में छोड़ देते हैं, तब किसी अन्य व्यक्ति के मार्ग बतलाने पर ही वह अपने देश तक पहुंच पाता है। इस कथा में मार्ग-निर्देशन में गुरु के महत्त्व को बड़े सुंदर ढंग से समझाया गया है।

अंतर्मुखता, आत्मशुद्धि और गुरु से दीक्षा मिलनें पर जिज्ञासु आत्मलाभ के मार्ग में आगे बढ़ता है। इसके लिए योगाभ्यास और प्रणव अथवा ओ३म् पर निदिध्यासन करना आवश्यक माना गया है। उपनिषदों में शारीरिक पूर्णता प्राप्त करने और मन पर नियंत्रण करने के लिए विभिन्न प्रकार की यौगिक विधियों की चर्चा की गई है।

बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार तन और मन का संयम और योगाभ्यास चित्त को शुद्ध करके उसे ब्रह्मज्ञान के योग्य बनाता है। तप से चित्त की शुद्धि होती है। आत्मलाभ के लिए शम, दम, उपरति, तितिक्षा और समाधि आवश्यक हैं।

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योग के विभिन्न अंग हैं। उपनिषदों में आसनों का भी वर्णन मिलता है। शाण्डिल्य उपनिषद् में 10 प्रकार के नियम, जिनके बारे में पीछे बता आए हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् में योगाभ्यास के शारीरिक प्रभावों का उल्लेख किया गया है।

भारतीय मनोविज्ञान में शरीर के विभिन्न अंगों के कार्यों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। उसमें मानव शरीर के विभिन्न तत्त्वों की व्याख्या की गई है। भोजन का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है और उससे मानसिक प्रवृत्तियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी चर्चा से लेकर शरीर में विभिन्न चक्रों की स्थिति, कुण्डलिनी की स्थिति, वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रक्रिया आदि की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है। दर्जनों प्रकार के आसन शरीर को नियंत्रित करने का साधन रहे हैं। हठयोग में इनकी विशेष चर्चा है।

यौगिक साधनों से योगी शरीर पर इस कदर अधिकार कर लेते थे कि कहा जाता है कि वो उसे रुई के समान हल्का बनाकर हवा में उड़ सकते थे, शरीर की सतत क्रियाओं जैसे रुधिर का प्रवाह, नाड़ी की गति, श्वास-प्रश्वास को रोक सकते थे और ऐसे-ऐसे कठिन कार्य कर सकते थे, जिनकी पश्चिम के लोग कल्पना भी नहीं कर सकते।

आज भी योग के माध्यम से शरीर पर अधिकार करने वाले योगी शीशा और ब्लेड चबा जाते हैं, हफ्तों वायुहीन स्थान में बंद रहते हैं, आग पर चलकर दिखाते हैं, छाती पर बुलडोजर खड़ा कर लेते हैं और दोनों ओर चलती हुई कारों को हाथ से रोक लेते हैं। इन सब आश्चर्यजनक कार्यों को देखकर यह सहज ही मान लेना पड़ता है कि भारतीय मनोविज्ञान में शरीरशास्त्र के विषय में कितनी अधिक सूक्ष्म जानकारी रहती है। योगी श्री अरविन्द के अनुसार, ''योग की क्रियाएं शारीरिक और मानसिक व्याधियों को दूर करके चित्त को स्थिर करने में अद्वितीय हैं।''

गीता के चौथे अध्याय में यह बतलाया गया है कि मनुष्य को हर्ष, शोक आदि से दूर रहते हुए सिद्धि और असिद्धि में समत्वभाव रखना चाहिए। मानसिक संतुलन शारीरिक संतुलन के अभाव में नहीं हो सकता, इसलिए युक्ताहार, आसन, प्राणायाम इत्यादि की सहायता से शरीर पर नियंत्रण करने के बाद ही मन पर नियंत्रण करने की आशा की जा सकती है।

जो साधक अपने मन पर नियंत्रण नहीं कर सकता, वो कुण्डलिनी मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता। मन, इन्द्रियों और संवेगों पर विजय पाने के बाद ही कुण्डलिनी जागरण का मार्ग प्रशस्त होता है। जब कुण्डलिनी जागरण का समय सन्निकट होता है, तो सुषुम्ना नाड़ी के मुख में प्रवेश करने से पहले ही साधक का श्वास-प्रश्वास बंद होने लगता है। यदि गुरु द्वारा ज्ञान मिला है, तो साधक इस बात से घबराता नहीं है तथा अंतिम लक्ष्य तक पहुंचने को प्रयासरत रहता है। किन्तु जिसे श्रेष्ठ गुरु की कृपा नहीं मिली होती या जो इस स्थिति से अनभिज्ञ होता है, वह यह सोचकर कि अब तो उसका श्वास टूटने वाला है, अर्थात् अंतिम समय अब निकट है, घबरा जाता है और हानि उठाता है। उसकी साधना में व्यवधान पड़ जाता है तथा वह रहस्यमयी कुण्डलिनी शक्ति के परिचय से अछूता रहता है।

यह बात सत्य है कि इस प्रकार के योग-साधन द्वारा आज तक कभी किसी साधक की मृत्यु नहीं हुई। योग की इस क्रिया द्वारा तो साधक को प्राणों पर नियंत्रण हो जाता है, जिस कारण उसका श्वास-प्रश्वास बंद हो जाता है और साधक द्वारा संकल्प करते ही पुनः शरीर में श्वास-प्रश्वास का आवागमन हो जाता है। अतः नए साधकों को इस स्थिति में पहुंचने के बाद घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि जब तक प्राण शांत नहीं होते, कुण्डलिनी शक्ति को किसी भी प्रकार जगाया नहीं जा सकता, न ही उसका जागरण हो पाएगा।

अतः जब श्वास-प्रश्वास बंद हो जाए यानी हृदय की गति शांत हो, तब क्रोध बीज मंत्र ''**हुं**'' के साथ मूलबंध से युक्त होकर धीरे-धीरे उस महाशक्ति पर शब्द ब्रह्म की शक्ति के साथ ताड़न करने से वह अट्टहास करती हुई जाग्रत हो जाएगी। तब बहुत सावधान होकर बिंदु, साकार, निराकार, प्राण-अपानादि के सांयुज्य से आनंद की विशेष अनुभूति साधक को प्राप्त होगी।

यह एक शास्त्रोक्त और सैद्धान्तिक नियम है कि सुषुम्ना नाड़ी के मुख में प्राणों का निरोध किए बिना और मूलबंध आदि क्रियाओं की पूर्णरूपेण सिद्धि के बिना कुण्डलिनी का जागरण नहीं हो सकता। सुषुम्ना द्वार एकमात्र मूलाधार चक्र के सन्निकट है, अतः मूलाधार पर यौगिक संयम किए बिना कुण्डलिनी जाग्रत नहीं की जा सकती।

जिस साधक की कुण्डलिनी मेरुदण्ड के सबसे निचले भाग सुषुम्ना द्वार से प्रारंभ होकर प्रथम योगचक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं नाभिचक्र आदि समस्त चक्रों को जाग्रत करती हुई सुव्यवस्थित रूप-से अग्रसर नहीं हुई है, तो साधक के तन, मन एवं समस्त स्नायुमण्डल पर उस शक्ति का संपूर्ण रूप-से पूरा-पूरा और ठीक-ठीक प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होगा।

भारतीय अध्यात्मवेत्ताओं की मान्यता है कि जिस प्रकार समस्त पृथ्वी, वन, पर्वत आदि का आधार ईश्वर है, उसी प्रकार संपूर्ण योग का आधार कुण्डलिनी है। इस बात को पीछे हम अनेक बार बता चुके हैं कि कुण्डलिनी शक्ति का निवास ''मूलाधार चक्र'' है। यह मूलाधार चक्र रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले छोर में है, जिसे आधुनिक शरीर विज्ञानवेत्ता ''गुदास्थि'' कहते हैं। वैसे मनुष्य के शरीर में तीन नाड़ियां होती हैं, जिनके नाम इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना हैं।

हठयोगियों एवं नाथपंथियों के साहित्य में इनकी चर्चा विस्तार से की गई है (हम भी इनके बारे में काफी विस्तार से बता चुके हैं)। उनकी मान्यता है कि इन तीनों में से दो नाड़ियां इड़ा और पिंगला सदा सक्रिय रहती हैं, किन्तु तीसरी नाड़ी सुषुम्ना सुषुप्तावस्था में रहती है।

सुषुम्ना नाड़ी में सात चक्र होते हैं। योगियों ने इनके नाम इस प्रकार बताए हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्त्रार। इन सात चक्रों में से प्रथम तीन चक्र अर्थात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान तथा मणिपूर सदैव क्रियाशील रहते हैं। इन तीनों के क्रियाशील रहने के कारण ही मनुष्य में कामवासना की अधिकता, खट्टा-मीठा स्वादिष्ट खाने की इच्छा और संसार में यश प्राप्त करने की कामना जाग्रत होती है।

मनुष्य (साधक) अपने संयम अथवा दृढ़ संकल्प से जब इन नाड़ियों को नियंत्रित करके इनके कार्यों में अवरोध उत्पन्न कर देता है, तब न तो उसमें कामवासना रहती है और न ही स्वादिष्ट भोजन करने की इच्छा तथा न ही कीर्ति अर्जित करने की कामना! इनका काम रुक जाने पर अनाहत चक्र सक्रिय हो जाता है। इस चक्र के सक्रिय होने पर ही साधक के मन में आध्यात्मिक एवं धार्मिक भावों का जन्म होता है।

साधारणतया अनाहत चक्र समान रूप-से सक्रिय नहीं रहता। मन की स्थिति के अनुसार कभी-कभी इसकी सक्रियता रुक जाती है और फिर निम्न श्रेणी के चक्र अर्थात् मूलाधार चक्र आदि हलचल मचाने लगते हैं। ऐसी स्थिति में उसका मन फिर कामवासना आदि की ओर दौड़ने लगता है। अतः इसके लिए दृढ़ संकल्प की अत्यंत आवश्यकता है।

दीर्घकाल तक अनाहत चक्र के जाग्रत रहने पर प्रारंभिक तीन चक्र पूर्णतया निष्क्रिय हो जाते हैं। इसके पश्चात् मनुष्य प्रयत्न करके प्राणायाम तथा योग साधना द्वारा विशुद्ध चक्र को जाग्रत करता है। विशुद्ध चक्र के सक्रिय होने पर साधक को ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसे पारिवारिक संबंध केवल बंधन मात्र है और वह वैराग्य की ओर अग्रसर होता है। उस समय उसके मन में कोई मोह नहीं रह जाता, उसका ध्यान पूर्णतया ईश्वर में लग जाता है।

जब साधना करते हुए साधक विशुद्ध चक्र की परिपक्व अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तब वह आज्ञा चक्र की ओर बढ़ता है। आज्ञा चक्र बड़ी कठिनाई से जाग्रत होता है। किन्तु जब वह जागकर सक्रिय हो जाता है, तो साधक का मन पूर्णतया ईश्वर में रम जाता है तथा वह उससे साक्षात्कार करने लगता है।

फिर भी आत्मा और परमात्मा के बीच माया का व्यवधान रहता है। इसके पश्चात् योगी सहस्रार चक्र को सक्रिय करने में समर्थ हो जाता है। इस चक्र के सक्रिय होने पर माया का व्यवधान समाप्त हो जाता है। आत्मा और परमात्मा एकाकार हो जाते हैं, जिसे पूर्ण निर्वाण अथवा मोक्ष कहते हैं।
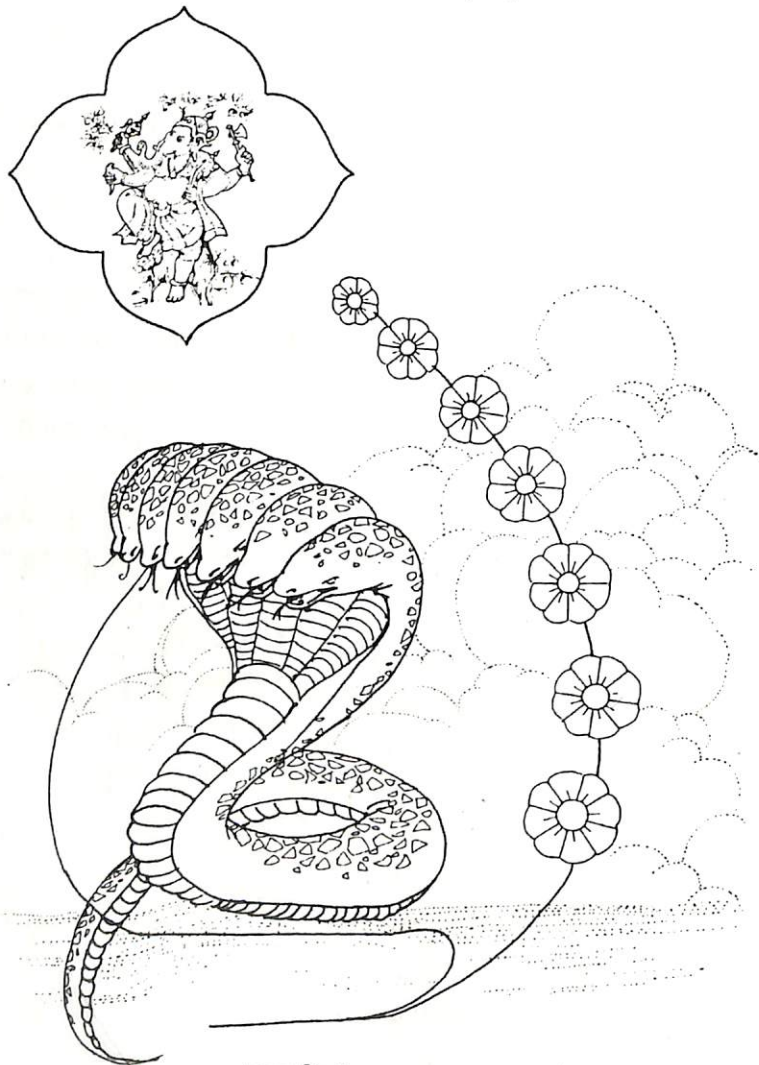
कुण्डलिनी और सातों चक्र

सुषुम्ना नाड़ी में जन्म-जन्मांतरों का ज्ञान अथवा अनुभव एकत्र रहता है। सुषुम्ना नाड़ी को निम्न दो प्रकार से सक्रिय बनाया जा सकता है—

❑ सम्मोहिनी विद्या द्वारा

❑ यौगिक क्रिया के द्वारा

सुषुम्ना नाड़ी दोनों ही प्रकार से जाग्रत हो सकती है। किन्तु दोनों की जाग्रति में आकाश-पाताल का अंतर है। पहले प्रकार की जाग्रति अत्यंत अल्पकालिक होती है, जबकि यौगिक क्रिया द्वारा जाग्रत की गई नाड़ी स्थाई होती है। इस स्थाई जाग्रति में योगी को अलौकिक सिद्धियों का लाभ प्राप्त होता है। जबकि सम्मोहन द्वारा की गई जाग्रति में कुछ विचित्र बातें कराई जा सकती हैं। किन्तु सम्मोहनावस्था समाप्त होने पर वह फिर अपनी पहली की अज्ञानावस्था में आ जाती है।

कुण्डलिनी साधारणतः सुषुप्तावस्था में ही रहती है। उसे जाग्रत करके धीरे-धीरे उपरोक्त चक्रों में से ऊपर को ले जाना पड़ता है। ऐसा केवल यौगिक क्रियाओं के द्वारा किया जा सकता है और प्राणायाम इसकी प्रथम सीढ़ी है।

प्राणायाम ऐसी अवरोधक शक्ति है जो इड़ा, पिंगला की सक्रियता को समाप्त करके उन्हें सुषुप्तावस्था में ले जाती है। इसका कारण यह है कि इन दो नाड़ियों के द्वारा ही मनुष्य की श्वसन-क्रिया होती है।

प्राणायाम की तीन स्थितियों में से एक स्थिति कुम्भक की है।

कुम्भक में श्वास लेने और छोड़ने की क्रिया बंद रहती है, जिसका परिणाम यह होता है कि इड़ा और पिंगला के पास कोई काम नहीं रहता। दोनों नाड़ियों के निष्क्रिय होने से सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय होती है। इसके साथ ही कुण्डलिनी भी सक्रिय होकर एक के बाद एकेक करके सातों चक्रों में प्रवेश करती जाती है।

प्राणायाम एवं योग साधना के अतिरिक्त कुण्डलिनी जाग्रत करने का सबसे सरल उपाय यह है कि साधक अपने प्रारंभिक तीन चक्रों के गुणों का अर्थात् कामवासना, जिह्वा का स्वाद एवं यश लोलुपता का परित्याग कर दे।

कुण्डलिनी स्वतः चौथे चक्र अर्थात् अनाहत में पहुंच जाएगी। यह ठीक है कि इन तीनों बातों का परित्याग कर देना इतना सरल नहीं है, जितना कि कह देना। विश्वामित्र जैसे महान योगी एवं तपस्वी मेनका के सम्मुख अपने आपको संयत नहीं रख सके थे। किन्तु दृढ़ इच्छाशक्ति से भला क्या नहीं हो सकता?

यदि एकदम इनका परित्याग नहीं किया जा सकता, तो धीरे-धीरे कम करके करना चाहिए। साधक अपने सामने विश्वामित्र का ही उदाहरण क्यों रखे? लक्ष्मण का उदाहरण भी सामने रखा जा सकता है।

इस प्रकार जब साधक अनाहत चक्र में पहुंच जाता है, तो उसके मन में आप ही शुद्ध एवं सात्त्विक विचार आने लगते हैं। ये शुद्ध विचार एवं संकल्प स्वयं धीरे-धीरे उसे अध्यात्म की ओर आकर्षित करते हैं। ज्यों-ज्यों वह अपने आपको ईश्वर की ओर उन्मुख करता जाता है, त्यों-त्यों एकेक करके चक्रों का मार्ग पार होता जाता है और अंत में वह अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

भारतीय ऋषियों ने कुण्डलिनी जाग्रत करने के जो उपाय बताए हैं, उनमें भी उन्होंने भक्ति योग तथा ज्ञान योग को सम्मिलित किया है। इस प्रकार साधकों को प्राणायाम आदि कठिन यौगिक क्रियाएं करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसके लिए अन्य उपाय जो उन्होंने बताए हैं, वे हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग, कर्मयोग, लययोग आदि हैं। किन्तु इन योगों को करना सर्व साधारण के लिए इतना संभव नहीं है, जितना कि वह उपाय जिसकी चर्चा ऊपर की गई है। कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर साधक की शक्ति और ज्ञान की कोई सीमा नहीं रहती। इसके विषय में जो थोड़े-बहुत परीक्षण हुए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि जिस व्यक्ति की कुण्डलिनी जाग्रत हो चुकी है, वह अपने हृदय-धड़कन की गति को बहुत अल्प कर सकता है। आठ दिन तक भू-समाधि लेने वाले योगी अपनी हृदय की गति को सुषुप्त कर देते हैं। इस प्रकार के एक नहीं, अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि कुण्डलिनी जाग्रत होने पर मनुष्य कैसे-कैसे चमत्कार करके दिखा सकता है।

❑❑
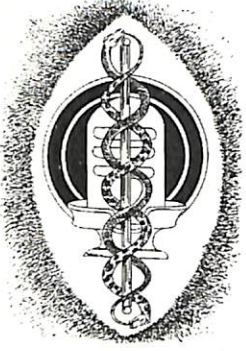
नि:श्वास : सात

चक्र, बीजाक्षर एवं देह-आत्मा का रहस्य

तंत्र की भाषा प्रतीकात्मक रहस्यमय है। पुराणों में भी इसी प्रकार की भाषा का पौराणिक कथाओं में उपयोग किया गया है। यदि उनका शाब्दिक अर्थ लें तो कभी ऐसा भ्रम होने लगता है कि ये निरर्थक बातें हैं। कभी मात्र शाब्दिक अर्थ लेने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यहां बीजाक्षरों की रहस्यात्मकता एवं इनकी व्याख्या की गई है। जिन्होंने संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया है, वे माहेश्वर सूत्रों से भली-भांति परिचित होंगे।

नटराज भगवान शंकर ने नृत्य करके डमरू बजाया। उससे 14 सूत्र प्रकट हुए। ये डमरू के बोल थे। पाणिनि ने महेश्वर की कृपा से इन्हीं डमरू के बोलों (सूत्रों) से व्याकरणशास्त्र की रचना की। ये बोल इस प्रकार हैं—

पहला सूत्र : अ इ उ ण
दूसरा सूत्र : ऋ ल् क्
तीसरा सूत्र : ए औङ्
चौथा सूत्र : ऐ औ च
पांचवां सूत्र : ह य व र ट
छठा सूत्र : ल ण्
सातवां सूत्र : य म ङ ण न म्
आठवां सूत्र : झ भ ञ
नौवां सूत्र : घ ढ ध श
दसवां सूत्र : ज ब ग ड द श्
ग्यारहवां सूत्र : ख फ छ ठ ध च ट त व्
बारहवां सूत्र : क प य
तेरहवां सूत्र : श ष स र्
चौदहवां सूत्र : ह ल्

इन माहेश्वर सूत्रों में बड़े रहस्य भरे पड़े हैं, जिनकी व्याख्या पाणिनि ने की है। नाद, संगीत, स्वर, व्यंजन, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, मनुष्य के कंठ, तालु, मूर्धा, दंत्य, ओष्ठ, जिह्वा मूल, नासिका—अर्थात् जितने प्रकार की ध्वनि हो सकती है, उन सबका समावेश माहेश्वर सूत्रों में है।

महेश्वर, शंकर, शिव उसी ब्रह्म के नाम हैं जो सृष्टि की रचना, पोषण और संहार करता है। संहार (प्रलय) के समय उसको रुद्र कहा जाता है, अन्यथा यह शिव कल्याणकारी है। प्रलयकाल में उसका तांडव नृत्य होता है।

पुन: वह सृष्टि की रचना करता है। उसका डमरू बजता है। विश्व का सबसे बड़ा नाटक वह करता रहता है, इसलिए वह नटराज है। उसे प्रणव ॐ, शब्द ब्रह्म, नाद ब्रह्म आदि अनेक नामों से जानते हैं।

पांच तत्त्व और सत, रज, तम त्रिगुणात्मक सृष्टि के रचयिता सदाशिव हैं। पांच तत्त्व, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय परस्पर संबंधित हैं। तंत्र और योग में षट्चक्र और सहस्र (शून्य चक्र) का वर्णन है।

पुराणों में सुमेरु पर्वत का वर्णन है, जहां 33 या 33 कोटि देवताओं का निवास है। मनुष्य के शरीर में मेरुदण्ड, रीढ़ है। यह गरदन से मलद्वार तक स्थित है। शरीर का आधार स्तंभ है। यह 33 कशेरुकाओं से बना है। इसमें नीचे से ऊपर क्रमश: मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध पांच चक्र (शक्ति केंद्र) हैं जो क्रमश: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तत्त्व के स्थान हैं।

मूलाधार का पृथ्वी तत्त्व बीज "**लं**", स्वाधिष्ठान का जल तत्त्व का "**वं**" मणिपूर का अग्नि तत्त्व का "**रं**", अनाहत का वायु तत्त्व का "**यं**" और विशुद्ध चक्र का आकाश तत्त्व का बीज "**हं**" है।

लिपि का नामकरण

हिंदी लिपि को देवनागरी लिपि क्यों कहते हैं ? माहेश्वर सूत्रों से इसका उद्‌भव हुआ, ह य व र ल सूत्र में पंच तत्त्वों का संकेत है। इन सूत्रों से देवनागरी के अक्षर निकले। अक्षर का अर्थ है, *न क्षरति इति अक्षर:* जिसका विनाश नहीं होता, वह अक्षर हैं।

क ख ग घ ङ; च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न प फ ब भ म, य र ल व श ष स ह

ये 33 अक्षर हैं।

मेरुदण्ड में 33 कशेरुकाएं हैं। यह मेरुदण्ड सुमेरु पर्वत है। जिसमें पर्व हो वह पर्वत है। इस पर 33 देवता निवास करते हैं। एक-एक अक्षर एक-एक देवता की प्रतीकात्मक शक्ति है। देवनागरी लिपि का अर्थ यहां स्पष्ट होता है।

शिव और शक्ति

त्रिकोण मंडल के मध्य तेजोमय रक्त वर्ण "क्लीं" बीज रूप कंदर्प नाम की स्थिर वायु की स्थिति है। तांत्रिक मंत्रों में "क्लीं" बीज का महत्त्व यहां स्पष्ट होता है। मूलाधार चक्र में त्रिकोणात्मक त्रिपुर के बीच महाशक्ति का निवास है। यही त्रिपुर सुंदरी है। यही शक्ति है। यही पर्वतवासिनी पार्वती है।

अर्धनारीश्वर शिव : शिव-शक्ति का अनूठा समन्वय, जिससे शिव-शक्ति के तादात्म्य की सिद्धि होती है। शक्ति की स्थिति यदि वाम हो सृष्टिकर्ता रूप है, यदि दाहिनी स्थिति हो, लय का रूप स्वीकारना चाहिए

यौगिक साधना द्वारा जब यह शक्ति षट्चक्र भेदन करती हुई सहस्रार में शिव से जा मिलती है तो इसे शिव शक्ति मिलन कहते हैं। वाम मार्गी तांत्रिकों ने इसे इन्द्रिय लोलुपता के कारण लौकिक मैथुन का रूप दे दिया।

''पर्वाणि संति अस्मिन्निति पर्वत: '', इस 33 पर्व के पर्वतराज में निवास करने वाली शक्ति पर्वतराज पुत्री पार्वती शिव के अतिरिक्त किसी का वरण नहीं कर सकती। पार्वती अपने रूप-लावण्य से कैलास (सहस्रार) वासी शिव को मोहित कर उन्हें वरण करने का प्रयत्न करती है।

कुमारसंभव महाकाव्य में इसका महाकवि कालिदास ने तात्त्विक वर्णन किया है। पार्वती शंकरजी के पास अपने रूप के बल पर वरण की इच्छा से जाती है, किन्तु वहां अपने सामने कामदेव को भस्म होते देखकर, रूप द्वारा शिव को वशीभूत करने का उसका मनोरथ भंग हो गया। वह अपने रूप की स्वयं निंदा करने लगी। उसने अन्य मार्ग अपनाया।

तपस्या के द्वारा आत्म समाधि लगाकर अपने रूप को अबंध्य करने का निश्चय किया। इसी मार्ग से उसने शिव की प्राप्ति की। असंप्रज्ञात समाधि ही शिव प्राप्ति है। विचारों और कर्मों के स्वेच्छाचार इन्द्रिय लोलुपता से प्राण शक्ति क्षीण होती है, उसका संयम ही समाधि की ओर अग्रसर करता है। भोग से रोग और मृत्यु तथा योग से समाधि और अमरत्व प्राप्त होता है।

कल्याणकारी सदाशिव और प्रलयंकारी रुद्र

हठयोग का ध्यान द्वारा चक्र भेदन क्यों किया जाता है ? इससे पंच तत्त्वों पर विजय प्राप्त होती है। चक्रों पर ध्यान का यही महत्त्व है। यही चक्र पूजन है, यही भैरवी चक्र अनुष्ठान है। शरीर में प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय दश वायु तथा जीवात्मा ये ही 11 रुद्र हैं। असंयम से जब ये कुपित होते हैं तो रुद्र हो जाते हैं, रुलाते हैं। संयम साधना से उन्हीं का रूप शिव (कल्याणकारी) होता है।

शरीरस्थ स्थित चक्र का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने मानव शरीर में विभिन्न चक्रों की स्थिति की चर्चा की है। इनमें से मुख्य चक्र निम्नलिखित हैं—

- मूलाधार चक्र (Sacrococegeal Plexus)

- ❑ स्वाधिष्ठान चक्र (The Sacrel Plexus)
- ❑ मणिपूर चक्र (The Cerebro-spinal Plexus)
- ❑ अनाहत चक्र (The Lumber Plexus)
- ❑ विशुद्ध चक्र (The Laryngeal Plexus)
- ❑ आज्ञा चक्र The Cerebellum Plexus)
- ❑ सहस्त्रार चक्र (Upper Cerebrum)

विभिन्न भारतीय ग्रंथों में उपरोक्त चक्रों की चर्चा मिलती है। ईश उपनिषद् में आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और ब्रह्मरन्ध्र का उल्लेख है। योग चूड़ामणि उपनिषद् के अनुसार आधार चक्र में चार, स्वाधिष्ठान में छह, मणिपूर में दस, अनाहत में बारह, विशुद्ध में सोलह, आज्ञा में दो और सहस्त्रार में हजार पंखुड़ियां हैं।

विभिन्न उपनिषदों में न्यूनाधिक इसी प्रकार का मत मिलता है। भिन्न-भिन्न चक्र भिन्न-भिन्न शक्तियों के आधार बतलाए गए हैं। उदाहरण के लिए हंस उपनिषद् के अनुसार ब्रह्मरन्ध्र ब्रह्म का निवास है। तंत्र शास्त्र में विभिन्न चक्रों पर ध्यान लगाने से विभिन्न प्रकार की शक्तियों के प्राप्त करने का निम्नलिखित उल्लेख है—

❑ **मूलाधार चक्र**—यह सुषुम्ना नाड़ी में स्थित है। यह कुण्डलिनी शक्ति का आधार है। इस स्थान पर ध्यान लगाने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है और विभिन्न प्रकार के आनंद की प्राप्ति होती है।

❑ **स्वाधिष्ठान चक्र**—यह यौनेन्द्रियों के मूल में स्थित है। यह यौन अनुभूतियों तथा उनसे संबंधित प्रवृत्तियों का आधार है। इस पर ध्यान लगाने से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या आदि दूर होते हैं और ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

❑ **मणिपूर चक्र**—यह नाभि के मूल में स्थित है। यह निद्रा, इच्छा, सांसारिकता, मोक्ष, भय, विश्वासघात, लज्जा, ईर्ष्या, दु:ख आदि का आधार है। इस पर ध्यान लगाने से सृष्टि और विनाश की सृष्टि मिलती है।

❑ **अनाहत चक्र**—यह सुषुम्ना के अंतर्गत हृदय के मूल में स्थित है। यह जीव का आवास है। इसी में अहंकार जनित संवेग, आशा, चिंता, संदेह, अभिमान आदि का निवास है। इस पर ध्यान लगाने से बुद्धिमत्ता, शुद्धता, इन्द्रियों का नियंत्रण आदि की प्राप्ति होती है।

❑ **विशुद्ध चक्र**—यह गले के मूल में स्थित है। इस पर ध्यान लगाने से दया, क्षमा, साहस, आत्म-नियंत्रण, शुद्धता और समन्वय के गुण प्राप्त होते हैं और समस्त शास्त्रों का ज्ञान होता है।

❑ **आज्ञा चक्र**—यह दोनों भौंहों के मध्य स्थित है। इस पर ध्यान लगाने से योगी सर्वज्ञ होता है। उसे सब शास्त्रों का ज्ञान होता है और वह ब्रह्म साक्षात्कार का अनुभव करता है। इससे योगी सब प्रकार के अज्ञान से छूटकर ओम् में स्थित हो जाता है तथा परमानंद को प्राप्त करता है।

❑ **सहस्त्रार चक्र**—इस पर ध्यान केंद्रित करने से योगी परम शिव से एक हो जाता है। उसके अज्ञान और मोह नष्ट हो जाते हैं। वह पाप और पुण्य से छूट जाता है। उसके संचित कर्म समाप्त हो जाते हैं और इस प्रकार वह देह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। मरने के पश्चात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

उपरोक्त समस्त चक्र चेतना के सूक्ष्म केंद्र हैं। वे अदृश्य हैं और इसलिए उन्हें भौतिक रूप-से नहीं देखा जा सकता। किन्तु वे योगियों को दिखलाई पड़ते हैं। वे प्राणशक्ति की अभिव्यक्तियां हैं। ये ही प्राण-शक्तियां समस्त विश्व में व्याप्त हैं। इस प्रकार भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार देह भौतिक विश्व के विभु में अणु के समान है। जो कुछ भौतिक विश्व में है, वो ही सूक्ष्म रूप में देह में विद्यमान है। भौतिक विश्व पंचभूत से बना है। देह भी पंचभूत से बनी है। भौतिक विश्व में जो प्राण-शक्तियां काम कर रही हैं वे चक्रों के माध्यम से मानव देह में भी हैं। इन पर अधिकार करके मनुष्य विश्व शक्तियों पर भी अधिकार कर सकता है।

शरीर की नाड़ियां

उपनिषद् ग्रंथों में विभिन्न प्रकार की नाड़ियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। भावना उपनिषद् में 14 नाड़ियों का वर्णन किया गया है। ध्यान बिंदु उपनिषद् 72 हजार नाड़ियों का उल्लेख करता है (इस बारे में हम पीछे बता आए हैं), जिनमें 10 नाड़ियां विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। योगशिखा में 15 नाड़ियां बतलाई गई हैं, जबकि शांडिल्य उपनिषद् 14 नाड़ियों का वर्णन करता है तथा इन नाड़ियों के भिन्न-भिन्न कार्य भी बतलाए गए हैं। आयुर्वेद ग्रंथों में इनकी चर्चा मिलती है।

देह और आत्मा का विचार

उपनिषदों और गीता के अतिरिक्त षड्दर्शन के ग्रंथों में भी देह और आत्मा के गुणों और संबंध की चर्चा मिलती है। न्याय दर्शन के अनुसार स्थूल देह अनुभव का आधार है। आत्मा, इन्द्रियों और देह के माध्यम से ही अनुभव करती है। देह पंचभूत से बनी है। आत्मा, पाप और पुण्य के कारण देह धारण करती है और इनके क्षय हो जाने पर देह छोड़ देती है। यह ज्ञाता, भोक्ता और कर्ता है। ज्ञान और अनुभूति से देह आत्मा को प्रभावित करती है और संकल्प के माध्यम से आत्मा देह को प्रभावित करती है। इस प्रकार देह और आत्मा में अंतर्क्रिया का संबंध है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार देह भोगाधिष्ठान है और उसमें आत्मा से अंतर्क्रिया होती है। इस अंतर्क्रिया में आत्मा का देह से अधिक महत्त्व है। आत्मा कर्ता और भोक्ता है, जबकि देह भोगायतन और कारण है। आत्मा देह के माध्यम से भोगती है।

सांख्य दर्शन में देह को पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पंच तत्त्वों से निर्मित माना गया है। इनमें भी पृथ्वी का तत्त्व प्रधान है। प्राण स्थूल देह को उत्पन्न नहीं करता, किन्तु वह स्थूल देह का निमित्त कारण अवश्य है। तटस्थ आत्मा प्रत्यक्ष रूप-से स्थूल देह को प्रभावित नहीं कर सकती। वह प्राण के माध्यम से ऐसा करती है। आत्मा देह से भिन्न है। आत्मा स्वयं साध्य है जबकि देह उसका साधन है। पाप और पुण्य के समाप्त हो जाने पर आत्मा देह छोड़ देती है। अविवेक के कारण सामान्य जन आत्मा और देह में अंतर नहीं कर पाते। सांख्य दर्शन इनमें अंतर दिखलाता है। कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, मनस, बुद्धि और अहंकार की सृष्टि प्रकृति के विकास के द्वारा हुई है। इस प्रकार ये सब प्रकृति के तीनों गुणों से प्रभावित होते हैं। आत्मा त्रिगुणातीत है। वह मोक्ष के लिए प्रकृति के संपर्क में आती है, जबकि प्रकृति अभिव्यक्ति के लिए आत्मा के संपर्क में है। मोक्ष मिलने पर आत्मा का देह से संबंध नहीं रहता।

सूक्ष्म देह और लिंग देह

स्थूल देह के अतिरिक्त भारतीय दार्शनिकों ने सूक्ष्म देह का अस्तित्व माना है। उदाहरण के लिए सांख्य दार्शनिक सूक्ष्म देह को मानते हैं जो कि पंच कर्मेन्द्रियों, पंच ज्ञानेन्द्रियों, पंच तन्मात्र तथा मनस और बुद्धि के संयोग से बनता है। विज्ञान भिक्षु ने सूक्ष्म देह में 17 तत्त्व माने हैं। अनिरुद्ध इनमें 18 तत्त्व मानता है। सूक्ष्म देह अतिवाहिक देह कहलाती है, क्योंकि आत्मा उसे लेकर जन्म-जन्मांतर में घूमती है। सूक्ष्म देह एक है किन्तु आत्मा उसे लेकर अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न जन्मों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्थूल शरीर ग्रहण करती है। स्थूल शरीर नष्ट हो जाने पर आत्मा सूक्ष्म देह सहित उससे निकल जाती है।

सांख्य दार्शनिकों ने सूक्ष्म देह का आवास अधिष्ठान शरीर में माना है जो कि पांच सूक्ष्म तत्त्वों से बनता है। अधिष्ठान शरीर के साथ लिंग देह मृत्यु के समय स्थूल शरीर से निकल जाती है। चरक के अनुसार मृत्यु के समय अतिवाहिक देह पुनर्जन्म के लिए स्थूल शरीर से निकल जाती है। इस सूक्ष्म देह को योगी अपनी दिव्य दृष्टि से देख सकता है और इसकी सहायता से वह भिन्न शरीर में प्रवेश कर सकता है।

कारण देह

भारतीय दार्शनिकों ने सूक्ष्म देह के अतिरिक्त कारण देह की भी कल्पना की है। यह कारण देह, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, सूक्ष्म देह और स्थूल देह का कारण है। कारण देह ही इन दोनों देहों का रूप धारण करता है। यह कारण देह आनंदमय कोष में निवास करती है। कारण देह की रचना के विषय में दर्शनिकों ने भिन्न मत प्रकट किए हैं। किसी ने इसमें 17 तो किसी ने 22 तत्त्व माने हैं।

चिन्मय देह

धर्म के क्षेत्र में कुछ विचारकों ने चिन्मय देह की कल्पना भी की है। जब भक्त ईश्वर के सामने आत्मसमर्पण कर देता है तो वह चैतन्य और आनंद से भर जाता है। वह एक आध्यात्मिक चिन्मय देह विकसित करता है जिससे वह ईश्वर की पूजा करता है। चिन्मय देह ईश्वर साक्षात्कार के लिए आवश्यक है। इसे प्राप्त करने के लिए ईश्वर के नाम का जप, मंत्र अथवा ओम् का जप, चिंतन, मनन, निदिध्यासन की आवश्यकता होती है। यह अप्राकृत देह है जो सतत आध्यात्मिक साधना से प्राप्त होती है, जबकि कारण देह (शरीर) सूक्ष्म देह और स्थूल देह प्राकृतिक हैं और सभी को प्राप्त होती हैं। चिन्मय देह चित्त और आनंद से बनती है। इसलिए यह भाव देह भी कहलाती है। इसमें जड़तत्त्व नहीं होता। इसके होने पर व्यक्ति ईश्वर तथा अन्य आध्यात्मिक जीवों से संबंध स्थापित कर सकता है।

कुण्डलिनी साधन योगचक्र

प्राचीन महर्षियों के मतानुसार जैसे व्यक्ति (साधक) का एक शरीर स्थूल और दूसरा सूक्ष्म होता है, उसी प्रकार एक स्थूल प्रकृति होती है और दूसरी सूक्ष्म अर्थात् परा प्रकृति। इस भूलोक (मृत्युलोक) से ऊपर भी भ्रुवर्लोक तथा उससे भी अधिक कितने ही सूक्ष्म लोक-लोकान्तर हैं। इस प्रकार इस मृत्युलोक में पंच भौतिक शरीरधारी प्राणी होते हैं, उसी प्रकार भुवर्लोक, स्वर्लोक आदि सूक्ष्मादि लोकों में भी उन लोगों की प्रकृति के अनुसार वहां कार्य करने योग्य प्राणियों के सूक्ष्म शरीर को जैसी आवश्यकता होती है, वैसे ही सूक्ष्मतर शरीरधारी जीव वहां कार्य करते हैं। ये शरीर इस प्रकार होते हैं।

सबसे ऊंचे प्रकार का आनंदमय शरीर, उसके बाद विज्ञानमय मनोमय, प्राणमय और सबसे नीचे अन्नमय स्थूलमय शरीर माना गया है। उन्हें दूसरे नामों से भी जाना जाता है। स्थूलदेह वासनामय शरीर, मनोमय शरीर, विज्ञानमय शरीर, आनंदमय शरीर।

आत्मा इन सभी शरीरों से ऊपर की चीज है। विशेष प्रकार की छोटी-बड़ी दैविक शक्तियां इन सभी सूक्ष्म, स्थूलादि प्रकृतियों से बने हुए शरीरों में काम करती हैं। प्राणमय शरीर बड़े ही महत्त्व का है। इस शरीर को सूर्य से शक्ति प्राप्त करनी पड़ती है। यह प्राणमय शरीर सर्वत्र और सभी लोकों में जा सकता है। यह मानव शरीर में स्नायुगुच्छ के रूप में अर्थात् एक घूमते चक्र प्रकाशपुंज के ध्यानस्थिति के अंतर्गत शरीर में विभिन्न स्थानों पर अर्थात् जो स्थान शरीर में छोटे-बड़े योगचक्रों के लिए निश्चित किए गए हैं, उन स्थानों पर अवस्थित हैं।

इन चक्रों का स्वरूप, इनके वर्ण, अक्षर, देवी-देवता एवं इन सभी योग चक्रों की शक्तियों का वर्णन हमारी प्राचीन शक्ति-संपन्न, परम तपस्वी, अनुभवी, योगी, संत, महात्माओं ने ऊंची योग स्थिति में आकर, प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा विस्तार के साथ, योगी साधकों के लिए किया है। पराध्यान साधना के द्वारा प्रबल इच्छाशक्ति, दृढ़ संकल्पशक्ति और अदम्य उत्साह के साथ कल्पना के द्वारा सूक्ष्म ध्यान के साथ अपने सूक्ष्म प्राण को योगी इन सभी योग चक्रों में मूलाधार चक्र से आरंभ करके ले जा सकता है। समस्त चक्रों का अलग-अलग वर्णन आगे किया गया है।

❑❑

नि:श्वास : आठ

मूलाधार चक्र

मूलाधार चक्र के निचले भाग में सुषुम्ना नाड़ी का मुख होता है। उसके बिल्कुल पास ही एक गुप्त शिवलिंग है। एक महा सर्पिणी जिसे कुण्डलिनी आदिशक्ति कहते हैं, वह साढ़े तीन चक्कर लगाकर उस गुप्त शिवलिंग के साथ लिपटकर नीचे की ओर मुख करके सुप्तावस्था में उपस्थित है। यह चक्र कितनी ही उच्चकोटि की शक्ति रखता है। यह रीढ़ की हड्डी का सबसे निचला स्थान है। मूलाधार चक्र पर ध्यान का फल है—आरोग्यता, आनंद, वाक्य दक्षता। यह भूलोक है।

मूलाधार चक्र का स्थान, अधिपति देवता, उनकी शक्ति, यंत्र, कमलदल पर अक्षरों का न्यास आदि निम्नलिखित हैं—

- **यौगिक नाम—** मूलाधार योग चक्र (साधक के देवत्व की ओर विकास एवं सांसारिक विकास और चैतन्यता का मूल है, मूलधार चक्र)
- **स्थान—** मेरुदण्ड के सबसे निचले भाग में सिवनी नाड़ी के पास; योनि, गुदा या जननेन्द्रिय के बीच, कुल कुण्डलिनी शक्ति परम चैतन्य शक्ति, जीवनी शक्ति का पीठ स्थान
- **यंत्राकृति—** चतुष्कोण
- **यंत्र वर्ण—** पीला (सुवर्ण समान)
- **त्रिकोण—** स्वयंभूलिंग एवं कुल कुण्डलिनी का यंत्र
  (शक्ति की अधोगति का परिचायक यंत्र इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना प्रधान नाड़ियों का बोध कराता है। मूलाधार चक्र में तीनों नाड़ियों का संगम अधोमुखी त्रिकोण बनाता है तथा शक्ति की अध:गति का कारण होता है।)
- **बीज मंत्र—** लं
  (बीज ''लं'' प्रथम चक्र मूलाधार की बीज ध्वनि; इस ध्वनि का बार-बार उच्चारण करने से असुरक्षा, भय इत्यादि दूर होकर साधक को सुरक्षा, जाग्रति एवं मनोबल की प्राप्ति होती है। यह ध्वनि होंठों को चतुष्कोण बनाकर तथा जिह्वा को दांतों की जड़ के समीप तालु में आघात करने से उत्पन्न होती है। जब ध्वनि का उच्चारण शुद्ध हो जाता है तो प्रथम चक्र की नाड़ियां उत्तेजित होकर एक प्रकार का अवरोध उत्पन्न करती हैं, जिससे शक्ति की अधोगति रुक जाती है और तब ऊर्ध्वगति आरंभ होती है)
- **बीज वर्ण—** सुवर्णाभ
- **दलों के अक्षर—** वं शं षं सं
- **वाहन—** ऐरावत
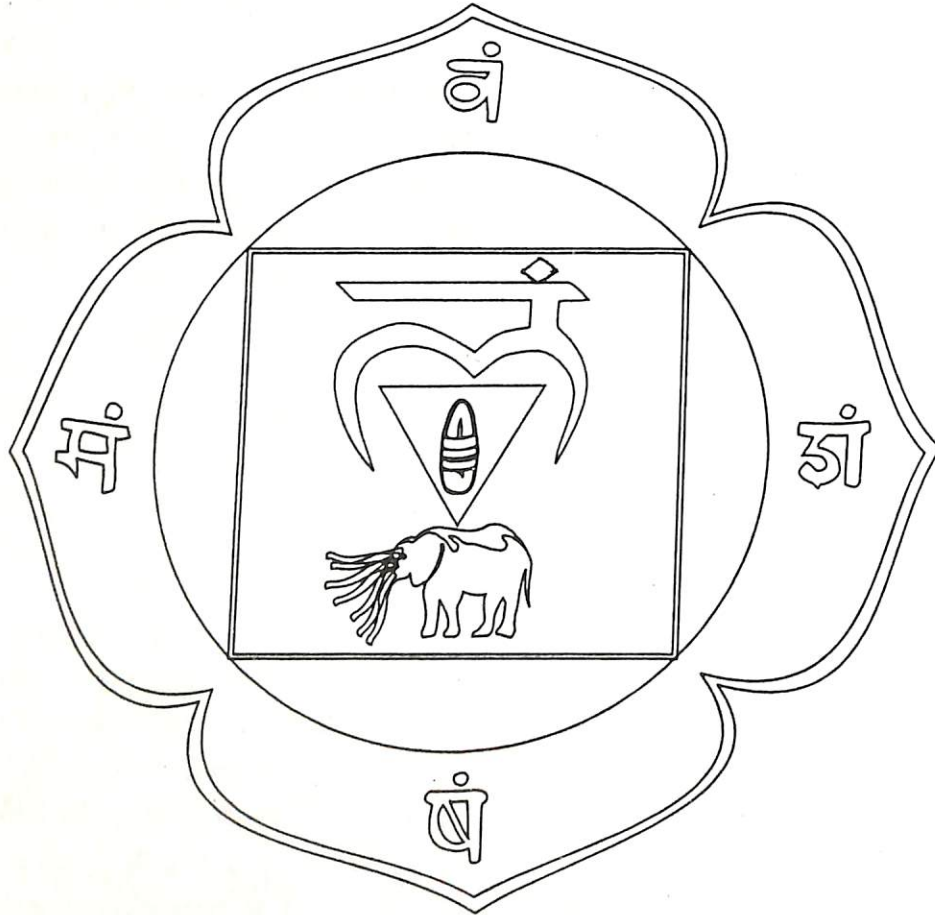
मूलाधार को 'यौनचक्र' भी कहते हैं। हाथी शक्ति का प्रतीक है जबकि उसकी सूड़ें क्रियाशीलता का। सूंड़ों का विभिन्न दिशाओं को उठना, इस बात का संकेत है कि क्रिया एक दिशा की ओर नहीं, बल्कि भटकाव की स्थिति में है

(जिस साधक ने अपनी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण कर लिया वो इन्द्र के समान हो जाता है। इन्द्र ऐरावत रूपी वाहन पर सवारी करते हैं, जिसकी त्वचा का वर्ण हल्का भूरा एवं सातों सूंडें इन्द्रधनुष के समान हैं। प्रथम चक्र के स्तर का साधक ऐरावत की भांति जमे हुए कदमों से चलता है।)

- **भाव—** सप्त भाव
  (श्रोत ''शब्द'', त्वचा ''स्पर्श'', चक्षु ''रूप'', जिह्वा ''रस'', नासिका ''गन्ध'', गुदा ''मल-त्याग'', लिंग या योनि ''प्रजनन'')
- **चक्र गुण—** आश्रय स्थल, सुरक्षा
- **तत्त्व—** भूमि
- **तत्त्वरूप—** चतुष्कोण/ चतुर्भुज
  (चारों कोण भूमि के चार स्तंभ हैं, संपूर्णता के द्योतक हैं। भूमि पर मनुष्य की संपूर्णता के प्रतीक हैं एवं चारों दिशाओं के बोधक हैं)
- **गुण—** गन्ध
- **ज्ञानेन्द्रिय—** नासिका
- **कर्मेन्द्रिय—** गुदा/ मलद्वार
  (जो साधक अपने कर्म-बंधनों को बढ़ा लेता है, प्राकृतिक नियमानुसार नहीं चलता, उसकी ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां उसके जीवन में बेचैनी और दु:ख बढ़ा देती हैं। किन्तु जो साधक प्राकृतिक नियमानुसार चलता है, उसकी शक्ति का व्यर्थ अपव्यय स्थिर हो जाता है और किसी भी परिस्थिति में उसका अंत:करण दूषित नहीं होता तथा मन की एकाग्रता भी भंग नहीं होती, चक्र पर ध्यान जमता है)
- **वायु—** अपान
- **लोक—** भू
- **ग्रह—** मंगल (सूर्य संबंधी)
- **देव—** ब्रह्मा
  (इनके ध्यान से मस्तिष्क शांत होता है, सब प्रकार के भय दूर होते हैं, इनकी उपासना से आयु की वृद्धि होती है। ये स्रष्टा हैं, चारों दिशा के स्वामी और मूलाधार के प्रधान देवता हैं)
- **देव शक्ति—** डाकिनी
  (प्रथम चक्र मूलाधार संपूर्ण सृष्टि का मूल है, प्रथम चक्र पर ध्यान लगाने से साधक को डाकिनी शक्ति का अनुभव सहज ही हो जाता है। यह शक्ति साधक की सब बाधाओं को दूर करती है, जिससे वह कुण्डलिनी मार्ग पर आगे बढ़ने में सक्षम होता है)
- **शक्ति के वर्ण—** अ:-फ-उ
- **कमलदल—** चतु:दल
  (चारों कमलदल चार प्रधान (मुख्य) कंदराओं के अंतिम सोपान हैं)
- **दल वर्ण—** रक्त

- **मुद्रा—** अंगुष्ठ, कनिष्ठिका
(अंगुष्ठ-कनिष्ठिका के पोरों को मिलाना)
- **अनुभूति/ स्वाद—** गन्ने जैसा मीठा
- **प्रहरी देवता—** गणेश/ सिद्धि-बुद्धि
(जो अनादि होगा वह अनन्त भी होगा और जो अनादि-अनन्त होगा वह ब्रह्मांड व्याप्त तत्त्व होगा; उसका ब्रह्मांडीय व्यक्तित्व होगा। देवताओं और देवों में जिसकी प्रथम पूजा की जाती है, उस गणेश को ब्रह्मांडीय व्यक्तित्व का निरूपित किया है। ऋषियों के अनुसार देवता का अर्थ है परब्रह्म और उसकी आदि प्रकृति की ब्रह्मांडीय कार्यकारी शक्ति! ये शक्तियां अनेक हैं, गणेश उनमें से एक हैं और गणनायक हैं। ब्रह्मांड में सत्ता के सात स्वर हैं—सत् या सत्यलोक, तपलोक या चित्लोक, आनंदलोक या जनलोक, महर्लोक या विज्ञानलोक, स्थूल अन्नमयलोक। सृजनोन्मुख महाशक्ति जब महर्लोक के बाद भौतिक स्तर की ओर कदम बढ़ाती है, तब सर्वप्रथम वह अपने ब्रह्मांडीय तेज को घनीभूत कर लेती है। उसका यह भाव प्रकाशपुंज जैसा दिखाई देता है। ऋषियों के अनुसार यह हाथी के मस्तक जैसा विस्तृत है, जिसमें एक अखण्ड प्रकाश समाया रहता है। इसे ब्रह्मांडीय मन कहा गया है और यही गणेश हैं। जगत के सारे व्यष्टि मन इसी ब्रह्मांडीय मन के अंश हैं और इसी के भीतर हैं। इसलिए ये सब गण हैं और गणेश गणपति हैं। साधक जब गणेश की उपासना करता है, तब उसकी प्रसन्नताजन्य शक्ति द्वारा अवचेतन में प्रवाहित ज्योति की अंतर्धारा से प्रकाश की झलकियां चेतन मन में आने लगती हैं। जिस प्रकार हाथी जलाशय का जल सूंड में भरकर अपने ऊपर बौछार रूप-से छोड़ता है, उसी प्रकार हमारा मन अवचेतन गणेश की कृपा से, ज्योति की अंत:धारा से प्रकाश की किरणें उछालता रहता है, जिसके कारण हमारे भीतर व्याप्त अज्ञान रूपी अंधकार कटता रहता है। गणेश का वास मूलाधार चक्र में है। इस चक्र पर ध्यान लगाना, सर्वप्रथम गणेश की उपासना ही है।)
- **मंत्र—** गं गणपतये नम:
- **मंत्र संख्या—** छह सौ
- **मंत्र देवता—** गणेश/ गणपति
- **चक्र की प्रवृत्तियां—** निर्माण कार्य, भय निवारण
- **ध्यान सिद्धि—** आरोग्यता, संपूर्ण स्वास्थ्य, भूमि तत्त्व के संबंध में पूर्ण ज्ञान, भार बढ़ा लेने की शक्ति की प्राप्ति

विशेष—मूल कुण्डलिनी का आधार होने से मूलाधार नाम हुआ।

❑❑

निःश्वास : नौ

स्वाधिष्ठान चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र का मूल स्थान मूलाधार चक्र के ऊपर पेड़ू के पास माना गया है। द्वितीय चक्र के स्तर पर साधक की मुख्य समस्या कल्पना द्वारा मन और शरीर में उत्तेजना उत्पन्न करने की इच्छा है। इस चक्र के प्रभाव से साधक की भंवर में फंसकर डूबने जैसी मनोदशा हो जाती है, अनेक प्रकार की मानसिक उलझनों के कारण मन उद्विग्न रहता है। इस चक्र की पूर्णता को पहुंचने के लिए साधक को भोजन, निद्रा, कामेच्छा, मन और शरीर के क्रिया-कलापों पर पूर्णतया नियंत्रण रखना होगा, तभी वह अगले (तृतीय) चक्र की ओर अग्रसर होगा।

स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान, अधिपति देवता, देवता की शक्ति, यंत्र, कमलदल पर अक्षरों का न्यास आदि निम्नलिखित हैं—

- **यौगिक नाम—** स्वाधिष्ठान चक्र
  (साधक बुराइयों का नाशकर्त्ता, वीर, स्वाभिमानी होता है। संपूर्ण व्यक्तित्व को बदल देने वाले चक्र का नाम है, स्वाधिष्ठान चक्र)
- **स्थान—** मूलाधार चक्र से थोड़ा ऊपर यौनेन्द्रियों के मूल में, यौन अनुभूतियों तथा उससे संबंधित प्रवृत्तियों का आधार
- **यंत्राकृति—** चन्द्राकार
- **यंत्र वर्ण—** श्वेत
- **अर्धचन्द्र—** नील वर्णीय, स्वाधिष्ठान चक्र का यंत्र, जल तत्त्व वृत्ताकार, चंद्रमा से संबंधित स्त्रियों में मासिक प्रवृत्ति एवं प्रजनन क्रिया का मुख्य क्षेत्र, जल, जीवन का स्रोत्र
- **बीज मंत्र—** वं
- **बीज वर्ण—** सुवर्णिम
- **दलों के अक्षर—** वं भं मं यं रं लं
- **वाहन—** मकर
  (बीज मंत्र ''वं'' का वाहन मकर है, इसकी गति कामुक प्रवृत्ति की द्योतक है, साधक की कामशक्ति बड़ी प्रबल हो जाती है)
- **चक्र गुण—** परिवार-कल्पना, प्रजनन
- **तत्त्व—** जल
- **तत्त्वरूप—** वृत्त
- **गुण—** रस (स्वादानुसार)
- **ज्ञानेन्द्रिय—** जिह्वा
- **कर्मेन्द्रिय—** जननेन्द्रिय
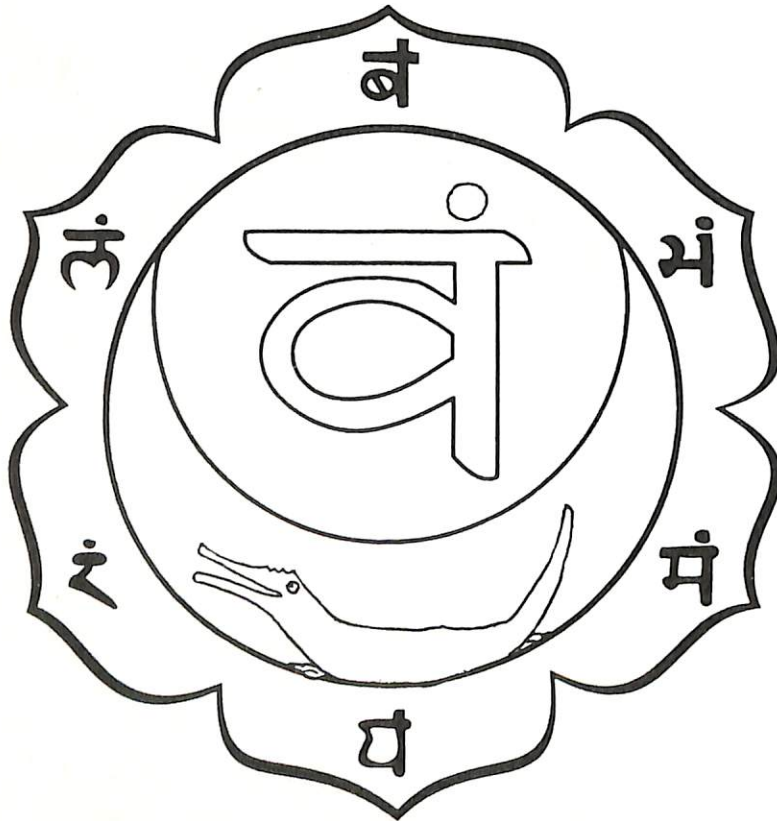
जल में मकर की शक्ति कई गुना बढ़ जाती है। जल प्रतीक है मन का। इस चक्र पर स्थित व्यक्ति कल्पनाओं के आधार पर, किसी तरह से, छल-बल से अपने काम को साध लेता है। उसमें काम का वेग भी अत्यधिक होता है

- **वायु—** अपान
- **लोक—** भुव: (नाग, मंगल)
- **ग्रह—** बुध/ चंद्र
- **देव—** विष्णु

(भारतीय अध्यात्म के सर्वाधिक प्रसिद्ध त्रिदेवों में भगवान विष्णु भी एक हैं। जहां सृष्टि की उत्पत्ति का कार्य ब्रह्मा द्वारा संचालित होता है और समापन (संहार) व्यवस्था शिवजी देखते हैं, वहां जन्म के पश्चात् मृत्यु तक की जीवनावधि में प्राणी के पालन-पोषण का प्रबंध विष्णु देखते हैं।

अखिल सृष्टि-पालक और लोक-नियंता होने के नाते कभी-कभी समस्या-विशेष के निवारण हेतु विष्णु भगवान कोई अन्य रूप भी धारण कर लेते हैं। मुख्य रूप-से विष्णु के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के अंतर्गत ''दशावतार'' प्रसंग भी आता है।

लक्ष्मीपति श्रीविष्णु का निवास बैकुंठलोक है और कालक्रम से वे क्षीरसागर में, शेष शय्या पर भी शयन करते हैं। राम, कृष्ण, नृसिंह, दत्तात्रेय, वामन, कूर्म, कच्छप और मत्स्य अवतारों की कथाएं लोक-विख्यात हैं। भगवान विष्णु के अनेक नाम हैं। विष्णु सहस्रनाम नामक एक स्तोत्र में उनके एक हजार नामों की तालिका है। किसी भी नाम से, उनके किसी भी रूपावतार की स्तुति-पूजा की जाए, अवश्य ही प्रभाव की अनुभूति होती है। देवाराधना में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है—भक्त की आस्था! जो जितना अधिक तन्मय, आत्म-समर्पित और आस्थावान होकर उपासना करता है, उसे उतने ही कम समय में विष्णु-कृपा की अनुभूति हो जाती है।

स्वाधिष्ठान चक्र पर ध्यान लगाने से, कुण्डलिनी जागरण की कामना करने वाले साधक को विष्णु-कृपा प्राप्त होती है। वैसे विष्णु का स्तवन किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु किया जा सकता है, क्योंकि वे पूर्णतया सर्व-समर्थ और जगत् के आदि कारण हैं। मोक्षकामी जन अपनी श्रद्धा-कामनानुसार उनकी उपासना करते रहते हैं। कुण्डलिनी जाग्रत करने वाले साधक को विष्णु-पूजा, उपासना अथवा भक्ति अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि स्वाधिष्ठान चक्र के देव ''विष्णु'' ही हैं।)

- **देव शक्ति—** राकिनी

(राकिनी शक्ति कला एवं ज्ञान का प्रथम बोध कराने वाली है। यह स्वाधिष्ठान चक्र की शक्ति द्विमुखी देवी है। इस चक्र के लक्ष्य-भेदन से साधक को चक्र में शक्ति की ऊर्ध्व गति का आभास होता है। राकिनी शक्ति दूसरे ''स्वाधिष्ठान'' चक्र के समस्त अवरोधों को समाप्त कर देती है।)

- **शक्ति के वर्ण—** ए, र
- **कमलदल—** छह

(कमलदल हिंगुल सम-रक्त वर्ण के हैं तथा ये छहों कमलदल छह मुख्य नाड़ियों के मुखों के प्रतीक हैं। जिस प्रकार पहला चक्र मूलाधार के चारों कमलदल शक्ति का चारों विद्याओं में, चतुर्मुखी प्रभाव में द्योतक हैं, उसी प्रकार स्वाधिष्ठान चक्र के

छह कमलदल शक्ति की धारा को छह विद्याओं में प्रवाहित करते हैं।
पहले चक्र की चतुष्कोण जाग्रति दूसरे चक्र ''स्वाधिष्ठान चक्र'' में वृत्ताकार हो जाती है तथा शक्ति की गति तथा प्रवाह अधिक वेगवान हो जाता है।)

- **दल वर्ण—** सिंदूरी
- **वृत्त—** श्वेत वृत्त
  (जल का द्योतक है जो स्वाधिष्ठान चक्र का तत्त्व है)
- **मुद्रा—** अंगुष्ठ, अनामिका
  (अंगुष्ठ-अनामिका के पोरों को मिलाना)
- **अनुभूति/ स्वाद—** कषाय (कसैला : आंवला जैसा)
- **प्रहरी देवता—** सरस्वती/ ब्रह्मा
  (ज्ञान, बुद्धि, प्रतिमा, स्मरण-शक्ति, चेतना, विवेक, सात्त्विकता, औचित्य-बोध, वाणी, भाषण-शक्ति, संगीत, स्वर, विद्या, प्रत्युत्पन्न-मतित्व, लेखन, काव्य-सृजन, तर्क-शक्ति, धारणा-शक्ति, विचार-शक्ति, अनुसंधान क्षमता, कल्पना और संवेदना जैसे गुणों की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी की शक्ति माना गया है। वस्तुतः ये संसार की चेतनाशक्ति की स्वामिनी हैं।)
- **मंत्र—** ओम् नमो नारायणाय
- **मंत्र संख्या—** छह हजार
- **मंत्र देवता—** विष्णु
- **चक्र की प्रवृत्तियां—** ज्ञान, युद्ध, संभोग
- **ध्यान सिद्धि—** सृजन, पालन, निधन में समर्थता, वाणी में सरस्वती का निवास, श्रेष्ठता, ज्ञानवान, योग में रुचि, विकार और अहंकार का नाश।

नोट—यह भुवः लोक है।

❑❑
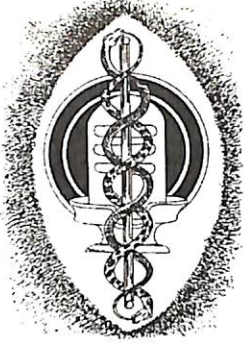
नि:श्वास : दस

मणिपूर चक्र

मणिपूर चक्र मनुष्य के नाभि-मूल में स्थित है। यह निद्रा, इच्छा, सांसारिकता, मोक्ष, भय, लज्जा, विश्वासघात, ईर्ष्या आदि का आधार है। इस पर ध्यान लगाने से बुद्धिमत्ता, शुद्धता, इन्द्रियों के नियंत्रण आदि की प्राप्ति होती है तथा योगी साधक को अपने शरीर का भौतिक ज्ञान होता है। नाभि प्रदेश और आंतों के समस्त विकारों का शमन होकर स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है। रुद्र ग्रंथि का निवास यहीं पर है, जिसका योग में सर्वाधिक महत्त्व है। चौदह से इक्कीसवें वर्ष तक की आयु मणिपूर चक्र से प्रभावित रहती है। इस चक्र पर गुरुत्वाकर्षण बल रहता है। अनगिनत स्नायुमंडलों का संचालन इस चक्र से होता है।

मणिपूर चक्र का स्थान, अधिपति देवता, देवता की शक्ति, यंत्र, कमलदल पर अक्षरों का न्यास आदि निम्नलिखित हैं—

- **यौगिक नाम—** मणिपूर चक्र
  (भावानुभावों को उत्तम करने वाली नाड़ी रहित ग्रंथियों के कार्य का बोध कराने वाला चक्र मणिपूर है।)
- **स्थान—** नाभि मूल—यहां अमृत का वास होता है
- **यंत्राकृति—** अधोमुखी त्रिकोण
- **यंत्र वर्ण—** रक्त (सुर्ख लाल)
- **त्रिकोण—** दृढ़ आकृति, अग्निरूप
  (सूर्य चक्र, मणिपूर चक्र ही है। त्रिकोण या त्रिभुज का अधोमुखी होना शक्ति के अध:प्रवाह का द्योतक है।)
- **बीज मंत्र—** रं
  (मणिपूर चक्र के बीज मंत्र की ध्वनि जो होंठों को त्रिकोण रूप देकर मूर्धास्थान पर जुबान मारने से उत्पन्न होती है। इस ध्वनि का उच्चारण करते हुए जुबान तालु में लगाकर नाभि पर ध्यान लगाया जाता है। यदि शुद्ध रूप-से लगातार ''रं'' ध्वनि का उच्चारण किया जाए तो पाचन एवं रस का आत्मसात कर लेने की शक्तियां बढ़ती हैं। इस ध्वनि से साधक दीर्घायु होता है, जो मणिपूर चक्र से प्रभावित मनुष्य की सबसे बड़ी रुकावट है। अधोमुखी त्रिकोण रक्त वर्ण एवं त्रिद्वार वाला है। यह त्रिकोण बीज मंत्र ''रं'' का पीठ स्थान है। अग्नि का गुण ऊर्ध्वगति है; उचित प्रकार से साधना करने से मणिपूर चक्र की अग्नि ऊर्ध्वगति हो जाती है।)
- **बीज वर्ण—** सुवर्णिम

देवता : रुद्र

शक्ति : लाकिनी

मेढ़ा अति उत्साही होता है। यह इतना युद्धप्रिय होता है कि एक बार लड़ाई में उतरने के बाद अपनी जान की भी परवाह नहीं करता। तब तक लड़ता है, जब तक प्रतिद्वंद्वी मैदान छोड़कर भाग न जाए। ये सारे लक्षण संकेत करते हैं उसमें अग्नि तत्व की प्रधानता के। ऊर्जा मानो छलकती है इससे

- **दलों के अक्षर—** डं ढं णं तं दं धं नं पं यं फं
- **वाहन—** मेढ़ा/ मेष
  (बीज मंत्र ''रं'' का वाहन मेढ़ा है, यह अग्नि का भी वाहन है। मेढ़ा से, मणिपूर चक्र से प्रभावित व्यक्ति की प्रकृति का पता चलता है। मेढ़ा सिर से लड़ने वाला बलवान पशु है। यही कारण है कि चक्र-साधक अत्यंत स्वाभिमानी तथा अहं में चूर होता है तथा मेढ़ा के समान कालचक्र की गति के अनुसार गतिशील रहता है।)
- **चक्र गुण—** देखना/अहंकार रूप
- **तत्त्व—** अग्नि
  (त्रिभुजाकार रूप का अग्नितत्त्व है। इस तत्त्व की प्रधानता शरीर को आवश्यक जीवन-शक्ति प्रदान करती है)
- **तत्त्वरूप—** त्रिभुज/त्रिकोण
- **गुण—** दृष्टि
- **ज्ञानेन्द्रिय—** चक्षु
- **कर्मेन्द्रिय—** हाथ-पांव
- **वायु—** समान
- **लोक—** स्वर्ग
- **ग्रह—** सूर्य/ रवि
- **देव—** रुद्र
  (भगवान रुद्र ''शिव'' हैं, जो कुछ विद्यमान है, वो उन्हीं के पास लौट जाता है। शिव का रुद्र रूप संहारक है, संभवत: इसी कारण मणिपूर चक्र से प्रभावित व्यक्ति क्रोधी होता है। वैरागी व्यक्ति ऐसे स्वभाव वाले अधिक होते हैं।)
- **देव शक्ति—** लाकिनी
  (देवी लाकिनी की चार भुजाएं हैं। पहली भुजा में वज्र, दूसरे में बाण, तीसरी में अग्नि पात्र तथा चौथी भुजा अभय मुद्रा में उठी है। देवी के तीन मुख हैं, उसके दृष्टि क्षेत्र के अंतर्गत तीनों लोक अर्थात् भू:, भुव:, स्व: भौतिक तारा मंडल एवं स्वर्गादि सब आ जाते हैं।)
- **शक्ति के वर्ण—** ऐ, ल
- **कमलदल—** दस
  (दसों दल दसों प्राणों का बोध कराते हैं। हरेक दल से रुद्र के एकेक रूप का बोध होता है।)
- **दल वर्ण—** नील
  (अग्नि शिखा के ऊपर के अत्यंत तेजस्वी प्रकाशवान, नील वर्ण के समान कमल दलों का वर्ण है)
- **मुद्रा—** अंगुष्ठ, मध्यमा
  (मणिपूर चक्र में अंगुष्ठ से मध्यमा को मिलाने से शरीर में उष्मा उत्पन्न होती है तथा मणिपूर चक्र जाग्रत हो उठता है।)
- **अनुभूति/ स्वाद—** तिक्त (मिर्च जैसा तीखा)

- **प्रहरी देवता—** लक्ष्मी/ विष्णु
  (लक्ष्मीजी—जगत के पालनकर्त्ता भगवान विष्णु की पत्नी हैं, अतः व्यक्ति के जीवन-यापन का मूलाधार उन्हीं की कृपा से प्राप्त होता है।)
- **मंत्र—** ओम् नमो भगवते रुद्राय स्वाहा
- **मंत्र संख्या—** छह हजार
- **मंत्र देवता—** रुद्र
- **चक्र की प्रवृत्तियां—** विजय, अहंकार
- **ध्यान सिद्धि—** जिह्वा पर सरस्वती का वास, संहार पालन में समर्थ

नोट—चक्र पर ध्यान लगाने का फल शरीर व्यूह का ज्ञान। यह स्वः लोक है।

❑❑

नि:श्वास : ग्यारह

अनाहत चक्र

अनाहत चक्र सुषुम्ना के अंतर्गत हृदय के मूल में स्थित है। यह जीव का आवास है। इसी में अहंकार जनित संवेग, आशा, चिंता, संदेह, अभिमान आदि का वास है। इस पर ध्यान लगाने से बुद्धिमत्ता, शुद्धता, इन्द्रियों का नियंत्रण आदि की प्राप्ति होती है। यह चक्र सभी चक्रों से अलग प्रकार की शक्ति रखने वाला है। यह चक्र सर्वदा शक्ति संपन्न रहता है और इस पर ध्यान करने से सभी निचले चक्रों को भी जाग्रत किया जा सकता है। इसकी शक्ति का पारावार पाना बहुत कठिन है।

अनाहत चक्र का स्थान, अधिपति देवता, देवता की शक्ति, यंत्र, कमलदल पर अक्षरों का न्यास आदि निम्नलिखित हैं—

- **यौगिक नाम—** अनाहत योग चक्र
  (परकाया में प्रवेश की योग्यता प्रदान करने वाला चक्र अनाहत है)
- **स्थान—** हृदय
- **यंत्राकृति—** षट्कोणाकार
- **यंत्र वर्ण—** धूम्र
- **षट्कोण—** अनाहत चक्र का यंत्र
  (गहरे भूरे रंग का है, वायु तत्त्व का प्रतीक, गतिशील, ऊर्ध्वमुख एवं अधोमुख त्रिभुजों द्वारा रचित)
- **बीज मंत्र—**यं
  (अनाहत चक्र के बीज मंत्र की ध्वनि ''यं'' है। यं ध्वनि का उच्चारण करने से जिह्वा मुख के अधर में, वायु में स्थिर हो जाती है। इस समय हृदय पर ध्यान केंद्रित रहना चाहिए। यं ध्वनि को शुद्ध रूप में उच्चारण करने से हृदय तरंगित होने लगेगा, जिससे हृतपिण्ड में हर प्रकार के अवरोधों का निवारण हो जाता है। जब हृदय खुल जाता है, तब शक्ति का प्रवाह अबाध गति से ऊपर की ओर होने लगता है। बीज मंत्र की ध्वनि से साधक का अपनी श्वास एवं प्राणों पर प्रभुत्व होता है।)
- **बीज वर्ण—** सुवर्णिम
- **दलों के अक्षर—** कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं
- **वाहन—** हिरण
  (बीज मंत्र ''यं'' का वाहन हिरण हृदय का भी प्रतीक है। बीज मंत्र के उच्चारण से साधक जागरूक, संवेदनशील तथा उत्साहित रहता है।)

देवता : ईश

शक्ति : काकिनी
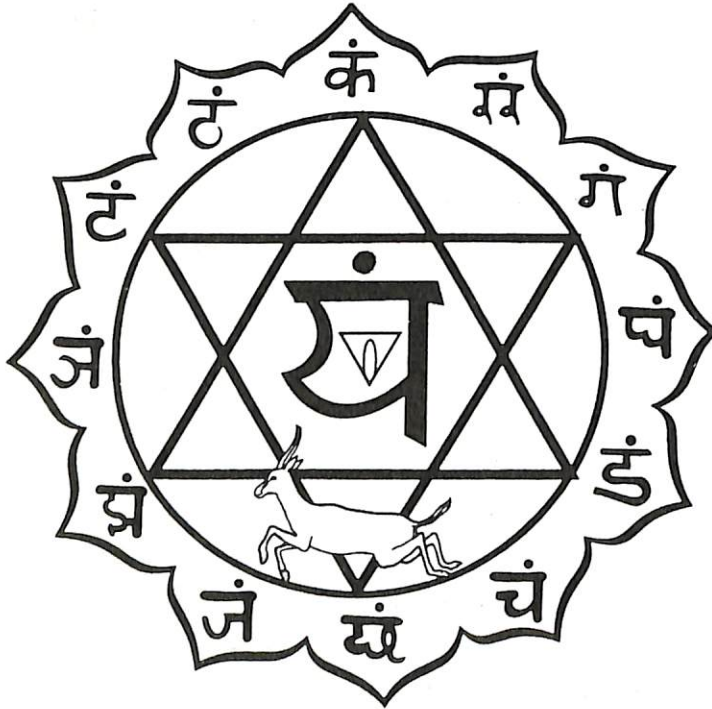
हिरण ऐसी ऊर्जा का प्रतीक है, जिसमें सौम्यता है और सहज चंचलता भी। कोमल भाव का प्रतीक है मृग। मधुरवाणी सुनकर मृग अपनी सुध-बुध खो बैठता। सरलता और चंचलता भावना के साथ जुड़ जाने के कारण अतृप्ति का अहसास कराती है। भटकाव बना रहता है। अपनी नाभि में छिपी कस्तूरी को इधर-उधर तलाशना और दूर रेत में जल की प्रतीति की वजह हृदय प्रधान या भाव प्रधान होता है

- **चक्र गुण—** सर्व में भगवत दृष्टि/ स्पर्श
- **तत्त्व—** वायु
- **तत्त्वरूप—** षट्कोण
- **गुण—** स्पर्श
- **ज्ञानेन्द्रिय—** त्वचा
- **कर्मेन्द्रिय—** हाथ
- **वायु—** प्राण वायु, व्यान वायु, समान वायु, अपान वायु, उदान वायु
  (मानव शरीर में वायु पांच प्रकार से काम करती है। श्वास की क्रिया प्राण वायु से है। अपान वायु से मल-मूत्र का त्याग संभव हो जाता है। शरीर में व्याप्त होकर समस्त अंगों को गति प्रदान करना व्यान वायु का कार्य है। ऊपर की ओर जाने वाली नाड़ी से गति करना उदान वायु का काम है तथा नाभि का स्थान समान वायु का है, यहीं रहकर यह अन्नादि का समीकरण करती है।)
- **लोक—** महत लोक
- **ग्रह—** गुरु/ चंद्र
- **देव—** ईशान रुद्र
- **देव शक्ति—** काकिनी
  (अनाहत चक्र में सकल लोक कल्याणकारिणी, पीत वस्त्र से सुशोभित, अलंकारों से अलंकृत, चार भुजाओं वाली, श्यामली, रुद्र शक्ति काकिनी विराजमान हैं। अहंकार, लोभ, अविवेक, कपट, वितर्क, अनुताप, आशा, चिंता, चेष्टा, दंभ और ममता आदि वृत्तियों से निवृत्ति होकर मनुष्य (साधक) योगीश्वर, परकाया प्रवेश तथा ईशत्व-सिद्धि को प्राप्त होता है।)
- **शक्ति के वर्ण—** ओ, क
- **कमलदल—** सभी बारह कमलदल वृत्त के बाहर की ओर मुड़े हुए हैं जो गहरे सिंदूरी लाल रंग के हैं। इन कमलदलों से शक्ति का बारह स्त्रोतों से प्रवाह एवं बारह विद्याओं में शक्ति के प्रसार का बोध होता है।
- **दल वर्ण—** अरुण
- **मुद्रा—** अंगुष्ठ, तर्जनी (अंगुष्ठ-तर्जनी के पोरों को परस्पर मिलाना)
- **अनुभूति/ स्वाद—** अम्ल (इमली जैसा खट्टा)
- **प्रहरी देवता—** पार्वती/ शिव
- **मंत्र—** ओम् ह्रीं घृणिसूर्य आदित्य श्रीं
- **मंत्र संख्या—** छह हजार
- **मंत्र देवता—** लोकपाल सूर्य
- **चक्र की प्रवृत्तियां—** योग
- **ध्यान सिद्धि—** वाक् सिद्धि, कवित्व शक्ति, योगीश्वर ईशत्व सिद्धि, परकाया प्रवेश, जितेंद्रियता।

नोट—अनाहत नाद का यही स्थान है। यह महः लोक है।

निःश्वास : बारह

विशुद्ध चक्र

विशुद्ध चक्र गले के मूल में स्थित है। इस पर ध्यान लगाने से दया, क्षमा, साहस, आत्म-नियंत्रण, शुद्धता और समन्वय के गुण प्राप्त होते हैं तथा समस्त शास्त्रों का ज्ञान होता है। मेरुदण्ड की सीमा इस चक्र से समाप्त हो जाती है। सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला नाड़ियां इसके आगे के चक्र आज्ञा चक्र में जाकर मिलती हैं। भगवती बाला, भगवती षोडसी, भगवती त्रिपुरा और श्री यंत्र की साधना इसी चक्र के अंतर्गत आती है, क्योंकि यहां आकर पुरुष (साधक) विकार रहित हो जाता है। अनाहत चक्र के ऊपर कंठ देश में धूम्र वर्ण षोडश दल वाले विशुद्ध नामक कमल के दलों पर ''अ'' बीज के समान शुक्ल वर्ण नभोमण्डल है।

हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि इड़ा-पिंगला के बीच में शून्य अर्थात् आकाश माना जाता है, उसी शून्य रूप आकाश में खेचरी का स्थित होना निश्चित है। इड़ा-पिंगला के मध्य में जो आश्रय रहित अंतर है, वहां आकाशों का समुदाय रूप चक्र विद्यमान रहता है, क्योंकि भौंहों के बीच में सभी आकाश मिलते हैं। उसी आकाश में ठीक प्रकार से स्थित होना ही खेचरी मुद्रा है (खेचरी मुद्रा के विषय में हम मुद्राओं के अंतर्गत बता चुके हैं)।

विशुद्ध चक्र का तत्त्व आकाश है। शरीर रचना में प्रमुख तत्त्व आकाश है। चार तत्त्व शरीर का निर्माण करने, पांचवां आकाश तत्त्व शरीर को निर्मल, शुद्ध एवं दीर्घजीवी बनाने के लिए है। आकाश तत्त्व शून्य है। आकाश अणुविहीन तत्त्व है। मनुष्य के जीवनीशक्ति के लिए आकाश तत्त्व, जिसका संबंध उपवास से है, की विशेष आवश्यकता है। ब्रह्म सुख स्वरूप है, ब्रह्म आकाश स्वरूप है। शिव स्वरोदय में कहा गया है कि, ''हं बीज से अत्यंत उज्ज्वल, निराकार, आकाश तत्त्व के ध्यान से त्रिकाल का ज्ञान होता है और अणिमादि अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं।''

विशुद्ध चक्र का स्थान, अधिपति देवता, देवता की शक्ति, यंत्र, कमलदल पर अक्षरों का न्यास आदि निम्नलिखित हैं—

- **यौगिक नाम—** विशुद्ध योग चक्र
  (इसके विशुद्ध नाम रखने का कारण यह बतलाया गया है कि इस स्थान पर मन की स्थिति होने से मन आकाश के समान विशुद्ध हो जाता है। यह परम शक्तिशाली योग का विशुद्ध चक्र अनन्त शक्तियों से परिपूर्ण है।)
- **स्थान—** कंठ
- **यंत्राकृति—** निराकार
  (पूर्ण चंद्र के समान गोलाकार आकाशमंडल)
- **यंत्र वर्ण—** चित्र विचित्र (धूम्र)
- **बीज मंत्र—** हं
- **बीज वर्ण—** सुवर्णिम

देवता : सदाशिव

शक्ति : शाकिनी
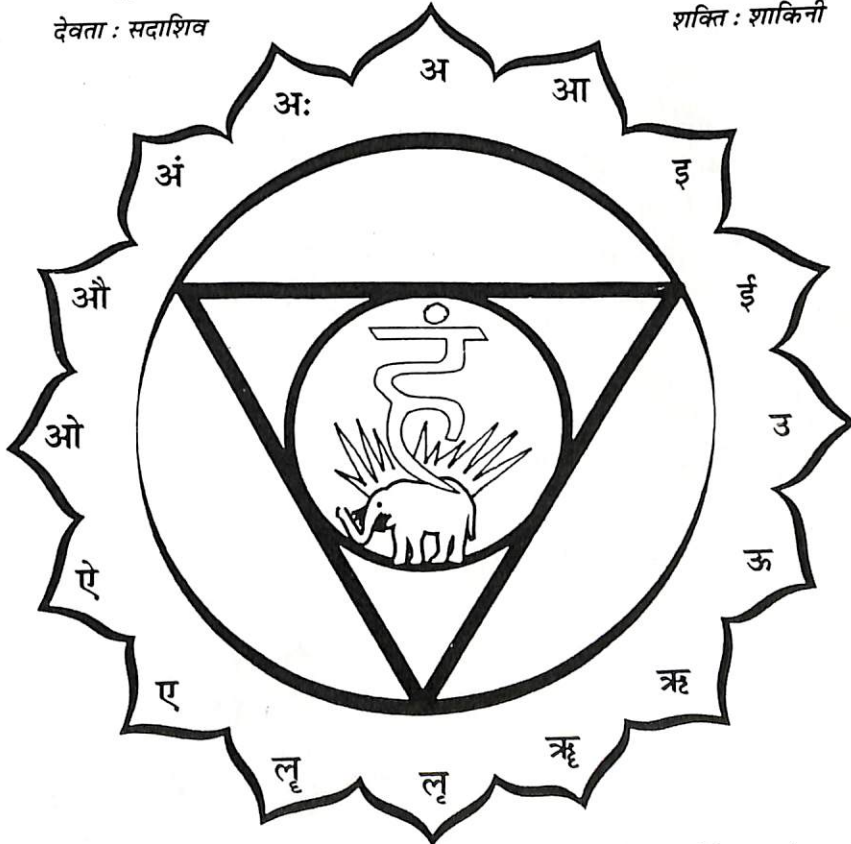
इससे पूर्व मूलाधार चक्र में भी बीजमंत्र के वाहन रूप में हाथी था। वहां वह दिशाहीन था लेकिन यहां उसकी पीठ पर प्रकाशपुंज विराजमान है। पौरुष और विवेक का समन्वय है यह। इसे बुद्धि और भाव का समन्वय भी कह सकते हैं। इस स्तर पर जीने वाले में बुद्धि और कल्पना दोनों क्षेत्रों में एक समान उड़ान की संभावना होती है

- **दलों के अक्षर—** अं आं इं ईं उं ऊं ऋं लृं लॄं एं ऐं ओं ओं अं अं:
- **वाहन—** हस्ति
- **चक्र गुण—** शब्द/ उपदेश वक्ता
- **तत्त्व—** आकाश
- **तत्त्वरूप—** निराकार
- **गुण—** वर्ण
- **ज्ञानेन्द्रिय—** कर्ण
- **कर्मेन्द्रिय—** वाक्
- **वायु—** प्राण
- **लोक—** जन:
- **ग्रह—** शुक्र
- **देव—** पंचवक्त्र

  (गगनमण्डल में सफेद रंग के हाथी के ऊपर विराजमान, शुक्लांबरधारी, पाश, अभय, अंकुश और वर धारण किए हुए चार भुजाओं में सुशोभित नभो बीज ''हं'' है। इस आकाश बीज के अंक में शार्दूल चर्म धारण करने वाले पंच मुख त्रिनेत्र अर्द्ध नारीश्वर भगवान शिव विराजमान हैं। नभो बीज से नभ की भी उपस्थिति प्रतीत होती है। अर्द्ध नारीश्वर, स्त्री-पुरुष की संयुक्त शक्ति का प्रतीक है। पुरुष के दाहिनी ओर पुरुष शक्ति तथा बायीं ओर नारी शक्ति विद्यमान रहती है।)
- **देव शक्ति—** शाकिनी

  (विशुद्ध पद्म-कर्णिका में शुक्लवर्णा, शर, चाप, पाश और अंकुश इन चार आयुधों को अपने चार करों में धारण करती हुई पीत वस्त्र परिवेष्टित शाकिनी शक्ति है।)
- **शक्ति के वर्ण—** औ, र, स
- **कमलदल—** षोडश
- **दल वर्ण—** धूम्र
- **अनुभूति/ स्वाद—** कटु (करेला जैसा कड़वा)
- **प्रहरी देवता—** ईशान रुद्र, प्राणशक्ति
- **मंत्र—** ओम् ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा
- **मंत्र संख्या—** एक हजार
- **मंत्र देवता—** मातंगी/ सरस्वती (संबंधित उपासना मंत्र)
- **चक्र की प्रवृत्तियां—** संत
- **ध्यान सिद्धि—** प्रसन्नचित्त, त्रिकालदर्शी, चिरंजीवी, महाज्ञानी, शांत चित्त, आरोग्य, शोकरहित, दीर्घायु, कवित्व शक्ति।

नोट—चक्रस्थान पर देवता सदाशिव अपनी शक्ति चतुर्भुजा शाकिनी के साथ हैं। यह ''जन:'' लोक है।

❑❑
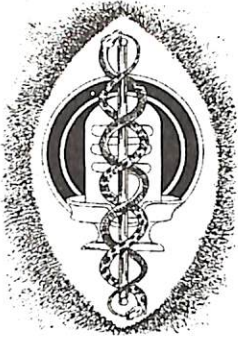
निःश्वास : तेरह

आज्ञा चक्र

आज्ञा चक्र दोनों भ्रुवों (भौंहों) के मध्य भृकुटि के भीतर स्थित है। यह ''शिवनेत्र'' या ''दिव्य दृष्टि का नेत्र'' भी कहा जाता है। इस पर ध्यान लगाने से योगी सर्वज्ञ हो जाता है। उसे सब शास्त्रों का ज्ञान होता है और वह ब्रह्म साक्षात्कार का अनुभव करता है। इससे व्यक्ति सब प्रकार के अज्ञान से छूटकर ''ओम्'' में स्थित हो जाता है और परमानंद को प्राप्त करता है। योग शास्त्रों में वर्णित है कि आज्ञा चक्र में ध्यान करने वाला साधक पर-काया प्रवेशकारी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, मनसा, वाचा और कर्मणा-परोपकारी, अद्वैत-आचार वाला, परम सिद्धि-संपन्न, दीर्घायु तथा तीनों लोकों का उत्पादक, पालक और संहारक होता है। आज्ञा चक्र स्थित प्रणव के ध्यान में मन लगाने पर (चित्त स्थिर करने वाली योनि मुद्रा अथवा खेचरी मुद्रा द्वारा निरंतर प्रणव का ध्यान करने से) साधक अग्नि की चिनगारियों के दर्शन करता है और पुनः अभ्यास की दृढ़ता से पद्म के मध्य में स्थित त्रिकोण और अनन्तर प्रणव की रचना करने वाले अक्षरों को भी देखता है।

सहस्र दल कमल में जिस प्रकार अग्नि, चंद्रमा और सूर्यमण्डल में परम शिव निवास करते हैं, एवमेव आज्ञा चक्र की कर्णिका के मध्य में स्थित अग्नि, चंद्रमा और सूर्यमण्डल में शिव का साक्षात्कार होता है। यहीं वे सर्वप्रपंचों से सृष्टि, स्थिति और संहार कार्यों को अपने ऐश्वर्य से निपटाते रहते हैं। ये परम शिव की अव्यय साक्षी और द्रष्टा हैं। इस बारे में यह बात ध्यान देने की है कि सृष्टि, स्थिति और संहार कार्य कारिणी केवल शक्ति ही है। परम शिव अपने से अभिन्न शक्ति द्वारा किए गए प्रपंच, सृष्टि आदि को कुटस्थ रूप-से देखते भर रहते हैं।

योगाभ्यास से चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर साधक शिव शक्तिमय, शांत सुधि-बुधि से प्रकाश महानाद को देखता है; उसी समय सर्वदा के लिए उसे वाक्-सिद्धि प्राप्त हो जाती है। आज्ञा चक्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, अतः इस चक्र को तन्मयता और गंभीरता के साथ समझना आवश्यक है, क्योंकि इसी स्थान से आज्ञा का प्रसारण होता है, जिससे सृष्टि-लयात्मक विश्व का संचालन होता है। आज्ञा चक्र को गुरु चक्र भी कहा जाता है, क्योंकि वही मार्गदर्शक है शक्ति प्रवाह का, ज्योति का उद्गम स्थल है। संतुलन, अंतर्दृष्टि, दिव्य-दर्शन की क्षमता इसी चक्र में सन्निहित है।

चक्रवेधन एवं कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया स्वरूप, निहितार्थ तथा उपयोग की विधि को जानने-समझने की शक्ति इस चक्र के जाग्रत होने पर ही प्राप्त होती है। जिसका आज्ञा चक्र जग गया, जिसे दिव्य दृष्टि मिल गयी, उसका साधनापथ आलोकित हो जाता है और लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। उस साधना पथ पर चलते हुए साधक सुगमता से लक्ष्य को पा लेता है। जैसा कि हमने पहले बताया, आज्ञा चक्र मनुष्य मस्तिष्क की दोनों भौंहों के मध्य में अवस्थित है। भृकुटि के नीचे अस्थियों का जो आवरण है, उसके भीतर एक बेर की गुठली जैसी ग्रंथि होती है, वही आज्ञा चक्र संस्थान है। इसके जागरण के लिए साधक कुशासन अथवा कम्बल बिछाकर मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए पद्मासन या सुखासन में पालथी मारकर ध्यान मुद्रा में बैठता है। शरीर पर न्यूनतम वस्त्र ही रखे जाते हैं। प्रारंभिक अभ्यास के लिए सूर्य का त्राटक आवश्यक हो जाता है। अतः अरुणोदय के समय कोई ऐसा स्थान निश्चित करना

पड़ता है, जहां मकानों, वृक्षों आदि की आड़ न हो और ऊपर उभरता सूर्य स्पष्ट दिखाई दे सके। इस प्रकार स्थान चयन के बाद साधक ध्यानावस्था में सुदूर अंतरिक्ष में उदित प्रभात कालीन स्वर्णिम सूर्य को देखता है।

सर्वप्रथम खुली आंखों से एक-दो सेकंड सूर्य को देखकर आंखें बंद कर लेनी चाहिए। तीस सेकंड आंखें बंद रखने के बाद फिर पूर्ववत् क्रिया करें और यह क्रिया उस समय तक चलती रहनी चाहिए, जब तक कि सूर्य की स्वर्णिम आभा समाप्त न हो जाए। यहां यह बात ध्यान में रखने वाली है कि एक-दो सेकंड से अधिक सूर्य की तरफ देखने का प्रयास न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से आंखों को हानि पहुंच सकती है।

बीस दिनों तक नित्य प्रात:कालीन सूर्य त्राटक का अभ्यास करना चाहिए। इसके उपरान्त अभ्यास-सिद्धि, कल्पना और आस्था पुष्ट भावना के सम्मिश्रण से ध्यान को आगे बढ़ाया जाता है। उपासना अवधि में साधक को गायत्री महामंत्र के जप के साथ ही अपने आज्ञा चक्र संस्थान में ध्यान लगाना चाहिए तथा ध्यान के समय यह प्रगाढ़ भावना करनी चाहिए कि ईश्वरीय दिव्य प्रकाश की प्रेरणापूर्ण किरणें जो मेरे ऊपर बरस रही हैं, उनसे मेरा संपूर्ण स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर जगमग हो गया है। आज्ञा चक्र स्थित आत्मज्योति जाग्रत हो गई है और वहां से ऐसी प्रचंड किरणें निकल रही हैं जो विचारों, भावनाओं, मर्म-वेधन में समर्थ हैं तथा अंतर्निहित दिव्य दृष्टि को प्रखर बना रही हैं।

इस समय में साधक को स्वयं अपने भीतर के कषाय-कल्मष, दोष, दुर्गुण भी स्पष्ट दिखते हैं तथा उन्हें दूर कर फेंकने के, समाप्त कर देने की प्रक्रिया भी सामने स्पष्ट हो जाती है। साथ ही आंतरिक उत्कृष्टताओं, प्रसुप्त क्षमताओं को उभारने का मार्ग भी पूर्णत: प्रकाशित हो उठता है।

जितनी गहरी श्रद्धा-भावना के साथ अंत:क्षेत्र को दिव्य बनाने वाली यह साधना की जाएगी, आज्ञा चक्र के जागरण का उद्देश्य उतनी ही मात्रा में पूरा होता जाएगा। आज्ञा चक्र के जागरण की यह साधना नियमित रूप-से लंबे समय तक करने पर साधक के भीतर की उत्कृष्टताएं उभरती चली जाती हैं। दिव्य दर्शन की शक्ति दिव्य दृष्टि भी प्राप्त कर लेती है तथा भूगर्भ में या सृष्टि के अंतराल में छिपी दूरवर्ती वस्तुओं का ज्ञान आज्ञा चक्र से निकलने वाली अद्‌भुत सूक्ष्म किरणों द्वारा सहज ही हो जाता है।

योगियों ने आज्ञा चक्र को बड़े जटिल प्रकार का चक्र माना है। इसे जाग्रत करना भी सरल बात नहीं है। इस चक्र पर प्राणों को ले जाने अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति को इस चक्र पर ले जाने से वहां प्राणों को आज्ञा चक्र में स्थित कर देने से दिव्य दृष्टि प्राप्त की जा सकती है। कुण्डलिनी के इस स्थान पर पहुंचने से इस चक्र की शक्ति अनंत गुणा हो जाती है।

आज्ञा चक्र का स्थान, अधिपति देवता, देवता की शक्ति, यंत्र, कमलदल पर अक्षरों का न्यास आदि निम्नलिखित हैं—

- **यौगिक नाम—** आज्ञा योग चक्र
(तालु और कंठ से भौंहों के मध्य में चंद्र के समान शुक्लवर्ण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चक्र ही आज्ञा चक्र है।)
- **स्थान—** भ्रूमध्य
- **यंत्राकृति—** ज्योतिर्मय लिंग
(श्वेत प्रकाश वाली दो कमल पंखुड़ियों के समान)
- **यंत्र वर्ण—** श्वेत
- **बीज मंत्र—** ऊं
- **बीज वर्ण—** तेजोमय
- **दलों के अक्षर—** हं क्षं
- **वाहन—** नाद
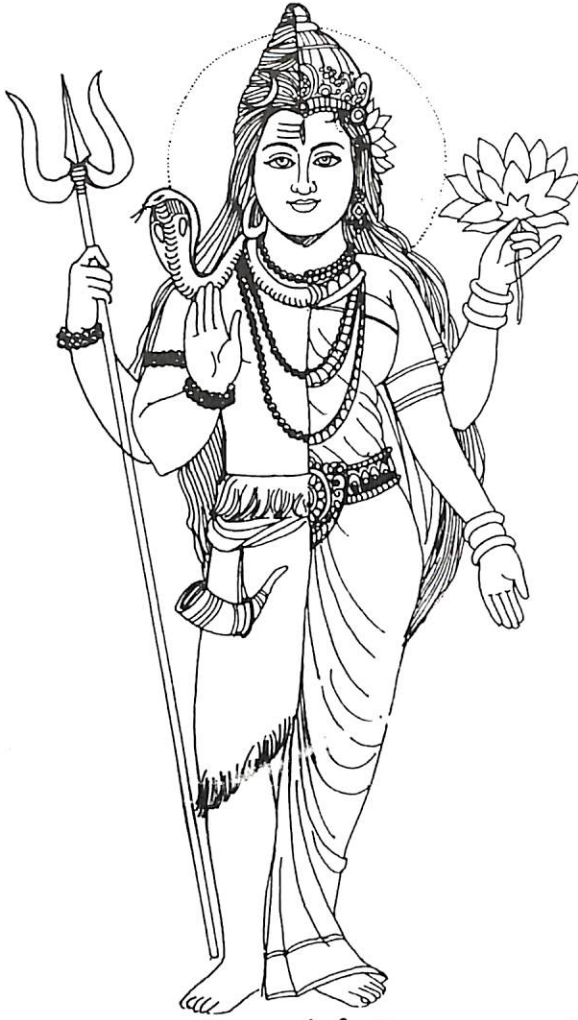
शक्ति : हाकिनी

देवता : अर्धनारीश्वर
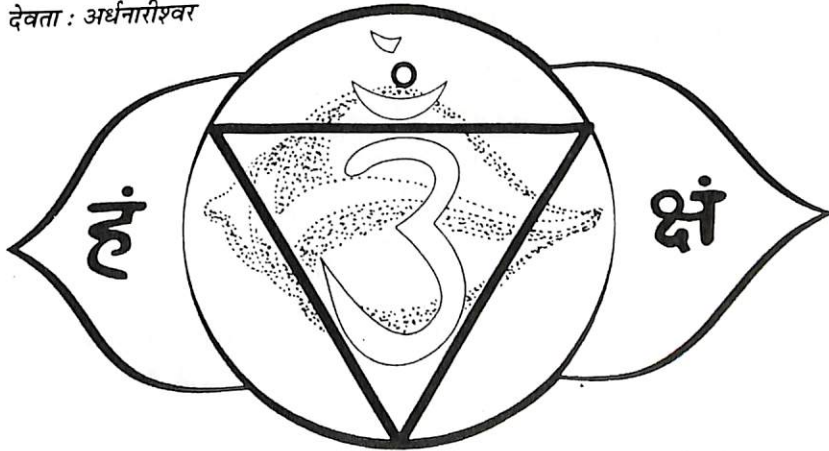
ऋषियों ने अमूर्त को अभिव्यक्ति देने के लिए पहले मूर्त स्वरूपों, प्रतीकों को चुना, लेकिन मूर्त की अभिव्यक्ति की एक सीमा है, उसके पार सिर्फ संकेत ही दिए जा सकते हैं। ॐ संकेत है परमतत्त्व का। ऋषियों ने प्रणव का साधन और साध्य दोनों ही रूपों में उल्लेख किया है। ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, प्रणवः सर्ववेदेषु

- **चक्र गुण—** सिद्धि/आज्ञा देना
- **तत्त्व—** महत्त्व
- **तत्त्वरूप—** तेजोमय
- **गुण—** बुद्धि
- **ज्ञानेन्द्रिय—** तालु मूल
- **कर्मेन्द्रिय—** अमृत पान
- **वायु—** उदान
- **लोक—** तप:
- **ग्रह—** सूर्य/ चंद्र (समस्त लोक)
- **देव—** लिंग (अर्धनारीश्वर)
- **देव शक्ति—** हाकिनी

  (आज्ञा चक्र की कर्णिका में चंद्र समान श्वेतवर्णा हाकिनी शक्ति है। इसके छह हाथ हैं तथा हाथों में क्रमश: विद्या, वर, अभय, कपाल, डमरू और जप माला है। आज्ञा चक्र की कर्णिका में इन्द्रियों से परे सूक्ष्म रूप मन का निवास है। कर्णिका के भीतर एक त्रिकोण में शुद्ध स्फटिक के समान ''इतर'' नाम का शिवलिंग है, जिसके ऊर्ध्व भाग में विद्युत समान चमकदार शक्ति त्रिकोण है। इस त्रिकोण में योगी चित्त को स्थिर कर, ब्रह्म नाड़ी का ज्ञान कराने वाले वेदों के आदि बीज प्रणव ''ओम्'' का चिंतन करता है। यद्यपि यहां चित्रिणी नाड़ी में प्रणव की स्थिति मानी है, तथापि आज्ञा चक्र में स्थित प्रणव से चित्रिणी नाड़ी के भीतर स्थित ब्रह्म नाड़ी से प्रणव संयुक्त है)
- **शक्ति के वर्ण—** अं, द
- **कमलदल—** द्वि
- **दल वर्ण—** श्वेत
- **मुद्रा—** मुष्ठि (लिंग)
- **अनुभूति/ स्वाद—** मिश्रित
- **प्रहरी देवता—** पंचवक्त्र शिव (ज्ञान शक्ति)
- **मंत्र—** ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे
- **मंत्र संख्या—** एक हजार
- **मंत्र देवता—** नृसिंह
- **चक्र की प्रवृत्तियां—** सम्राट
- **ध्यान सिद्धि—** प्रत्येक कार्य में समर्थ सिद्ध पुरुष। अन्य चक्रों पर ध्यान से जो फल प्राप्त होते हैं वे केवल इस चक्र पर ध्यान करने से प्राप्त हो जाते हैं। यहां जब प्राण और मन स्थिर हो जाते हैं तो संप्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

नोट—तंत्र में इसे आध्यात्मिक त्रिवेणी तीर्थराज कहा है, जिसमें स्नान (ध्यान) करने से संपूर्ण पापों से साधक मुक्त हो जाता है। षट्चक्रों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चक्र है। ध्यान के लिए यह सर्वोत्तम चक्र है। यह तप: लोक है।

❑❑
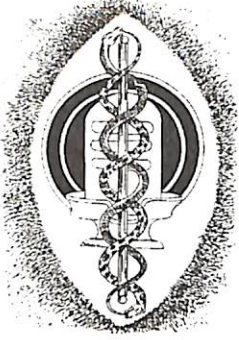
निःश्वास : चौदह

सहस्त्रार चक्र

मस्तिष्क के ऊपरी भाग में सहस्त्रदल चक्र अवस्थित है, जो अत्यंत प्रकाशमय, सुंदर और अति तीव्रगति वाला, अनंत शक्ति से संपन्न, अत्यंत रहस्यमय योगचक्र माना जाता है। इस स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर सर्व-वृत्तियों के निरोध रूप असंप्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त होती है। महर्षियों के अनुसार आज्ञा चक्र के ऊपर ''मानस चक्र'' नाम का एक चक्र और भी अवस्थित है। यह चक्र विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं का आधार है। मानस चक्र के ऊपर भी ''सोम चक्र'' नामक चक्र की उपस्थिति मानी गई है। यह परार्थवादी भावों का निवास स्थान है। इस पर ध्यान केंद्रित करने से संकल्प का नियंत्रण प्राप्त होता है।

मानस चक्र के ऊपर सहस्त्रार चक्र स्थित है। इस पर ध्यान लगाने से योगी परम शिव से एक हो जाता है। उसके अज्ञान और मोह नष्ट हो जाते हैं। वह पाप और पुण्य से छूट जाता है। उसके संचित कर्म समाप्त हो जाते हैं और इस प्रकार वो देह-मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। मृत्यु पश्चात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता।
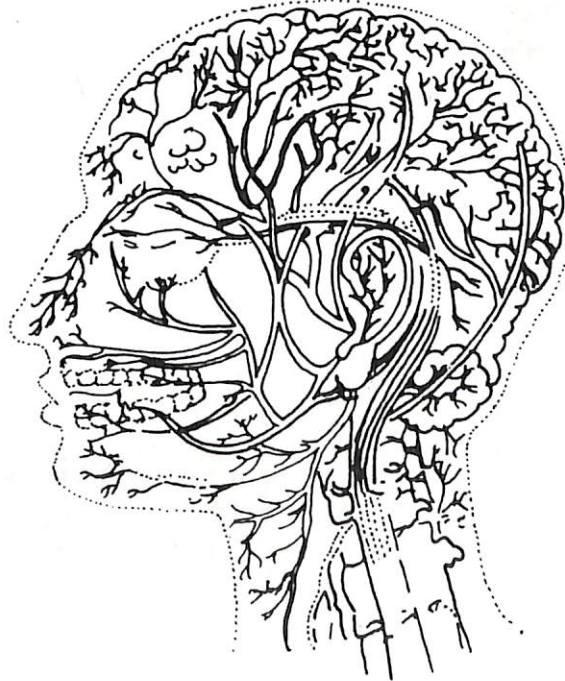
उपरोक्त समस्त चक्र चेतना के सूक्ष्म केंद्र हैं। वे अदृश्य हैं और इसलिए उन्हें भौतिक रूप-से नहीं देखा जा सकता। किन्तु वे योगियों का दिखलाई पड़ते हैं। वे प्राण-शक्ति की अभिव्यक्तियां हैं। ये ही प्राण-शक्तियां समस्त

विश्व में व्याप्त हैं। इस प्रकार भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार देह भौतिक विश्व के विभु में अणु के समान है। जो कुछ भौतिक विश्व में है, वो ही सूक्ष्म रूप में, देह में विद्यमान है। भौतिक विश्व पंचभूत से बना है। देह भी पंचभूत से बनी है। भौतिक विश्व में जो प्राण-शक्तियां काम कर रही हैं, वे चक्रों के माध्यम से मानव देह में बनी हैं। इन पर अधिकार करके मनुष्य विश्व शक्तियों पर भी अधिकार कर सकता है।

सहस्रार चक्र का स्थान, अधिपति देवता, देवता की शक्ति, यंत्र, कमलदलों पर अक्षरों का न्यास आदि निम्नलिखित हैं—

- **यौगिक नाम—** सहस्रार योग चक्र
  (नाना प्रकार के रंगों से युक्त चक्र ही सहस्रार चक्र है)
- **स्थान—** मस्तिष्क
- **यंत्राकृति—** शिव (परमशिव व उनकी शक्तियां)
- **यंत्र वर्ण—** अनंत (परम तेजोमय, सुवर्णिम)
- **बीज मंत्र—** विसर्ग
- **बीज वर्ण—** तेजोमय
- **दलों के अक्षर—** अं से क्षं तक
- **वाहन—** बिंदु
- **चक्र गुण—** प्रत्येक कार्य (समर्थ/ सर्व सिद्धि)
- **तत्त्व—** प्रत्येक तत्त्व
- **तत्त्वरूप—** प्रत्येक रूप
- **गुण—** चित्त
- **ज्ञानेन्द्रिय—** मस्तिष्क
- **कर्मेन्द्रिय—** समाधि ज्ञान
- **वायु—** उदान
- **लोक—** सत्य
- **ग्रह—** शनि
- **देव—** परब्रह्म
- **देव शक्ति—** महाशक्ति
- **शक्ति के वर्ण—** ह्रीं
- **कमलदल—** सहस्र
- **दल वर्ण—** श्वेत
- **मुद्रा—** योनि
- **अनुभूति/ स्वाद—** अवर्णनीय
- **प्रहरी देवता—** अर्द्ध नारीश्वर
- **मंत्र—** ह्रीं श्रीं हुं फट् (महामृत्युंजय)
- **मंत्र संख्या—** एक हजार
- **मंत्र देवता—** गायत्री/ महामृत्युंजय
  (संबंधित उपासना मंत्र)
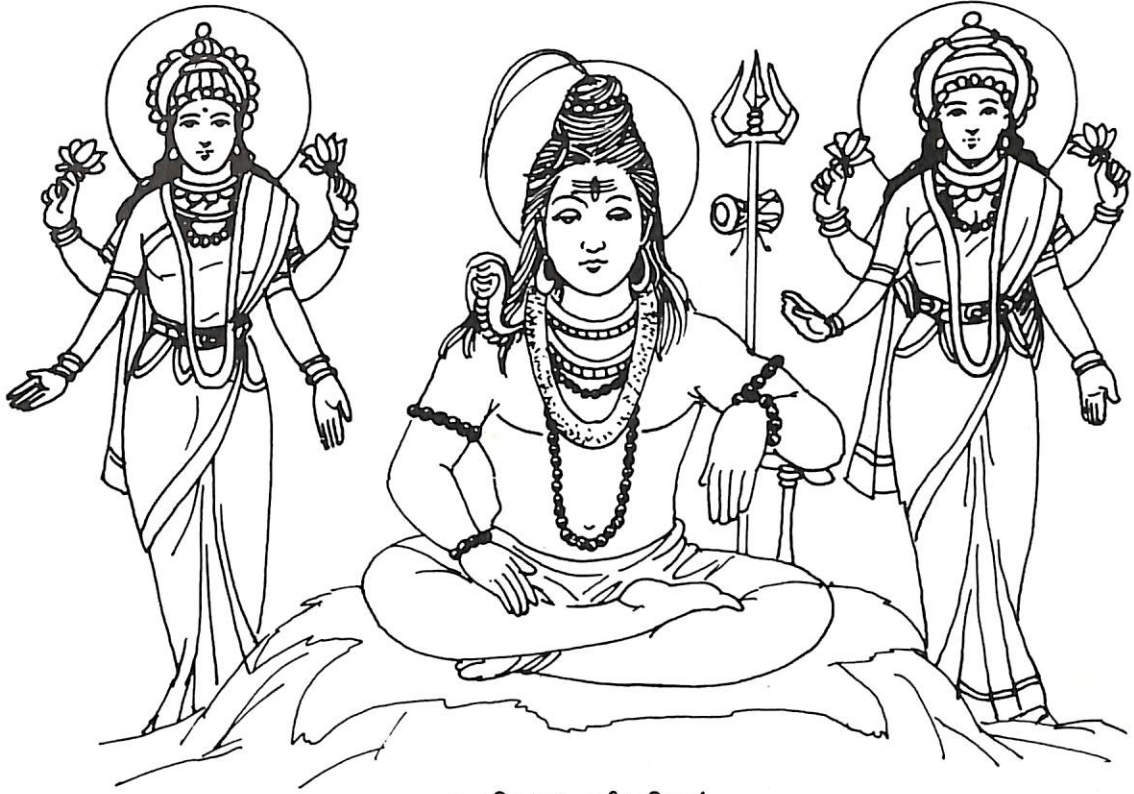
परमशिव व उनकी शक्तियां
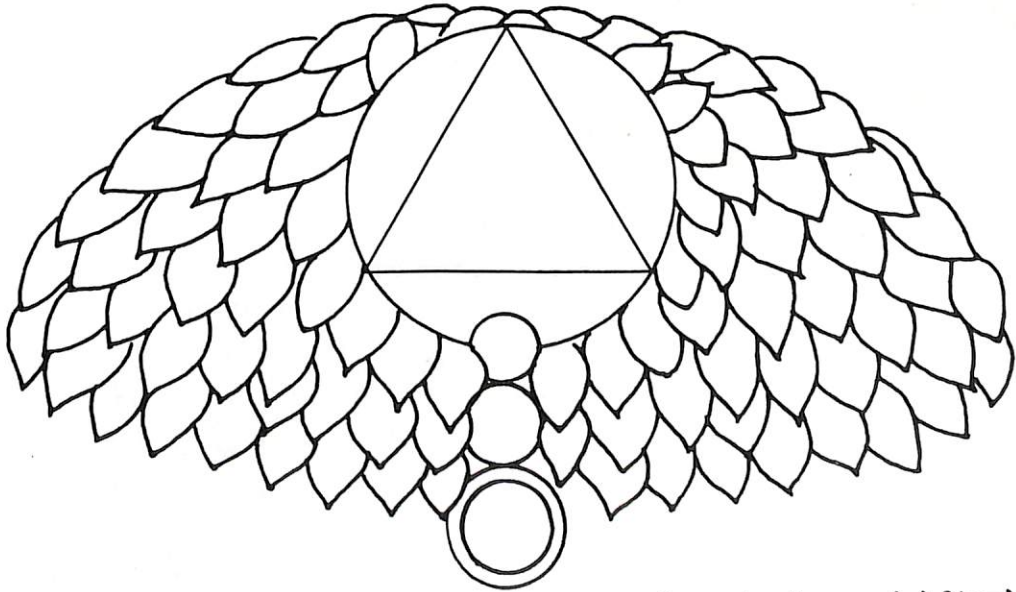
बिंदु प्रतीक है अनिर्वचनीय का। किसी शब्द या स्वर के साथ बिंदु की ध्वनि होती है, एक गूंज की तरह। अकेले बिंदु को सिर्फ देखा जा सकता है। सूक्ष्म और चरम अवस्था की अनुभूति है यह। ऐसी अनुभूति को ही ऋषियों ने 'देखना' कहा है।
'पश्यन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत्।' *ऋषियों को मंत्रद्रष्टा इन्हीं अर्थों में कहा गया है।*

❑ **ध्यान की प्रवृत्तियां—** योगिराज

❑ **ध्यान सिद्धि—** आकाशगामी, समाधियुक्त, अनंत सिद्धियां, मोक्ष-प्राप्ति, अनंत लोक ज्ञान आदि। सहस्रार (सहस्रदल) चक्र को सत्यम् लोक कहा है। यह कैलास है जहां शिव विराजमान हैं। कुण्डलिनी शक्ति चक्र भेदन कर यहीं शिव से मिलती है, तब असंप्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

विशेष—तंत्र और योग परस्पर मिले हैं। ये प्रयोगात्मक वैज्ञानिक विषय है। जितनी शक्तियां ब्रह्मांड का एक अंश है। अंश में अंशी के गुण होना चाहिए। जिस प्रकार विज्ञान की प्रयोगशाला में प्रयोग करके परिणाम प्राप्त किए जाते हैं, वैसे ही तंत्र और योग की प्रयोगशाला सद्‌गुरु के चरण हैं।

❑❑

निःश्वास : पंद्रह

कुण्डलिनी जागरण का चक्र भेदन क्रम

नियम, संयम, योग साधना, तपस्या, ध्यान, धारणा, प्राणायाम, आसन, प्रत्याहार आदि का आश्रय लेकर साधक अपने प्राणों को मेरुदण्ड के सबसे निचले भाग सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कराने का दृढ़ संकल्प करे अर्थात् ध्यान के द्वारा प्राण को सुषुम्ना द्वार पर ले जाए, तो ध्यान की ऊर्जा और प्राण-शक्ति के स्पंदन द्वारा सुषुम्ना महानाड़ी का मुख स्वतः ही खुल जाता है और प्राण उसमें प्रवेश कर जाता है।

इस क्षण साधक सावधान हो जाए, क्योंकि यह उसकी परीक्षा की घड़ी होती है। शरीर में विचित्र प्रकार के परिवर्तन होने लगते हैं। इन परिवर्तनों से साधक घबराए नहीं, बल्कि पूर्ण सावधानी एवं चैतन्यता के साथ दृढ़-इच्छाशक्ति से मूलबंध का प्रयोग आरंभ कर देना चाहिए और प्रबल धारणा के साथ सुषुम्ना द्वार पर स्थित उस परम जाग्रत अनन्त सूर्यों के प्रकाशयुक्त महाप्रकाश स्वरूपा कुण्डलिनी को अपनी अदम्य दृढ़ धारणा के द्वारा मूलाधार की ओर ले जाए। निश्चय ही साधक की संकल्पशक्ति उसे मूलाधार में प्रवेश करा देगी।

मूलाधार चक्र भूमितत्त्व का महत्त्वपूर्ण योगचक्र है। कुण्डलिनी शक्ति के सुषुम्ना के मुख में प्रवेश होने पर नाना प्रकार के अनुभव होते हैं। इस चक्र को जाग्रत करने के लिए गणेशजी की उपासना की जाती है, क्योंकि गणेशजी इस चक्र के प्रहरी हैं। हरेक कार्य को निर्विघ्न सम्पन्न करने के लिए सर्वप्रथम गणेशजी की ही वंदना की जाती है। मूलाधार में भगवान गणपति की सूंड पर ध्यान किया जाता है। पहले प्रातःकाल नित्य क्रिया से निवृत्त होकर साफ-सुथरे एकांत स्थान पर भगवान गणपति का सुंदर-सा चित्र लगाकर (अथवा कोई प्रतिमा रखकर), धूपादि देकर, पद्मासन लगाकर बैठ जाएं। दोनों हाथ अपने घुटनों पर रख लें। फिर मेरुदण्ड सीधा करके, नेत्र मूंदकर यह भावना करें कि हम भ्रूमध्य में देख रहे हैं; पुनः वहां से ध्यान हटाकर नासिका के अग्रभाग पर ले जाएं तो कुछ ही दिनों बाद गणपति की कृपा से कई प्रकार की गंध आने लगेंगी और सम्मोहन शक्ति बढ़ेगी। यह शक्ति कुण्डलिनी जाग्रत होने में सहायता करेगी।

विशेषतः कुण्डलिनी महाशक्ति शरीर के शुद्ध और सूक्ष्म होने पर सात्त्विक विचार, शुद्ध अंतःकरण, सच्ची ईश्वर-भक्ति और परिपक्व वैराग्य की अवस्था में एकाग्रता एवं निश्चल ध्यान से जाग्रत होती है। यदि किसी व्यक्ति में अकस्मात् अलौकिक शक्ति, अद्भुत चमत्कार तथा असाधारण ज्ञान का विकास देखने में आए, तो समझना चाहिए कि पूर्वजन्म के किन्हीं सात्त्विक संस्कारों के उदय होने अथवा हृदय पर सात्त्विक प्रभाव डालने वाली अन्य किसी घटना से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर सुषुम्ना के मुख में चली गई है।

सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड के भीतर कंद भाग से प्रारंभ होकर कपाल में स्थित सहस्रदल कमल तक जाती है। मूलाधार चक्र को कुण्डलिनी का सुषुप्ति स्थान कहा गया है। मनुष्य की पिण्ड देह में, स्थूल शरीर के विशेष-विशेष प्रत्यंगों से संबद्ध जो छह चक्राकार घूमने वाले शक्ति केंद्र हैं, मूलाधार उन्हीं षट्चक्रों में से एक है। इस चक्र के मध्य में सर्पाकार अग्नि (कुण्डलिनी) रहती है। जब तक इसे जगाया न जाए, यह वहां सोई रहती है।

कुण्डली शक्ति जब सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करती है, तब उसकी पहली टक्कर मूलाधार पर होती है। इससे उपास्थि या जननेन्द्रिय पर विशेष दबाव पड़ता है। अत: मूलबंध बड़ी सावधानी से लगाया जाना चाहिए। भृकुटि अथवा ब्रह्मरन्ध्र में प्राण वायु का प्रवाह कुण्डलिनी में खिंच जाता है और फिर उसका मुख सुषुम्ना में सरलता से प्रविष्ट हो जाता है। मूलबंध दृढ़ता से लगा रहना चाहिए, अन्यथा शुक्र अथवा मूत्र निकल सकता है।

मूलाधार चक्र और कुण्डलिनी का नेत्रों द्वारा दर्शन कर नासिका-पथ से वायु को खींचकर मूलाधार में चलाते हुए यह ध्यान करें कि वहां कुण्डलिनी के चारों ओर स्थित अग्नि प्रज्वलित हो रही है। इस अग्नि के उद्दीपन होने से कुण्डलिनी जाग्रत होगी।

उस समय ''हंस'' मंत्र का उच्चारण कर अश्विनी मुद्रा द्वारा गुह्य को संकुचित करे और कुम्भक द्वारा वायु को रोके। इससे कुण्डलिनी ऊर्ध्वगमनोन्मुखी होगी। तब साधक कुण्डलिनी का महातेजोमयी महाशक्ति के रूप में ध्यान करे। ऐसा करने पर कुण्डलिनी अपना एक मुख पूर्ववत् रखकर दूसरे मुख से मूलाधार स्थित ब्रह्मा और डाकिनी शक्ति तथा उस पद्म के चारों दलों पर स्थित ''वं शं षं सं'' इन चार कमलदल (मातृका वर्णों) और समस्त देवता एवं चारों वृत्तियों को ग्रस लेगी अर्थात् ये सब उस कुण्डलिनी शक्ति के शरीर में लय हो जाएंगे।

इसी प्रकार भूमिमण्डल भी लय प्राप्त कर उसके मुख पर ''लं'' बीज अवस्थान करेगा। उस समय मूलाधार पद्म अधोमुख, बंद होकर कुम्हला जाएगा। यहां यह उल्लेखनीय है कि ध्यान के समय सभी पद्म ऊर्ध्वमुख और विकसित हो जाते हैं। कुण्डलिनी चैतन्य होकर जब पद्म में पहुंचती है, तब वह पद्म विकसित हो उठता है।

अर्थात् उस दिव्य शक्ति कुण्डलिनी के पदार्पण होते ही वह पीत वर्ण वाली दिव्य प्रकाशमयी ज्योति से वह तुर्द कमल जगमगा उठता है और वहां निवास करने वाले गणपति और अन्य देवी-देवता अत्यंत प्रसन्न स्थिति में दृष्टिगोचर होने लगेंगे। इसी चक्र पर निरंतर ध्यान करने से यह चतुर्दल चक्र जो समस्त गंधों (सुगंधों) का स्वामी है, साधक के आसपास के समस्त वातावरण को सुरभित एवं सुगंधित कर देगा और कुछ ही क्षणों में साधक का संपूर्ण शरीर एक अलौकिक कांति को प्राप्त कर लेगा। इस चक्र (मूलाधार) की बहुत-सी भिन्न-भिन्न प्रकार की दिव्य शक्तियां होती हैं, जिनका विस्तार यहां देना संभव नहीं है।

मूलाधार चक्र के जाग्रत हो जाने के पश्चात् साधक को चाहिए, उस प्राण की देवी कुण्डलिनी शक्ति को संकल्प, ध्यान, मूलबंध एवं दृढ़ धारणा का आश्रय लेकर दूसरे योग चक्र जिसका नाम स्वाधिष्ठान चक्र में प्रवेश कराने का प्रयास करे।

मूलाधार चक्र के ऊपर पेड़ू के पास स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान है। इस चक्र में प्रवेश करते ही कुण्डलिनी शक्ति के प्रकाश से वह चक्र श्वेत वर्णीय चंद्र की शुभ चांदनी से भी कहीं अधिक शीतल, प्रकाशयुक्त स्वाधिष्ठान चक्र की शोभा दिखने लगेगी। तब स्वाधिष्ठान में विराजित विष्णु और राकिनी शक्ति, कमलदल स्थित मातृकाओं और वृत्तियों का ग्रास कर लेगी। इस स्थिति में साधक ''लं'' बीज मंत्र का जप, ध्यान करे और स्वाधिष्ठान योग चक्र की विभिन्न शक्तियों का दर्शन करके परम आनंद का अनुभव करे।

यही वो समय है जब भूमि (पृथ्वी) बीज ''वं'' में परिणत होता हुआ महाशक्ति कुण्डलिनी के मुख में अवस्थान करने लगता है। तब, कुण्डलिनी मणिपूर की ओर उठने लगती है। इस समय साधक अपनी प्राण शक्ति को अर्थात् महास्वरूपा विद्युत्माला कुण्डलिनी को अपनी अंतर्प्रेरणा और दृढ़ धारणा द्वारा नाभिस्थान स्थित अग्नि के मणिपूर चक्र पर ले जाने का प्रयत्न करे।

पूर्वोक्त ''वं'' बीज अग्निमंडल में लीन होकर अग्नि भी ''रं'' बीज में परिणत होती हुई कुण्डलिनी के मुख में अवस्थान करेगी। साधक का प्राण मणिपूर चक्र में पहुंचेगा और उसके पहुंचते ही नाभिचक्र पूर्णतया अपनी तेजोमय कांति को एवं परम प्रकाश को प्राप्त हो जाएगा और उसकी शक्तियां भी अग्नि के रक्त वर्ण रूप में परम

दिव्य प्रकाश से युक्त होने लगेंगी और साधक को रहस्यमयी शक्तिशाली कुण्डलिनी शक्ति के प्रभाव से उसके गुप्त-से-गुप्त रहस्यों का ज्ञान हो सकेगा। नाभिप्रदेश (मणिपूर चक्र) में निवास करने वाले देवी-देवताओं का दर्शन होगा।

इसके अनन्तर, जब पूर्वोक्त ''रं'' बीज वायुमंडल में लीन होकर वायु भी ''यं'' बीज में परिणत होकर कुण्डलिनी के मुख की ओर अवस्थान करेगी, साधक अपने प्राणों को अपनी विशुद्ध योग धारणा शक्ति के सहारे परम तेजोमय शक्ति को हृदय में स्थित अनाहत चक्र की ओर ले जाने का प्रयास करे। यदि उसे कोई कठिनाई प्रतीत हो तो क्रोध बीज मंत्र का ध्यान करना चाहिए। प्राण को ऊर्ध्वगति प्राप्त होगी और उसका प्रवेश अनाहत चक्र को जाग्रत कर देगा। परम प्रकाश से वह चक्र देदीप्यमान दृष्टिगोचर होगा। समस्त देवी-देवता और शक्तियां भी सामने आकर प्रकाशित हो उठेंगी। हृदय चक्र से एक प्रकृति का सबसे बड़ा नाद जिसे अनन्द नाद, अनाहत नाद या ब्रह्म नाद कहते हैं, उसका उठना आरंभ हो जाएगा। इस समय साधक परम आनंद को प्राप्त होगा तथा कुण्डलिनी के इस चक्र में पहुंचने पर निहाल हो जाएगा। एकबारगी उसे यों प्रतीत होगा जैसे अब कुछ भी पाना शेष नहीं रह गया है। कुण्डलिनी उस समय अपना मुख विशुद्ध चक्र की ओर उठाएगी।

हृदय स्थल पर स्थित अनाहत चक्र पर निरंतर संयम करने से निचले सभी चक्रों को नव-जीवन प्राप्त कराया जा सकता है। प्राचीनकाल में उच्चकोटि के तपस्वी, ऋषि, योगी, संत, महात्मा आदि अनाहत चक्र की विशिष्टताओं से अच्छी तरह परिचित थे तथा इसकी शक्ति के संबंध में विस्तृत जानकारी रखते थे। विश्वामित्र जैसे अनगिनत ऋषि, योगी, महात्मा जब कठोर तप में लगे होते थे, तब इन्द्र आदि देवताओं को यह चिंता हो जाती थी कि कहीं उसके सिंहासन को छीनने के लिए ही तो यह तपस्या नहीं की जा रही? इस बात से चिंतित होकर वो उर्वशी, अप्सरा, रंभा, मेनका आदि कितनी ही एक-से-एक सुंदर अप्सराओं को ऋषियों की तपस्या भंग करने के लिए भेज दिया करते थे। अप्सराएं जिसका तप भंग करने में सफल हो जाती थीं, उनका पतन हो जाता था, क्योंकि उनकी साधना भंग हो जाती थी। कुछ ऋषि ऐसे होते थे जिन पर उन अप्सराओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, किन्तु कुछ ऐसे भी होते थे जिनकी तपस्या तो भंग हो जाती थी, फिर भी वो अपनी पूर्व अवस्था को पहुंचने की शक्ति रखते थे। विश्वामित्र जैसे ऋषि की गणना ऐसे ही ऋषियों में की जाती थी। उनकी तपस्या, आत्मशक्ति, संकल्प शक्ति में किंचित् मात्र भी कोई कमी नहीं आती थी। ये ऋषि हृदय चक्र पर तत्क्षण पूर्ण संयम करके लुप्त हुई शक्ति को पुन: प्राप्त कर लेते थे।

यौगिक सिद्धांत है कि एक बार जिस योगी तपस्वी का ब्रह्मचर्य खंडित हो जाता है, तो उसी क्षण से हृदय चक्र से निचले तीनों चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपूर निस्तेज हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में साधक की सारी योग साधना, सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। जिसे श्रेष्ठ गुरु द्वारा मार्गदर्शन मिला होता है तथा गुरु-कृपा प्राप्त होती है, उसके लिए लुप्त हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करना दुष्कर नहीं होता। जिस साधक के साथ ऐसी कोई स्थिति पैदा हो गई हो, उसे चाहिए कि वो ''ॐ'' प्रणव का, तेजोमय प्रकाश के मध्य निरंतर ध्यान आरंभ कर दे। प्रतिदिन तीन घंटे तक पद्मासन में बैठकर साधना करने से कुछ ही दिनों में उसकी लोप हुई शक्ति पुन: लौट आएगी तथा उसे स्वयं भी यह ध्यान न रहेगा कि कभी उसका पतन भी हुआ था।

अनाहत चक्र की उत्तम साधना के उपरांत साधक को अपने संपूर्ण मनोयोग के साथ कण्ठ-स्थान में स्थित विशुद्ध चक्र में अपने प्राणों अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति को अदम्य उत्साह के साथ प्रवेश कराना चाहिए। जैसा कि हम बता चुके हैं कि विशुद्ध चक्र सोलह दलों वाला है। जिसका रंग नीला है ''हं'' जिसका बीज मंत्र है। इस चक्र में प्राणों के प्रवेश करते ही कुण्डलिनी की शक्ति से यह चक्र परम देदीप्यमान प्रकाश से प्रदीप्त हो उठता है और इस चक्र से संबंधित सोई हुई शक्तियां पूर्ण रूप-से जाग्रत हो जाती हैं।

यह चक्र पूरी तरह से घूमने लगता है और चक्र से संबंधित समस्त शक्तियां योगी के अंदर अपना कार्य करने लगती हैं। इस चक्र पर ध्यान करने से अनेक प्रकार के विकार दूर हो जाते हैं, शरीर में विभिन्न प्रकार की शक्तियां उत्पन्न होने लगती हैं तथा साधक को प्रकृति के अनन्त रहस्यों का ज्ञान होने लगता है।

विशुद्ध चक्र के पश्चात् साधक अपनी संकल्पशक्ति को विशेष रूप-से उत्साहित करके कुण्डलिनी महाशक्ति को प्राणों के साथ योग के छठे चक्र ''आज्ञा चक्र'' की ओर बढ़ने को प्रेरित करे। सतत साधना के अभ्यास से साधक की वह परा ऊर्जा शक्ति कुल कुण्डलिनी भ्रूमध्य में स्थित आज्ञा चक्र बड़े विचित्र ढंग से प्रवेश करती है।

कुण्डलिनी जैसे ही आज्ञा चक्र में प्रवेश करती है, वहां का समस्त वातावरण विद्युत तरंगों से झंकारित हो उठता है और विभिन्न रंगों की विचित्र प्रकाश किरणों के द्वारा संपूर्ण आज्ञाचक्र अर्थात् त्रिवेणी संगम का वह स्थान एक दिव्य ज्योतिर्मय प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है और यह प्रकाश ऐसा होता है जो कभी समाप्त नहीं होता।

साधक का ज्ञाननेत्र भी इसी स्थान पर स्थित है, जिसे तीसरा नेत्र कहते हैं। पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिकों के अनुसार सिक्स्थ सैंस (छठी हिंस) इसी स्थान पर है। जब साधक आज्ञा चक्र पर पूर्ण रूपेण संयम, साधना, ध्यान करता है तो इस चक्र से संबंधित अनंत, अद्‌भुत रहस्य सामने आने लगते हैं। यदि लगातार इस आज्ञा चक्र पर ध्यान लगाया जाए तो साधक का निश्चय ही अद्वितीय चमत्कारों से सामना होगा। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आज्ञा चक्र का यह स्थान भौतिक जगत के प्रयागराज में त्रिवेणी, गंगा, यमुना और सरस्वती संगम का पवित्र स्थान है। यौगिक दृष्टि से इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना—यह तीनों गंगा, यमुना और सरस्वती के रूप में आज्ञा चक्र नामक प्रयागराज के त्रिवेणी संगम पर स्थित हैं। यह चक्रस्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

दूसरा कोई भी योग चक्र अथवा योग ज्ञान इसकी समकक्षता नहीं कर सकता। इस स्थान की साधना में परिपक्वता आने पर साधक का ज्ञाननेत्र विकसित हो जाता है और उस ज्ञाननेत्र के द्वारा साधक को अनेक विद्याओं, शास्त्रों और लोक-परलोक के रहस्यों का ज्ञान सहज ही हो जाता है। भगवान शिव का अर्धनारीश्वर श्रीविग्रह का निवास इसी स्थान पर है।

योगीश्वर भगवान शिव (शंकर) के इस विचित्र और परम अद्‌भुत स्वरूप के संबंध में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसी आज्ञा चक्र की अनंत गहराइयों में साधक को उतरना पड़ेगा। अर्धनारीश्वर की उपासना के अनगिनत विधि-विधान हमारे आगम ग्रंथों में, विभिन्न योग ग्रंथों में एवं आध्यात्मिक साहित्य के अंदर बड़े सारगर्भित रूप में उपस्थित हैं। किन्तु आज साधनाविहीन विद्वज्जन केवल भाषा-ज्ञान और वाचिक-ज्ञान रखने के कारण ही इस ज्ञान-विज्ञान की गहनता और विचित्रता को पूर्णरूपेण समझने की योग्यता से वंचित हैं। यदि कोई व्यक्ति इस विषय से संबंधित उच्चकोटि के ग्रंथों का अध्ययन भी करता है, तो उसे इस रहस्यमय यौगिक, वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक रहस्य को समझने और अन्य साधकों को समझाने में देर नहीं लगेगी।

आज्ञा चक्र की साधना से (अथवा आज्ञा चक्र पर पहुंचकर) साधक का ज्ञाननेत्र उन्मीलित होता है तथा अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। इसी के साथ साधक को अनेक अलौकिक शक्तियों की भी प्राप्ति होती है। विद्वानों का मत है कि महाकुंभ के अवसर पर, त्रिवेणी संगम अर्थात् आज्ञा चक्र पर जो साधक अपने प्राणों को ले जाता है, उसे अर्धनारीश्वर के दिव्य दर्शन ही नहीं, उनका साक्षात्कार भी होता है।

कुण्डलिनी शक्ति के आज्ञा चक्र पर पहुंचने से योगी का शरीर वायुवत् सूक्ष्म हो जाता है। त्रिगुणमय ब्रह्माण्ड के किसी भी प्रदेश में विचरण करने के लिए योगी को मन और इन्द्रियों के साथ निकलने के सभी मार्ग यहीं भ्रूमध्य में प्राप्त होते हैं।

प्रभु श्रीराम के वियोग में तड़पते हुए श्री महाराज दशरथ ने सायुज्यादि मोक्ष को भी ठुकराकर षट्चक्र भेदन द्वारा स्वर्ग का मार्ग यहीं से लिया था। पौराणिक दक्ष-यज्ञ का विध्वंस सर्वथा योग-मूलक विषय है। सतीदेह-त्याग की प्रक्रिया भी द्रष्टव्य एवं विचारणीय है।
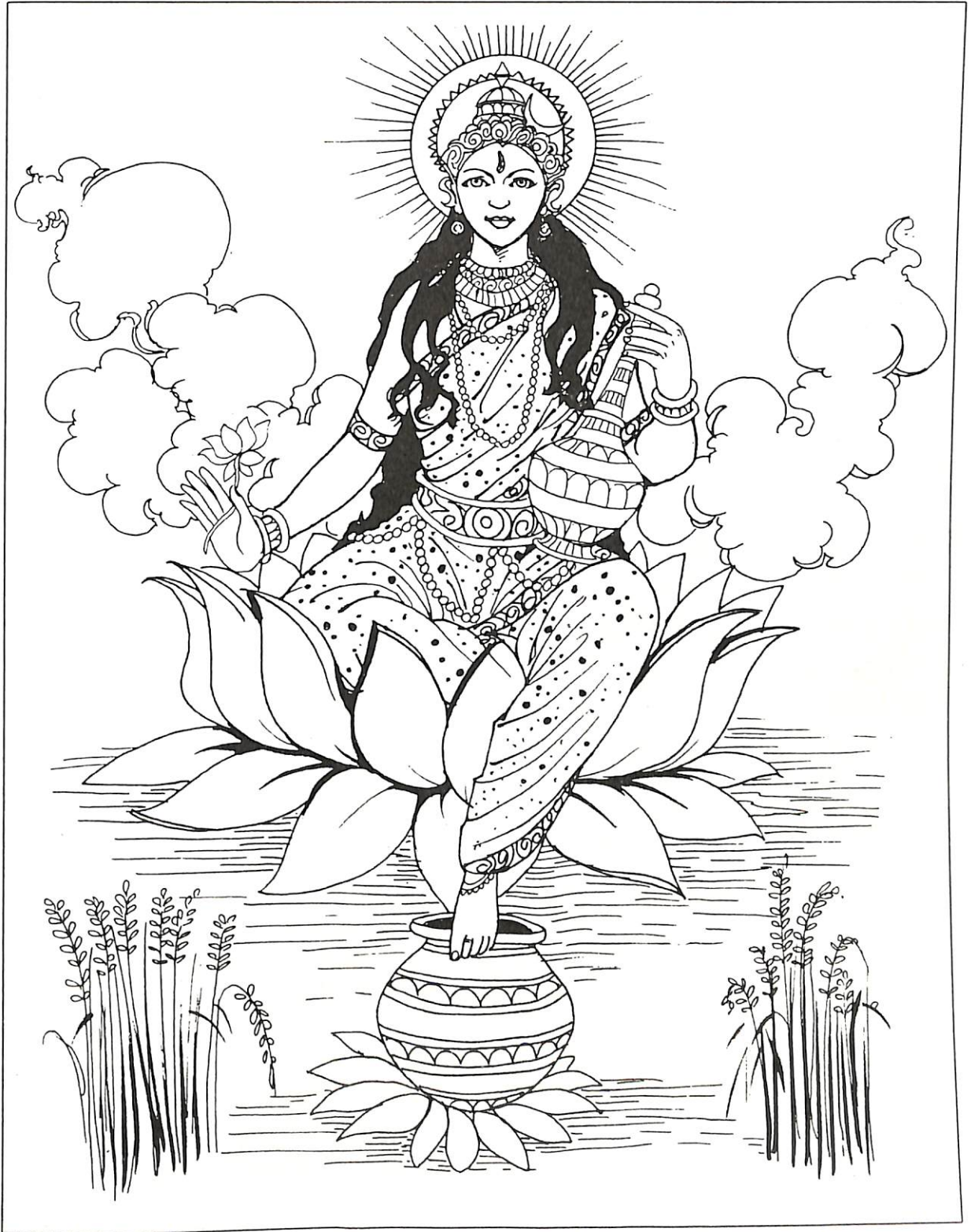
कुंडलिनी शक्तिरूपा मां ललिताम्बा

सती को योगाग्नि द्वारा भस्मीभूत होने पर भी मोक्ष क्यों नहीं मिला? इसका कारण है, यहां आज्ञा चक्र में पहुंचने पर कई मार्ग मिलते हैं। यहां त्रिपथ हैं, इसे सांकेतिक शब्दों में, जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, त्रिवेणी संगम कहते हैं। इसका एक नाम ''त्रिकूट'' भी है। कुछ विद्वान योगी इसे ''चित्रकूट'' भी कहते हैं। इस यौगिक चक्र में सती आज्ञा चक्र में तो पहुंचती है, किन्तु ब्रह्मरन्ध्र से न निकलकर मार्ग बदल लेती है। परिणामस्वरूप उसका हिमालय के घर पार्वती रूप में पुनर्जन्म हुआ। अब सतीदाह की प्रक्रिया भी देख लें। सती मौन होकर उत्तर दिशा में भूमि पर बैठ गई। उसने आचमन कर पीतांबर ओढ़ लिया और नेत्र मूंदकर योगमार्ग में स्थित हुई।

प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान को एकदम स्थिर करके उन्हें नाभि चक्र में स्थित किया। उदान वायु को नाभिचक्र से ऊपर उठाकर धीरे-धीरे बुद्धि के साथ हृदय (अनाहत चक्र) में स्थापित किया। पुनः सती उस हृदय स्थित वायु को कंठमार्ग अर्थात् विशुद्ध चक्र से भ्रूमध्य में ले गई। तत्पश्चात् शरीर त्याग की इच्छा से उसने अपने समस्त अंगों में वायु और अग्नि की धारणा की। तत्पश्चात् योगानल प्रज्वलित हुआ और उसका शरीर जल उठा।

गुरु की कृपा और आज्ञा से ही साधक इस चक्र में घुसपैठ कर सकता है, अन्यथा नहीं। यह गुरुगम्य चक्र (आज्ञा चक्र) है। यहीं वज्रकपाट लगे हैं और यहीं बैकुंठ का द्वार है। इस द्वार की कुंजी साधक को सिद्ध गुरु से ही प्राप्त हो सकती है। कैलासाख्य इस चक्र पर रोधिनी शक्ति एक दुर्गम दुर्ग की दीवार की भांति खड़ी है।

यहां सहस्रदल कमल है। इसके ऊपर एक बिंदु है। कुण्डलिनी को मूलाधार में एक जबरदस्त टक्कर लेने के बाद पुनः आज्ञा चक्र या द्विदल में पहुंचकर धुआंधार संघर्ष करना पड़ता है। ये ही दो जबरदस्त मोर्चे हैं। उभयंत्र किलेबंदी है। यहीं पहुंचकर पराशक्ति सदाशिव के साथ एकीभूत होती है। यही तदाकार अवस्था कहलाती है। शिवशक्ति शिवा का शिव के साथ यहीं पहुंचकर अभेद संबंध स्थापित होता है। यही अद्वैतावस्था है, यही जीव-ब्रह्म की एकता अथवा सायुज्य है।

योगमार्ग द्वारा परमात्मा में स्थित होना

सर्वप्रथम एड़ी से अपनी गुदा को अच्छी तरह दबाकर स्थिर हो जाएं और फिर बिना किसी घबराहट के प्राण-वायु को षट्चक्र भेदन की प्रक्रिया से ऊपर ले जाकर, नाभि-चक्र (मणिपूर) में स्थित वायु को हृदय चक्र (अनाहत) में, वहां से उदान वायु को धीरे-धीरे तालु-मूल (विशुद्ध चक्र का आगे का भाग) में चढ़ा दें।

इसके पश्चात् शाम्भवी मुद्रा से दोनों आंखों, दोनों कानों, दोनों नासाछिद्रों और मुख—इन सातों छिद्रों को रोककर तालु स्थित वायु को आज्ञा चक्र में ले जाएं। यदि किसी अन्य लोक-लोकान्तर में जाने की रुचि या इच्छा न हो, तो आधा घड़ी तक उस वायु को वहीं रोककर, स्थिर लक्ष्य के साथ सहस्रार में ले जाकर परमात्मा में स्थित हो जाएं।

सहस्रार चक्र (सहस्रदल चक्र) योग विद्या का सर्वोत्कृष्ट, अद्भुत एवं परम रहस्यमय योग चक्र है। इस चक्र के संबंध में आज तक अनगिनत ऐसी गुत्थियां हैं, जो पूरी तरह से सुलझ नहीं सकी हैं। यह चक्र मनुष्य की खोपड़ी में अर्थात् सिर में मस्तिष्क-स्थान के ऊपर स्थित है। पीछे चित्र द्वारा यह दर्शाया भी जा चुका है।

वास्तविक रूप में यह योग चक्र सूक्ष्म शरीर का बहुत बड़ा भाग है। जिस व्यक्ति में आज्ञा चक्र और सहस्रदल चक्र जितने अधिक विकसित होंगे, उतना ही अज्ञात, चमत्कारी एवं सूक्ष्म प्रभाव उसके अंदर विद्यमान होगा।

जिस साधक का आज्ञा चक्र में प्रवेश हो चुका है, वो अपनी परम सात्त्विक निष्ठा, प्रबल संकल्प के साथ कुण्डलिनी शक्ति को अदम्य उत्साह के साथ प्रणव मंत्र का, अर्थात् ब्रह्माक्षर, अनंत नाद का निरंतर दृढ़ धारणा के साथ, अपने दिव्य श्रवणों के द्वारा कुण्डलिनी को सहस्रदल में प्रवेश करा दें। दिव्य कुण्डलिनी शक्ति के परम प्रकाश से धीरे-धीरे सहस्रदल चक्र प्रकाशित होने लगेगा।

भारतीय ऋषि, महर्षि अपने आपमें बड़े अद्‌भुत और रहस्यमय व्यक्ति रहे हैं। उन्होनें संसार का सर्वतोन्मुखी आनंद लिया। संसार का ऐसा कौन-सा विषय अथवा प्रकृति का ऐसा कौन-सा रस था जिसके संबंध में उन ऋषि-महर्षियों को ज्ञान न था। वास्तव में वे महापुरुष तपस्वी होने के साथ-साथ रसायन विद्या के ज्ञाता भी थे। इस विद्या के बल पर उन्होंने अनेक सफलता, सिद्धि और शक्तियां प्राप्त कर ली थीं। इस विद्या का ज्ञान सर्वप्रथम भगवान दत्तात्रेय ने शिव कृपा से लोगों तक पहुंचाया था।

यह रसायन विद्या भगवदवतार, महायोगी, कालजयी, त्रिदेवरूप तथा परम सिद्ध श्री दत्तात्रेय द्वारा तंत्रशास्त्र के परमाचार्य ''लोक-शंकर'' भगवान शंकर से प्रार्थना करके विशेषत: कलियुग में सिद्ध (तंत्र विद्या) विधान के रूप में प्राप्त की। यह शास्त्र उत्कीलन आदि विधानों की अपेक्षा रखे बिना ही सर्वदोषों से रहित, शीघ्र सिद्धि देने वाला बतलाया गया है। भगवान शंकर ने अपने परम भक्त श्री दत्तात्रेय के लिए अत्यंत गुप्त होते हुए भी इसको प्रकट किया है।

समस्त चराचर के कल्याण की कामना से भगवती जगदम्बा के आग्रह से भगवान शिव ने रसायन शास्त्र की विद्या का उपदेश किया है। इसमें प्राणिमात्र के जीवन में आने वाली सभी प्रकार की कठिनाइयों का निवारण करने का विधान है। इसके साथ ही ऐसी कोई इच्छा शेष नहीं रहती, जो इस विद्या के द्वारा पूर्ण नहीं की जा सकती।

ऋषियों ने रसायन विद्या के द्वारा अनेक सिद्धियां और शक्तियां प्राप्त कर, असंख्य भक्तों के समक्ष उनका प्रदर्शन कर, विद्या की वास्तविकता का सबूत भी दिया। इसके साथ ही उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि इन सभी में योग ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

योगियों ने योगमार्ग में ऊंची-से-ऊंची स्थिति प्राप्त करने के लिए शरीर विज्ञान, रसायन विज्ञान, मुद्रा विज्ञान, भाषा विज्ञान, शब्द विज्ञान, आत्म विज्ञान एवं संगीत विज्ञान आदि का बहुत गहराई से मनन, अध्ययन किया। उन्होंने इन सातों विद्याओं का सहयोग लेकर शरीर में स्थित सातों चक्रों को जगाने में सफलता प्राप्त की।

सहस्रदल चक्र एक हजार पत्तों के कमल-पुष्प की भांति दृष्टिगोचर होता है। किन्तु विशेष रूप-से गिनने पर केवल नौ सौ साठ पत्ते ही दिखते हैं। इसके मध्य में द्वादश पत्तों वाला सुंदर एक लघु कमल है। उसमें स्फटिक मणि की भांति उज्ज्वल श्वेत रंग के अंतर्गत उस कमल कर्णिका में एक स्वर्णिम आकार का नेत्रों को सम्मोहित करने वाली शक्ति रखने वाला रंग दिखलाई पड़ता है। यह सहस्रदल चक्र योग की प्रथमावस्था में तो लघु आकार का होता है, किन्तु साधक की आत्मिक उन्नति, धारणा, ध्यान एवं समाधि की एकत्व स्थिति में साधना, उपासना के प्रभाव से यह चक्र जब तीव्र गति से घूमने लगता है, तो प्राय: एक फुट आकार का होकर ऊपर की ओर उत्थित हो जाता है। उस समय इसकी छटा देखने योग्य होती है।

किन्तु यह मानना चाहिए कि अभी तक यह सहस्रदल चक्र पूर्ण विकसित स्थिति में नहीं है। जब कुण्डलिनी शक्ति का दिव्य प्रकाश योग के इस सर्वोत्कृष्ट चक्र को अपने परम दिव्य उच्चकोटि के विद्युतीय, चुंबकीय प्रभाव से एवं शक्ति से तीव्र गति से घुमाने लगता है, तब इसकी गति अति वेगवती हो जाती है। उस समय इस योग चक्र के अनेकानेक सौंदर्यमय रंगों का सौंदर्य देखने योग्य होता है, साथ ही एक ऐसी मनमोहक अति उच्च स्तरीय सुगंध उत्पन्न होती है, जो समस्त वातावरण के साथ-साथ साधक की आत्मा, मन तथा संपूर्ण शरीर को सुगंधित कर देती है।

सहस्रार परम चक्र पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर सर्व-वृत्तियों के निरोध रूप असंप्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त होती है। सहस्रदल कमल (चक्र) के वास्तविक स्थान के बारे में हम एक बार फिर से बता देना चाहते हैं। आज्ञा चक्र के ऊपर महानाद है, उसके ऊपर शंखिनी नाड़ी है, उसके अग्रभाग में अर्थात् शून्याकार स्थान में तथा ब्रह्मरन्ध्र में स्थित प्रकृतिरूप विसर्ग के निम्न प्रदेश में प्रकाश स्वरूप पूर्ण चंद्रमा के समान अत्यंत श्वेत वर्ण अधोमुख

आनदं स्वरूप सहस्त्रदल कमल है। ''अ'' कार से ''क्ष'' कार पर्यन्त पचास मातृकाक्षरों से यह कमल विभूषित है। इसकी कर्णिका में स्निग्ध, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमंडल है, उसके भीतर विद्युत समान त्रिभुज है और त्रिभुज के मध्य में सब देवों से सेवित, अत्यंत गुप्त, शून्य रूप पर बिंदु है। मोक्ष का मुख्य मूल यह सूक्ष्म कंद ''अमा, कला'' और ''निर्वाण'' कला से युक्त है। सहस्त्रदल कमल के मध्य में स्थित चंद्रमण्डल के बीच में अंतर-आत्मा है, जिसका दूसरा नाम ''हंस'' है। ''हं'' पद से पुरुष का और ''स'' पद से प्रकृति का बोध होता है। अत: हंस पद से प्रकृति पुरुषात्मक अंतर-आत्मा का ज्ञान होता है। इसके ऊपर सर्वतंत्र प्रसिद्ध परब्रह्म स्वरूप से स्थित होने पर भी परमात्मारूप को छोड़े बिना परमानंद स्वरूप शिव-शक्ति से उत्पन्न आनंद रस को प्राप्त परम शिव श्रीगुरु रूप से योगियों के पुरुषार्थ-लाभ के लिए जीवात्मा और परमात्मा के अभेद ज्ञान का उपदेश देता है। यहां पर यह ध्यानपूर्वक समझाना चाहिए कि श्रीगुरु रूप पर शिव ही दीक्षा गुरु के रूप में धरा-धाम पर अवतीर्ण हैं।

सहस्त्रार चक्र में कमल स्थित भगवान शिव अपनी शक्ति के साथ

गुरुदेव के ध्यान के विषय में विद्वानों का मत है कि आज्ञा चक्र के ऊपर अधोमुख सहस्त्रदल कमल के नीचे ऊर्ध्व मुख द्वादश दल कमल है। उसके ऊपर सदाशिव रूप गुरु का ध्यान करें। पादुका पंचक स्तोत्र में भी ऐसा वर्णन

आया है, किन्तु शाक्तानंद तरंगिणी में दिया गया है कि श्रीगुरु रूप पर शिव की स्थिति सहस्त्रदल कमल में ही है और साधक को वहीं ध्यान ले जाकर कुण्डलिनी जाग्रत करनी चाहिए। इस विषय पर सबसे श्रेष्ठ निर्णय कुलार्णव तंत्र का है अर्थात् श्रीगुरु देव जैसा आदेश दें, उसी के अनुसार साधक को ध्यान करना चाहिए, उसी से सफलता मिलती है। इन सब बातों से पता चलता है कि गुरु का वचन ही श्रेष्ठ है और सफलता-प्राप्ति के लिए साधक को गुरु के आदेशानुसार ही ध्यान लगाना चाहिए।

गुरुजन को भी चाहिए कि वह अपने शिष्य को अपने पुत्र समान समझे तथा सहस्त्रदल चक्र को जाग्रत करने के लिए शिष्य का श्रेष्ठ मार्गदर्शन करे। उसे हर ऊंच-नीच से अवगत कराएं। प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने के लिए उसकी हिम्मत बधाएं तथा दिव्य रासायनिक औषधियों द्वारा उसके शरीर को परम शक्तिशाली बना दे, जिससे साधक—प्राण-अपान के मिलने से, कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत हो जाने से जो एक प्रकार का आण्विक विस्फोट-सा होता है अथवा उस विचित्र प्रकार के तीव्र मधुर संगीत से जो कानों के परदे हिला दे, घबरा न उठे और अपनी शारीरिक शक्ति से उनका मुकाबला करे।

जिस शब्द ब्रह्म की साधना के द्वारा महान ऊर्जा उत्पन्न होती है, जीवन और मृत्यु का अंतर समाप्त करने के लिए जिस स्थिति का सामना करना पड़ता है, सहस्त्रदल की पन्द्रहवीं-सोलहवीं कला के मध्य शरण लेते हुए अमृत-बिंदु का पान करने के लिए जितना कठिन परिश्रम एवं प्रयास साधक को करना होता है, उन सबका सामना करने के लिए; उस धमाके, विस्फोट, धक्के आदि को सहज करने के लिए, गुरु द्वारा साधक को पहले ही से तैयार कर देना चाहिए तथा दिव्य, विलक्षण शक्तियों का सामना करने की विद्या के ज्ञान से भी शिष्य को पहले से अवगत करा देना चाहिए। यही श्रेष्ठ गुरु का कर्तव्य है। ऐसी संपूर्ण सुविधाओं के मिलने पर साधक (शिष्य) कुण्डलिनी शक्ति के सोपान सहस्त्रदल चक्र पर सहज ही पहुंच जाएगा।

इस चक्र की शक्ति का परिचय साधक को पलक झपकते ही हो जाएगा। वैसे तो योग के सभी चक्रों के जाग्रत होने पर अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का योग चक्रों में प्रवेश हो जाने के अनंतर उन चक्रों में से तरह-तरह की शक्तियां, सिद्धियां एवं आनंद की लहरें प्रस्फुटित होने लगती हैं।

सात योग चक्रों में से सात प्रकार की शक्तियां प्रवाहित होती हैं, जैसे कि इन्द्रधनुष के सात रंग। यह सात रंग न होकर प्रकृति की सात शक्तियां हैं। किसी-किसी स्थान पर इन सात शक्तियों को नवशक्तियों का रूप दिया गया है। इस प्रकार सात के बजाय योग के नवचक्रों का विधान बना दिया गया। पीछे कहीं हम इसका जिक्र भी कर आए हैं अर्थात् ''मानस चक्र'' आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित है और मानस चक्र के ऊपर ''सोम चक्र'' स्थित है और इस चक्र के ऊपर सहस्त्रार चक्र है। यद्यपि योग में इन नवचक्रों की क्रम के अनुसार व्यवस्था की गई है, किन्तु संसार में सप्त शक्तियां ही प्रधान हैं। उनमें भी विशेषकर तीन शक्तियां ही प्रमुख मानी गई हैं, जिन्हें त्रिमूर्ति के नाम से जाना जाता है। इन त्रिमूर्तियों का निवास योग का अंतिम चक्र सहस्त्रार चक्र ही है, कुण्डलिनी शक्ति के यहां पहुंचने पर साधक का परम उद्देश्य पूर्ण हो जाता है, देव-शक्तियों से साक्षात्कार होता है; मोक्ष-प्राप्ति का यही सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस साधन को फलीभूत विरले ही कर पाते हैं। यदि श्रेष्ठ और विद्वान गुरु मिल जाए और वह अपने शिष्य का सही मार्गदर्शन करे, तो शिष्य की नैया पार लग ही जाती है।

❑❑

निःश्वास : सोलह

रहस्यात्मक शक्तियों का उदय

गुरु के महत्त्व के बारे में हम स्थान-स्थान पर चर्चा करते आए हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि, "गुरु बिन ज्ञान अधूरा", आध्यात्मिक साधना में तो गुरु का महत्त्व सर्वाधिक माना जाता है। विद्या अध्ययन करने के बारे में कहा गया है कि या तो धन का व्यय करके या विद्या के आदान-प्रदान से या फिर गुरु की सेवा करने से ही विद्या आती है, अन्य कोई मार्ग नहीं है। ऋषियों का मत तो यह है कि कुण्डलिनी जागरण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु-सेवा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इसलिए कहा गया है कि सुपठित गुरु के द्वारा ही शिष्य की शंकाओं का समाधान किया जा सकता है। योग के कठिन मार्ग में गुरु की पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है। श्वेताश्वर उपनिषद् के शब्दों में—

यस्य देवे भक्तिः, यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यै ते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अर्थात् जिसको ईश्वर में पराभक्ति हो और जैसी ईश्वर में हो वैसी ही गुरु में हो, उस महात्मा में ये सब कहे हुए अर्थ प्रकाशित हो जाते हैं, अर्थात् उसको ही इन सब रहस्यों का आप-से-आप ज्ञान हो जाता है।

गुरु की महिमा के विषय में एक प्रसिद्ध श्लोक कहा गया है कि गुरु ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर है। गुरु साक्षात् ब्रह्म है। शारदा तिलक तंत्र के अनुसार गुरु संसार सिंधु के पार जाने के लिए एकमात्र हेतु है। उसके पद-पकंज की धूल सब तीर्थों में श्रेष्ठ है। भगवद् गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है, "यदि पिछले जन्म के किसी योग भ्रष्ट व्यक्ति को सद्गुरु से कोई संकेत मिल जाए, तो वह योग में सिद्धि प्राप्त कर सकता है।"

साधना में गुरु के महत्त्व की इस परंपरा को कबीर, नानक, दादू, सुंदरदास, चरणदास, सहजो बाई, गरीब दास, रामसहाय, बजहन, रामलाल, दयाबाई, पलटू और न जाने कितने भक्त संतों तथा सूफियों ने अपनी रचनाओं में स्पष्ट किया है। पंतजलि के अनुसार यह जो योग का अभ्यास है, वह एक दिन में सिद्ध करने की वस्तु नहीं है। जब इसे दीर्घकाल तक निरंतर श्रद्धा और पूरे परिश्रम के साथ किया जाएगा, तभी इसमें दृढ़ स्थिति प्राप्त हो सकती है। जो लोग तीव्र संवेग वाले हैं अर्थात् जिनको योग में अत्यधिक उत्साह है, गुरु उनकी इच्छा को तीव्र बनाने का उपदेश दे। भारतीय साहित्य में कभी-कभी स्वयं अपनी आत्मा को, ईश्वर को अथवा श्रेष्ठ पुस्तक या किसी महान ग्रंथ को भी गुरु के रूप में मानकर उससे मार्गदर्शन प्राप्त करने का आदेश दिया गया है। जिसे योग्य गुरु का सान्निध्य प्राप्त न हुआ हो, वह इस पुस्तक को ही अपना गुरु मानकर ध्यान, साधना में लग जाए, हमारा विश्वास है, सफलता अवश्य मिलेगी।

जो साधक योग मार्ग पर बहुत आगे बढ़ चुका है और कुण्डलिनी जाग्रत करने में समर्थ है, यदि वह अदम्य शक्ति के साथ, क्रोध बीज मंत्र का बार-बार उच्चारण कर, कुण्डलिनी शक्ति को तनिक-सा भी छेड़ने का प्रयास करेगा, तो क्षणमात्र में ही मूलाधार के सन्निकट ब्रह्मग्रंथि में हलचल आरंभ हो जाएगी और कुण्डलिनी शक्ति अपने पूर्ण स्वरूप में व्यक्त होने के साथ जबरदस्त प्रकाशनाद युक्त विस्फोट-सा उत्पन्न होगा तथा उसके साथ ही शब्द

ब्रह्म का उदय हो जाएगा। प्रकृति का यही अनन्त नाद है। नाद के साथ-साथ एक परम प्रकाश उत्पन्न होता है। नाद का आरंभ होते ही कुण्डलिनी अपनी पूर्ण ऊर्जा शक्ति और प्रकाश के साथ उठ खड़ी होती है। योगशास्त्र के अनुसार यह महानाद निम्न तीन प्रकार का होता है—निरोधिनी, नादान्त, महानाद।

कुण्डलिनी शक्ति जिस प्रकाश के साथ महान ऊर्जा के लिए प्रगट होती है, उस प्रकाश का वास्तविक रूप महा बिंदु होता है। यह महा बिंदु भी निम्न तीन प्रकार होता है—क्रिया, ज्ञान, इच्छा।

इसी प्रकार इन तीनों को दूसरे रूप में भी कहा गया है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा सूर्य, चंद्रमा, अग्नि।

इस अनन्त ब्रह्माण्ड रूप सृष्टि में, नाद ही वास्तव में प्रणव है अर्थात् ॐ ओंकार भी उसी को कहते हैं। सत्य तो यह है, ओंकार ही पूर्णरूपेण शब्द ब्रह्म है। ब्रह्मस्वरूप इस प्रणव से ही बावन मातृकाएं, जिनके द्वारा साधक न्यास करते हैं, उत्पन्न हुई हैं।

इन संपूर्ण मातृकाओं को लोम-विलोम प्रकार से न्यास करने की मंत्रशास्त्र, तंत्रशास्त्र और आगम ग्रंथों में विशेष व्यवस्था दी हुई है। यह बावन मातृकाएं लोम-विलोम प्रकार से उच्चरित करने पर इनकी संख्या एक सौ तक पहुंच जाती है। साधक की कुण्डलिनी शक्ति इन मातृका रूप कुंडलों को धारण करने वाली चैतन्य शक्ति है, इसलिए ही उसे कुल कुण्डलिनी कहा गया है।

इस प्रकार समस्त मातृकाओं का न्यासादि सहित प्रयोग करने से वह परा कुण्डलिनी शक्ति प्रकाश और नाद के उत्पन्न होते ही, मूलबंध के दृढ़ प्रयोग से साधक की संकल्प शक्ति के द्वारा ऊर्ध्वमुखी होकर, मूलाधार आदि चक्रों की ओर बढ़ने लगती है। इसके साथ ही वह नाद अपने अंतिम लक्ष्य सहस्रदल कमल में पहुंचने के लिए निरंतर अंतर्मन में उठने लगता है और अपनी उस ऊर्ध्वगामिनी परम ऊर्जा के साथ सभी चक्रों को जाग्रत, प्रकाशित, झंकारित एवं शक्ति-सम्पन्न करता हुआ, उच्च शक्ति के साथ आगे बढ़ने लगता है, क्योंकि इन सभी मातृकाओं और ब्रह्मनाद का वास्तविक मूल स्थान सहस्रदल चक्र ही है। सहस्रदल चक्र में समस्त मातृकाएं भी निवास करती हैं।

योगशास्त्रानुसार शिव और शक्ति का निवास भी योग का सहस्रदल चक्र ही है। इस स्थान को यौगिक भाषा में अकुल नाम से संबोधित किया जाता है। अकुल में स्पंदन होने पर किस-किस स्थान से कौन-सी मातृका उत्पन्न होती है, यह निम्न तालिका के द्वारा स्पष्ट किया गया है—

स्थान	मातृका	स्थान	मातृका	स्थान	मातृका
अकुल	अ, लं	चंद्रिका	लृ, मं	अंतराल	गं, तं
व्यापिका	उं, शं	लंबिका	ओं, पं	विशुद्ध	छं, ठं
रोधनी	लृं, यं	अंतराल	खं, घं	समना	ईं, षं
अंतराल	ओं, फं	आधार	चं, डं	नाद	ॠं, रं
अनाहत	कं, दं	उन्मना	इं, सं	आज्ञा	ऐं, बं
स्वाधिष्ठान	ङं, ढं	नादान्त	ॠं, लं	अंतराल	अः, धं
कुला	झं, ञं	बिंदु	एं, भं	मणिपूर	घं, णं
महाबिंदु	हं, आं	विशुद्धि	अं, नं	कुल पदम	जं, टं
शक्ति	ऊं, वं				

उपरोक्त तालिका के द्वारा मातृकाओं का स्वरूप और स्थान बतलाए गए हैं। यह मातृकाओं की एक विशेष यौगिक तांत्रिक माला है। साधक जब इसे फेरता है तो उसके सूक्ष्म और भौतिक शरीर में एक विशेष प्रकार का स्पंदन

होने लगता है। बीज मंत्र सहित मातृकाओं की माला फेरने से समस्त वृत्तियां इधर-उधर भटकना बंद कर देती हैं। उन्हें विवश होकर स्थिर होना पड़ता है। किन्तु इन समस्त मातृकाओं का उद्‌गम स्थान तो प्रणव ही है और प्रणव को ही यौगिक भाषा, तंत्रोक्त भाषा में ''ओंकार'' कहा गया है। इस प्रणव शरीर ओंकार से ही समस्त स्वर और व्यंजनों की उत्पत्ति हुई है।

मूलाधार चक्र से आज्ञा चक्र तक समस्त योग चक्रों के कमल दलों के रूप में स्वर व्यंजन मातृकाएं आदि दी गई हैं, वह सब ओंकार से ही उत्पन्न हुई हैं तथा ओंकार में ही वह समाहित हो जाती हैं। उन योग चक्रों के दंतों के रूप में मूलाधार पहला दलचक्र है।

विभिन्न च्रकों में, उनके अलग-अलग दलों में, अलग-अलग बीजाक्षरों का स्थान निश्चित किया गया है। इसी प्रकार योग के सर्वोच्च सहस्त्रदल कमल चक्र में समस्त स्वर व्यंजन मातृकाओं सहित सभी बीजाक्षरों का निवास है। साधक द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत करने पर, कुल कुण्डलिनी मूलाधार से लेकर क्रमश: स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र और इसके निकट विष्णु आदि ग्रंथि का भेदन करते हुए और अनाहत चक्र का भी भेदन करते हुए, कंठ में स्थित विशुद्ध चक्र के समीप ग्रंथि का भी भेदन करती हुई आज्ञा चक्र पर पहुंचती है।

मूलाधार चक्र से लेकर आज्ञा चक्र तक कुण्डलिनी के पहुंचने के बारे में बताया गया। मूलाधार से लेकर आज्ञा चक्र तक के बीच के मार्ग में और भी बहुत-सी रहस्यात्मक शक्तियों का उदय होता है, जिसका अनुभव साधक को प्रत्यक्ष होता रहता है।

कुण्डलिनी जब आज्ञा चक्र से ऊपर सहस्त्रार परम चक्र की ओर चढ़ती है, तो बड़े वेग के साथ झटका देकर ऊपर की ओर अपना मुंह फैलाती है। ऐसा मालूम होता है, जैसे वह बहुत दिनों की भूखी हो और अब जागने के साथ ही खाने को अधीर हो उठी हो। यह भयंकर अट्टहास, फुफकार करती नागिन के समान बल खाती हुई संपूर्ण रूप से उठ खड़ी होती है। भयंकर विद्युत की कौंध साधक के संपूर्ण शरीर को झकझोर डालती है। मेरुदण्ड विद्युत गति एवं शक्ति से शब्द करता हुआ एकदम सीधा हो जाता है। सातों चक्र सावधानी की स्थिति में आ जाते हैं। यहां कुण्डलिनी शक्ति का जागरण पूर्ण हो जाता है।

कुण्डलिनी को सर्पाकार शक्ति कहा गया है, क्योंकि इसकी गति वलयाकार सर्प की-सी है। योगाभ्यासी व्यक्ति के शरीर में यह चक्राकार चलती है और उसमें शक्ति बढ़ती है। यह एक विद्युत अग्निमय गुप्त शक्ति है। कुण्डलिनी की गति प्रकाश की गति से भी अधिक तीव्र है। योगवाशिष्ठ में कुण्डलिनी के बारे में कहा गया है, *''रसौ वै स: ''*, अर्थात् रसिकता भाव संवेदना अनेक कलाओं के रूप में विकसित होते हुए जीवन को रसयुक्त बना देती है। देवी भागवत में उल्लेख मिलता है कि इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, विज्ञानशक्ति क्रमश: तम्, रज, सत् गुणों की प्रतीक है, जिनकी शक्तियां महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती हैं। इनकी साधना से कुण्डलिनी का जागरण होकर वैभवों की उपलब्धि होती है तथा यह साधक को अनेक गुणा शक्तिशाली बना देती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कुण्डलिनी को संसार का सबसे प्राचीन ज्ञान माना गया है। संभवत: ऋग्वेद से भी पहले ही यह विद्या भारत में विद्यमान थी। कुण्डलिनी-साधना करके मनुष्य अमर, ज्ञानी, समस्त सिद्धि और निधियों से पूर्ण श्री युक्त बनता था। ध्यान बिंदु, ब्रह्म, क्षुरिका, नृसिंह पूर्ण तापनीय उपनिषदों के अतिरिक्त मैत्री, योग तत्त्व, राम तापनीय उपनिषद् में कुण्डलिनी को मंत्रात्मक तथा क्रियात्मक दोनों ही प्रकार से समझाया गया है।

सभी चक्रों के जागरण से पूर्व उपवास, नियम, तपादि से चित्त पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लें, अन्यथा योग के स्थान पर निम्न रोग भी हो सकते हैं—

मूलाधार चक्र में—बवासीर या गुदाभ्रंश

स्वाधिष्ठान चक्र में—पीलिया, जलोदर, बहुमूत्र, मधुमेह

मणिपूर चक्र में—चर्मरोग, प्रदाह
अनाहत चक्र में—हृदय रोग, गठिया, जोड़ों का दर्द
विशुद्ध चक्र में—अर्बुद या कैंसर, नासूर
आज्ञा चक्र में—क्रोध, अविवेक, दृष्टिहीनता
सहस्रार चक्र में—पागलपन, उन्माद।

विशेष—सप्तचक्रों का ध्यान करते समय मुख्यत: एक बात जान लेनी चाहिए कि सभी पद्मों के मुख ऊपर की ओर हैं, किन्तु योगी अर्थात् फल की इच्छा वालों को सभी पद्मों के मुख नीचे की ओर किए हुए का ध्यान करना चाहिए।

कुण्डलिनी साधना से सम्बंधित विशेष जानकारी

कुण्डलिनी साधक प्राणायाम आदि विभिन्न क्रियाओं द्वारा अपनी प्राण शक्ति, ऊर्ध्वगामिनी बना सकता है। भिन्न-भिन्न योगमार्गों में किसी दिव्य शक्ति, श्रुति को ऊर्ध्वगामिनी बनाने की अनेक विधियां बताई गई हैं। इस महाशक्ति का साधन करने के लिए महाबंध, मूलबंध, जालंधर बंध, उड्डीयान बंध, महामुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, बज्रौली मुद्रा एवं खेचरी आदि मुद्रा की साधना करना आवश्यक है।

उपरोक्त हठयोग की दस मुद्राओं के द्वारा साधना करके भी उस कुल कुण्डलिनी शक्ति को, षट्चक्रों का भेदन करके सहस्रदल चक्र कमल में पहुंचाया जा सकता है। इन मूलाधार आदि छह चक्रों के ऊपर वाले स्थान पर हठयोग विद्या के अनुसार कई विचित्र स्थान हैं, उन्हें भी योगमार्ग में महत्त्वपूर्ण योगचक्र का स्थान दिया गया है। ये प्रमुख स्थान निम्न हैं—

पहला स्थान—भ्रमर गुफा
दूसरा स्थान—गोल्लाट
तीसरा स्थान—औटे पीठ
चौथा स्थान—त्रिकूट
पांचवां स्थान—श्रीहाट

उपरोक्त स्थानों पर श्रुति को भेजने से बड़े-बड़े दुर्लभ अनुभव प्राप्त होते हैं।

भ्रमर गुफा नामक योग विशिष्ट चक्र है। भ्रमर जप के द्वारा इस तक पहुंचा जा सकता है। सदाशिव इसके देवता हैं। कृष्ण वर्ण है। सतगुण, अर्धमात्रा, सूक्ष्म वेद, उन्मानि अवस्था और इसकी वाणी परात्पर है। कैवल्य मुक्ति इसका फल है।

गोल्लाट योग चक्र के देवता शिव हैं। श्वेत वर्ण है। वह तमोगुण प्रधान ''म'' कार अक्षर है। सामवेद से उसका उद्भव है और सुषुप्ति अवस्था है। पश्यन्ति वाणी है।

औटे पीठ योग चक्र का देवता ईश्वर है। वर्ण विद्युत समान है। सतगुण से युक्त ओंकार ''ॐ'' अक्षर है। अथर्ववेद इसका उद्भव है। तुरीय अवस्था है। परा वाणी है और मुक्ति की सायुज्यता इसका फल है।

त्रिकूट नामक योगचक्र के देवता ब्रह्मा हैं। रजोगुण प्रधान है। सूपीत वर्ण है। ओंकार उसका अक्षर है। ऋग्वेद से इसका उद्भव हुआ है। जाग्रत उसकी अवस्था है। वैखरी उसकी वाणी है। उसकी अंतिम स्थिति सलोकता है।

श्रीहाट नामक योगचक्र के देवता विष्णु हैं। मोती जैसा वर्ण है। सतोगुण प्रधान है। ओंकार अक्षर है। यजुर्वेद से उसका उद्भव है। स्वप्न उसकी अवस्था है। उससे मुक्ति की समीपता प्राप्त होती है। मध्यमा वाणी है।

उपरोक्त पांचों योगचक्रों के द्वारा साधना करने से कैवल्य मुक्ति प्राप्त की जा सकती है अर्थात् परब्रह्म के

कैवल्य धाम की प्राप्ति जीवात्मा को उस पवित्र साधना से हो सकती है। राजयोग के अभ्यास से भी अनन्त शक्तियां, सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

योगमार्ग के प्रति श्रद्धा, निष्ठा, भक्ति करने के लिए योगियों ने योगमार्ग की बहुत-सी शक्तियों एवं योग सिद्धियों का प्रदर्शन किया है। एक योगी ने रक्तवर्ण के त्रिकोण में अग्नि तत्त्व का ध्यान और अग्नि के बीज मंत्र "**रं**" का निरंतर जप, साथ ही प्राणायाम करके अपने कपाल को इतना अधिक तपा लिया (गरम कर लिया) कि वहां उपस्थित लोगों को उसे हाथ लगाना ही कठिन हो गया। यह राजयोग, हठयोग एवं ध्यान योग की सम्मिलित क्रिया थी।

मंत्रयोग में भक्तियोग भी आ जाता है। मंत्र जप से भी आंतरिक सूक्ष्म प्रकाश अर्थात् आत्म तत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है अर्थात् श्रुति को जाग्रत किया जा सकता है। नाद अनुसंधान योग, स्वर विज्ञान आदि के द्वारा भी अपनी श्रुति, महान ऊर्जा शक्ति को ऊर्ध्वगामिनी बनाया जा सकता है। अपने प्राणों को, श्रुति को, मूलशक्ति को ऊर्ध्वमुखी करने के लिए कुछ आवश्यक शारीरिक क्रियाओं के साथ-साथ केवल श्रद्धा, सत्य-निष्ठा, सच्चे उत्साह के साथ निरंतर ध्यान-साधना करते रहने से उस महान शक्ति (कुण्डलिनी) का जागरण संभव हो जाता है।

यदि भाग्यवश गुरुकृपा अथवा देवकृपा आदि के द्वारा उस शक्ति को जाग्रत होना है, तो वह महान शक्ति कोई-न-कोई बहाना बनाकर साधक में जाग्रत होती है और उसे अपनी विभिन्न प्रकार की उपलब्धियों, शक्तियों, विधियों और चमत्कारों से निहाल कर देती है।

जब वह दिव्य आंतरिक प्रेरणा, स्रोत रूपा प्राणशक्ति किसी साधक में विकसित होने लगती है, तो उसे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होती। साधकों का कल्याण करने वाली शक्ति साधक से वह सब क्रियाएं, साधनाएं आदि स्वाभाविक ही एक के बाद एक कराती रहती है। फिर एक दिन ऐसा आता है कि साधक को पता भी नहीं लगता और वह अपनी उपासना की चरम सीमा तक पहुंच जाता है।

कुण्डलिनी का प्रशस्त मार्ग

जाग्रतावस्था में कुण्डलिनी शरीर में नीचे से ऊपर की ओर गतिशील होती है। वह ज्यों-ज्यों अपने मार्ग पर प्रशस्त होती है, उसके मार्ग में पड़ने वाले तत्त्वों का लय हो जाता है। सर्वप्रथम मूलाधार चक्र में अवस्थित ब्रह्मा, डाकिनी शक्ति और अन्य देवता, घ्राणेंद्रिय तथा पंखुड़ियों के चारों वर्ण पृथ्वी बीज **लं** में गंधतत्त्व सहित लय होकर कुण्डलिनी के शरीर में लीन हो जाते हैं।

योगी साधक द्वारा ऊपर को प्रेरित की गई कुण्डलिनी जीवात्मा सहित स्वाधिष्ठान चक्र में प्रविष्ट हो जाती है। कुण्डलिनी के प्रवेश करते ही स्वाधिष्ठान की पंखुड़ियां तत्काल ऊर्ध्वमुख रूप में विकसित हो जाती हैं।

यहां विष्णु, राकिनी शक्ति और कमल में अवस्थित अन्य देवता पंखुड़ियों पर स्थित छहों वर्णों सहित लय होते हैं। ये सब और गंध तत्त्व रस में लीन हो जाते हैं। कुण्डलिनी के शरीर के कारण रूप से स्थित पृथ्वी बीज **लं**, वरुण बीज **वं** में लय हो जाता है। तदनंतर वरुण बीज **वं** भी कुण्डलिनी के साथ सशरीर हो जाता है।

तदुपरान्त योगी साधक के मूल मंत्र द्वारा कुण्डलिनी और भी ऊपर चढ़कर, जीवात्मा और रस तन्मात्रा के साथ तीसरे चक्र मणिपूर में प्रवेश करती है। इस स्थान पर रुद्र, लाकिनी शक्ति और चक्र में अवस्थित अन्य देवता, दस दलों पर स्थित दसों वर्ण तथा रस-तन्मात्रा इन सबका रूप में लय हो जाता है।

कुण्डलिनी के शरीर में कारण-रूप से स्थित वरुण बीज वं तेजस बीज **रं** में लय हो जाता है। तत्पश्चात् **रं** बीज भी कुण्डलिनी के शरीर में लीन हो जाता है। इसके बाद योगी द्वारा मूल मंत्र की सहायता से कुण्डलिनी का जीवात्मा सहित अनाहत चक्र में प्रवेश होता है। योगी साधक को यहां कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि तीसरे चक्र

मणिपूर और चौथे चक्र अनाहत के बीच में एक बड़ी कठिन गांठ है, जिसका नाम ब्रह्मग्रंथि है।

इस ब्रह्मग्रंथि का भेदन करते समय साधक साधारणतया आंत्रादि कष्ट से पीड़ित हो जाया करता है, उसका स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है, किन्तु इस पीड़ा से साधक को घबराकर ध्यान-साधना से मुक्त नहीं होना चाहिए, बल्कि अपने निश्चय पर अडिग रहना चाहिए।

ब्रह्मग्रंथि का भेदन करना तब तक संभव नहीं होता, जब तक साधक इन कठिन क्षणों पर पूर्णतया विजय नहीं पा लेता और एक वीर सैनिक की भांति कुण्डलिनी मार्ग के समस्त विघ्नों को दूर नहीं कर देता।

जीवात्मा सहित जब कुण्डलिनी अनाहत चक्र में पहुंचती है, तब ईश्वर, काकिनी शक्ति और कमल में अवस्थित अन्य देवताओं तथा इसकी पंखुड़ियों पर स्थित बारहों वर्ण स्पर्श तन्मात्रा में लय होने लगते हैं। कुण्डलिनी के शरीर में स्थित रूप तन्मात्रा और वह्नि बीज, वायु बीज "**यं**" में लय हो जाता है जो कुण्डलिनी के शरीर में लीन होता है। अब कुण्डलिनी एक दूसरी कठिन ग्रंथि का भेदन करती है। इसका नाम विष्णुग्रंथि है। इस ग्रंथि का भेदन कर कुण्डलिनी पांचवें चक्र विशुद्ध की ओर अपने मार्ग'पर अग्रसर होती है।

कुण्डलिनी के विशुद्ध चक्र में पहुंचने पर सदाशिव, शाकिनी शक्ति और चक्र के अन्य अधिष्ठात्र देवता तथा पंखुड़ियों पर स्थित सोलहों वर्ण व्योम तत्त्व एवं शब्द तन्मात्रा में लय हो जाती है। कुण्डलिनी के शरीर में स्थित वायु बीज यं वागंद्रिय और तन्मात्रा सहित आकाश बीज हं में लय हो जाता है, जो फिर कुण्डलिनी में लीन हो जाता है।

इसके पश्चात् योगी साधक द्वारा मंत्र योग की सहायता से कुण्डलिनी छठे चक्र आज्ञा की ओर चढ़ती (बढ़ती) है। यहां पर शिव, हाकिनी शक्ति और चक्र में अवस्थित अन्य तत्त्व आकाश बीज हं तथा तन्मात्रा सहित अहंकार तत्त्व में लय हो जाते हैं, ज़ो स्वयं कुण्डलिनी के शरीर में लीन होता है।

तदनन्तर कुण्डलिनी तीसरी तथा अंतिम ग्रंथि का भेदन करने के लिए बढ़ती है। इस ग्रंथि का नाम रुद्रग्रंथि है। उपर्युक्त तीनों ग्रंथियों में सबसे कठिन ग्रंथि यही मानी जाती है। रुद्रग्रंथि का भेदन हो जाने पर कुण्डलिनी स्वत: सहस्रार चक्र में प्रवेश कर जाती है। वहां यह परम शिव से लिपटकर एकाकार हो जाती है। कुण्डलिनी की परावस्था महाकुण्डलिनी सहस्रों सूर्यवत् दीप्तिमान साथ ही सहस्रों चंद्रवत् शीतल एवं निरंतर अमृतवर्षी प्रणव के रूप में उद्घाटित होती है।

सप्तचक्रों से प्रभावित साधक

कुण्डलिनी जागरण योग भी परम सिद्धि है। किन्तु इसे प्राप्त करने का मार्ग सरल नहीं है। वस्तुत: निष्ठावान साधक श्रद्धा, विश्वास, धैर्य से इसे जाग्रत कर सकते हैं। प्रत्येक चेतन व्यक्ति किसी-न-किसी चक्र से अवश्य प्रभावित रहते हैं। जैसे—

मूलाधार चक्र—इस चक्र से प्रभावित व्यक्ति अपनी असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र—इस चक्र से प्रभावित व्यक्ति कला, साहित्य के प्रेमी, राजा, सम्राट अथवा वीर होते हैं।

मणिपूर चक्र—इस चक्र से प्रभावित साधक अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले, दानी, परोपकारी तथा धर्म-अधर्म को समझने वाले होते हैं।

अनाहत चक्र—इस चक्र से प्रभावित साधक कलाकार, गायक, संत अथवा कवि होते हैं।

विशुद्ध—इस चक्र से प्रभावित साधक श्रेष्ठ बुद्धि वाला तथा अपने मनोभावों पर कठोर नियंत्रण करने वाला होता है।

आज्ञा चक्र—इस चक्र से प्रभावित साधक राजयोगी एवं स्थित प्रज्ञ होते हैं।

सहस्रार चक्र—इस चक्र से प्रभावित साधक ईश्वर के साक्षात् दर्शन कर सकता है तथा अमरत्व को भी सहज ही प्राप्त कर लेता है।

चक्रों का ध्यान-पूजन

मूलाधार चक्र—इस चक्र में पार्थिव रश्मियों से आवृत श्री भगवती का पूजन करें (जो साधक यह पूजन-ध्यान करता है, वह सौभाग्यशाली होता है तथा भगवती की कृपा का पात्र बनता है)।

स्वाधिष्ठान चक्र—तेजस रश्मियों से आवृत श्रीचक्र का लिंग देश स्थित स्वाधिष्ठान पर पूजन करें।

मणिपूरक चक्र—नाभि में स्थित मणिपूर चक्र के मध्यस्थ, जल रश्मियों से आवृत श्रीचक्र का पूजन करें।

अनाहत चक्र—हृदय रूपी कमल पर विराजमान अनाहत में स्थित वायु रश्मियों से स्थित श्रीचक्र का पूजन करें।

विशुद्ध चक्र—समाहित-चित्त होकर विशुद्ध चक्र पर विराजमान आकांक्षाशुओं से आवृत श्रीचक्र का सवार्थ-सिद्धि के लिए पूजन करें।

आज्ञा चक्र—इस चक्र पर विराजमान तथा मानसांशुओं से आवृत श्रीचक्र का पूजन करें (यह ध्यान-पूजन सौभाग्य सिद्धि के लिए अवश्य किया जाना चाहिए)।

सहस्रार चक्र—कपाल पर स्थित ब्रह्मरन्ध्र में विराजमान, सर्व रश्मियों से आवृत सहस्रार में जगत की विधाता शक्ति का पूजन करें।
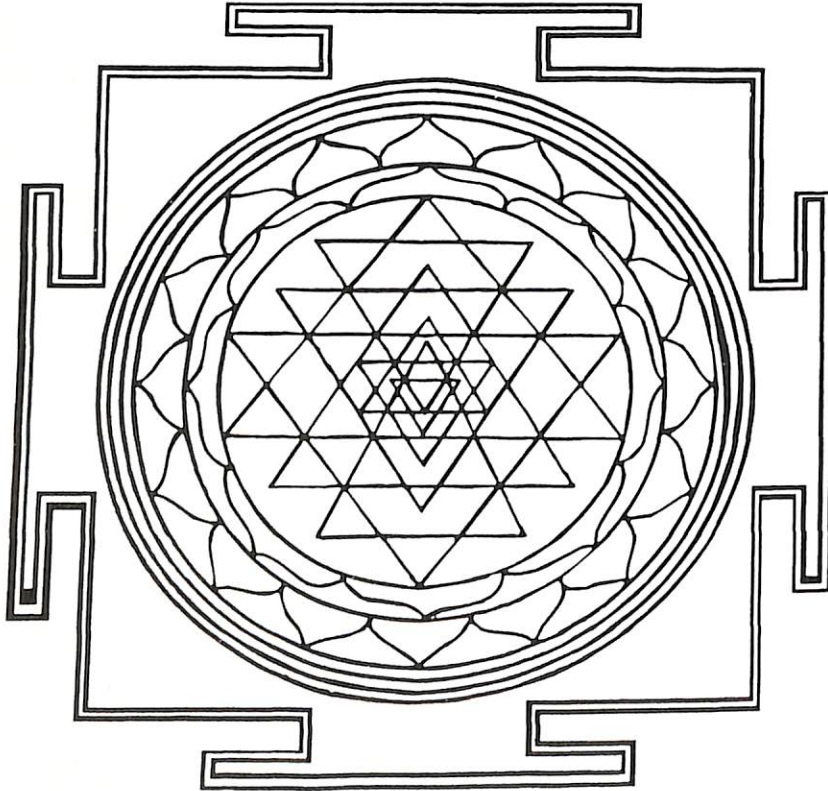
सप्तवारों में सप्तचक्रों का ध्यान-पूजन

रविवार के दिन मूलाधार चक्र, सोमवार के दिन मणिपूर चक्र, मंगलवार के दिन स्वाधिष्ठान चक्र, बुधवार के दिन अनाहत चक्र, गुरुवार (बृहस्पतिवार) को विशुद्ध चक्र, शुक्रवार के दिन आज्ञा चक्र और शनिवार के दिन सहस्रार चक्र पर ध्यान एवं पूजन करना चाहिए। ऐसा करने से परम सिद्धि होती है तथा साधक अजेय बनता है।

कुण्डलिनी जाग्रति का स्थान और उसका प्रभाव

जिस प्रकार भूगोल-वेत्ताओं ने भौतिक सरंचना के आधार पर पृथ्वी को विभिन्न क्षेत्रों में विभक्त करके प्रत्येक क्षेत्र की जलवायु, उपज और स्थानगत विशेषता की विवेचना की है, उसी प्रकार अध्यात्म के क्षेत्र में मनीषियों ने प्रत्येक कार्य के लिए अनुकूल-प्रतिकूल स्थान का निर्देश दिया है।

एक अनपढ़, गंवार आदमी भी यह जानता है कि नदी-तट पर, बालू में ईख या गेहूं की खेती नहीं की जा सकती और न वहां धान बोने से ही कोई लाभ होगा। वह प्रत्येक फसल, वनस्पति के लिए तदनुकूल भूमि और जलवायु की खोज करती है। ठीक यही नियम जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी कार्यशील रहता है।

पूजन, चिंतन, जप-तप, भोजन, शयन, राग-रंग, युद्ध और समाधि—ये सब तभी अनुकूल प्रभाव देते हैं, जब इसके लिए वांछित स्थान और परिवेश का चयन किया गया हो। जैसे, भोजन वही हो, फिर भी यदि कोई व्यक्ति वह थाली लेकर चौके, मंदिर, खेत, घर, मैदान, श्मशान, भीड़, वधभूमि अथवा किसी सवारी पर बैठकर भोजन करे, तो यह निश्चित है कि स्थान और वातावरण के भेद से वही भोजन उसे प्रत्येक स्थिति-स्थान में भिन्न प्रकार का प्रतीत होगा। स्वाद, रुचि, संतुष्टि—तीनों में वह स्थानगत प्रभाव का अंतर अनुभव करेगा।

स्थानगत प्रभाव की ऐसी ही सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को दृष्टिगत रखते हुए, योग एवं अध्यात्म साधना के मर्मज्ञों, मनीषियों और शास्त्रकारों ने अनुकूल और प्रतिकूल स्थानों की विशद् विवेचना की है। उनके निर्देशानुसार गुरु दीक्षा तक प्राप्त करने के लिए भी स्थान की अनुकूलता आवश्यक रहती है। वर्जित अथवा त्याज्य स्थान में ली गई दीक्षा और की गई ध्यान-साधना निष्फल होती है। यही नहीं, कभी-कभी तो स्थान का दुष्प्रभाव योग साधक के लिए प्राण-संकट उत्पन्न कर देता है। अतः प्रत्येक कार्य में स्थान-चयन को भी वरीयता देनी चाहिए।

अनुकूल स्थान

गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान तो कोई तीर्थ ही होता है, किन्तु यदि वैसा संभव न हो तो भी यथा-साध्य किसी शुभ, पवित्र, शांत और निर्विघ्न स्थान का ही चयन करना चाहिए।

सामान्यतः दीक्षा-प्राप्ति के लिए तीर्थ स्थान का कोई उत्तम पवित्र स्थल, देव-मंदिर, सरिता-तट या कोई सुरम्य, रमणीक और प्राकृतिक दृष्टि से संपन्न, सात्त्विक वातावरण वाला स्थल, तपोभूमि, गुरु का निवास स्थान अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से अन्य कोई महत्त्वपूर्ण स्थान उत्तम होता है। जहां भी दीक्षा ग्रहण की जाए, उस स्थान को झाड़-पोंछकर, लीप-पोतकर स्वच्छता और शुचिता का वातावरण बना लेना चाहिए।

दीक्षा-प्राप्ति के पश्चात् साधना के लिए भी स्थान को महत्त्वपूर्ण कहा गया है। जहां भी पाएं, बैठकर जप-तप अथवा योग की ध्यान-साधना में लग जाएं, यह उचित नहीं। कार्य-विशेष, साधना-विशेष और समय के आधार पर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों (स्थानों) को उपयोगी बताया गया है। किन्हीं विशेष कृत्यों (अभिचार आदि) के लिए तो श्मशान, वध-भूमि और जन मार्ग को ही साधना के लिए प्रभावकारी माना जाता है, किन्तु शांति-पुष्टि के कार्यों के निमित्त, भौतिक समस्याओं के समाधान हेतु तथा कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए, ध्यानादि हेतु शुद्ध-पवित्र स्थलों को ही उपयुक्त माना गया है। इस संबंध में ऋषिजनों का निर्देश इस प्रकार है—

योग साधना और कुण्डलिनी-जागरण-ध्यान के लिए पर्वतीय क्षेत्र, घाटी या तराई, गुफा, वन, फुलवाड़ी, संगम-तट, तीर्थ स्थान, सिद्धपीठ, बेल-वृक्ष की छाया, तुलसी वाटिका, पीपल अथवा आंवले की छाया, देवालय, गो-सदन और तपोभूमि जैसे स्थान विशेष हितकर होते हैं। वस्तुतः यह स्थान-चयन पूर्णतया वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं।
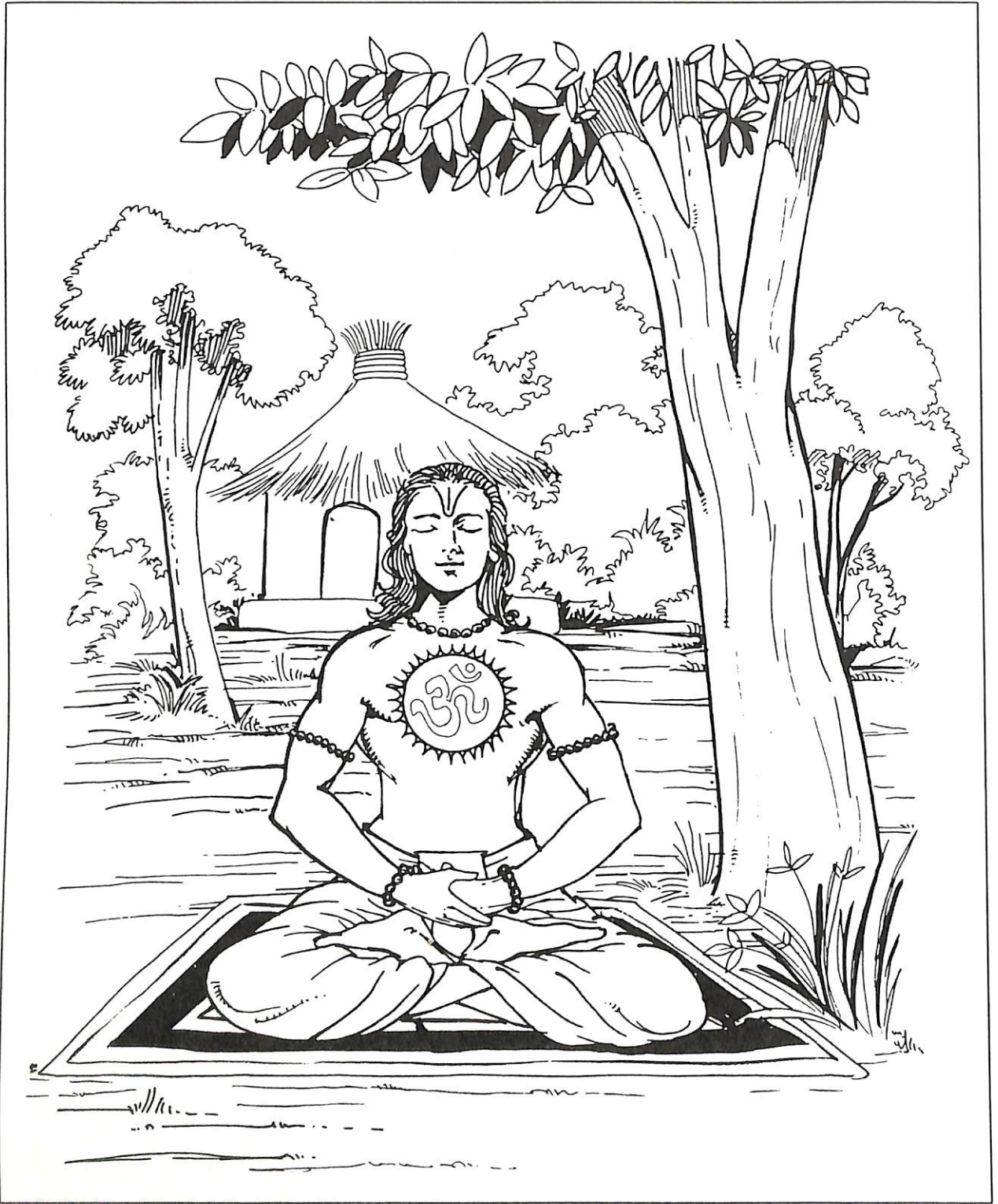
बाहरी और भीतरी अनुकूलता से साध्य की प्राप्ति जल्दी होती है। इस विषय में कि साधक कैसे बाह्य प्रतिकूलताओं को अनुकूल बनाए, धर्मग्रंथों में कई साधन बताए गए हैं

निषिद्ध स्थान

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, अपने वातावरणीय-दुष्प्रभाव के कारण कुछ स्थान सात्त्विक कार्यों के लिए वर्जित माने गए हैं, कारण कि वे शुभ फलदायक नहीं होते। यहां तक कि ऐसे अशुभ स्थानों में दीक्षा प्राप्त करने अथवा वहां कोई साधना करने में सफलता तो दूर रही, साधक के लिए अनेक प्रकार की बाधाएं शत्रुवत् आ खड़ी होती हैं। इन बाधाओं का रूप कभी-कभी मृत्यु जैसा मारक भी हो जाता है। अत: दीक्षा लेने अथवा जप-तप, पूजा-पाठ, ध्यान-साधना जैसे कार्यों के लिए उचित और शास्त्र-सम्मत स्थान ही ग्राह्य होता है, वर्जित स्थानों का उपयोग भूलकर भी नहीं करना चाहिए।

वर्जित स्थानों में विशेष रूप से कन्या-गृह (पुत्री की ससुराल), विरजा-तीर्थ, चंद्र-पर्वत, सूर्य क्षेत्र, मातंग देश, भट्ट-ग्राम, गया-धाम आदि की गणना होती है। स्थानीयता की दृष्टिकोण से साधक को चाहिए कि वह गंदे, मल-मूत्र विसर्जित किए जाने वाले, कूड़ा-करकट इकट्ठा किए गए, भीड़-भाड़ वाले, हिंसक पशुओं के निकट, शत्रु के प्रभाव-अधिकार वाले स्थानों में ध्यान-योगादि की कोई साधना न करें। कारण कि वहां विघ्न की आशंका प्रति क्षण रहती है। इसी प्रकार मरघट, बलि-स्थान, पशुमंडी, पशुओं की वध-भूमि, चोर-डाकुओं का विश्राम-स्थल, अपराधी जनों का कार्यक्षेत्र, जहां कभी कोई हत्या-अनाचार जैसा पातक कर्म हुआ हो, आदि स्थान भी योग साधना के निमित्त वर्जित माने गए हैं।

शिष्य/गुरु के अनिवार्य गुण

जिस प्रकार कोई द्रव पदार्थ (तरल वस्तु) रखने के लिए गहरे पात्र की आवश्यकता होती है (उसे तश्तरी या प्लेट में नहीं रखा जा सकता), उसी प्रकार सामान्य जीवनचर्या की अपेक्षा आध्यात्मिकचर्या (ध्यान, साधना) के लिए कुछ विशिष्ट गुणों का होना अनिवार्य माना गया है। ये गुण शास्त्रों में इस प्रकार बताए गए हैं—

साधक को शीलवान, गुणज्ञ, निश्छल, श्रद्धालु, धैर्यवान, स्वस्थ, कार्य सक्षम, बुद्धिमान, सच्चरित्र, इन्द्रिय-संयमी और कुल-प्रतिष्ठा का पोषक होना चाहिए। इन लक्षणों से रहित व्यक्ति साधना नहीं कर सकता।

शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ, समर्थ और संयमशील होना, योग साधना में सफलता प्राप्ति के लिए पहली शर्त है। ऐसे ही व्यक्ति साधना के अधिकारी होते हैं और उन्हें दीक्षा देने वाले गुरु का श्रम सार्थक है।

अधिकांश गुरु जो ऊपर वर्णित गुरुओं की श्रेणी में आते हैं, किसी को दीक्षा देने के पूर्व उसके सम्बंध में इन गुणों की, उसकी पात्रता की परख कर लेते हैं। चूंकि वे वीतराग और निर्लोभ होते हैं, अत: शिष्य का चुनाव करते समय उसकी आध्यात्मिक पात्रता को परखते हैं, उसकी भौतिक धन-संपत्ति से उन्हें कोई मतलब नहीं होता।

मनोविज्ञान द्वारा व्यक्ति के जीवन में उसके दूरगामी प्रभावों की विवेचना करते हुए, निष्कर्ष रूप में शास्त्रकारों ने प्रतिपादित किया है कि अयोग्य (दुर्गुणों से युक्त) व्यक्ति न तो गुरु से दीक्षा पाने का अधिकारी है और न वह दीक्षित होने पर ध्यान-साधना के क्षेत्र में कोई उपलब्धि ही कर पाता है। कुण्डलिनी का जागरण वह नहीं कर सकता, बल्कि ऐसे व्यक्ति का योग के प्रथम चक्र तक पहुंचना भी कठिन है।

संभवत: यही कारण है कि प्राय: संत, महात्मा हर किसी को अपना शिष्य नहीं बना लेते। कुपात्र जनों को दिया जाने वाला ज्ञानोपदेश, आध्यात्मिक संकेत, साधना परामर्श और तंत्र-मंत्र दीक्षा आदि सब निरर्थक होते हैं।

गुरु-शिष्य के बीच पारस्परिक सम्बंध बहुत शुचिता और परख के आधार पर स्थापित होने चाहिए, तभी उनमें स्थायित्व आ पाता है। इसलिए गुरुजनों को भी निर्दिष्ट किया गया है कि वे किसी को शिष्य बनाने, उसे दीक्षा देने के पूर्व उसकी पात्रता को भली प्रकार परख लें। ऋषियों का कथन है—

मंत्री द्वारा किए गए दुष्कृत्य का पातक राजा को लगता है और सेवक द्वारा किए गए पाप का भागी स्वामी बनता है। स्वयं-कृत पाप अपने को और शिष्य द्वारा किए गए दुष्कृत्य का पाप गुरु को लगता है। दीक्षा और साधना के लिए अयोग्य व्यक्तियों के लक्षणों को मनीषियों ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

ऐसा व्यक्ति, जो अपराधी मनोवृत्ति का हो अथवा क्रूर, पापी, हिंसक हो, वह न तो दीक्षा पाने का अधिकारी है और न वह कुण्डलिनी योग साधना में ही सफल हो सकता है। कारण कि उसकी तामसिक मनोवृत्ति उसे सदैव अस्थिर और असंतुलित बनाए रखती है। इसी प्रकार बकवादी, कुतर्क करने वाला, मिथ्याभाषी, अहंकार-ग्रस्त, लोभी, लम्पट, विषयी, चोर, दुर्व्यसनी, परस्त्रीगामी, मूर्ख, जड़-बुद्धि, क्रोधी, द्वेषालु, ईर्ष्या अथवा अतिमोह से ग्रस्त, शास्त्र-निंदक, आस्थाहीन, दुराचारी, वंचक, पाखण्डी और रोग-विकलांगता से व्यथित व्यक्ति भी न तो गुरु दीक्षा पाने योग्य होता है और न कुण्डलिनी योग साधना करने के योग्य। ऐसे व्यक्ति का हर कार्य मात्र एक ढकोसला होता है।

श्री गुरु उपासना

समस्त योग, ध्यान-साधना का मंगल प्रस्थान श्री गुरु की उपासना से ही आरंभ होता है। ''गुरु बिन ज्ञान नहीं'', वाली उक्ति वस्तुतः सत्य है। प्रत्येक प्रकार का ज्ञान गुरु द्वारा ही प्राप्त होता है। यह बात कुण्डलिनी जागरण के क्षेत्र में और भी अधिक महत्त्व रखती है, क्योंकि इस क्षेत्र में अनेक रहस्यों को गुप्त रखने के लिए पद-पद पर शास्त्रकारों ने आदेश दिए हैं।

इनके साथ ही कुण्डलिनी योग साधना में ज्ञान के साथ-साथ कर्म को भी उतना ही महत्त्व दिया गया है। जिस प्रकार कोई पक्षी आकाश में एक पंख से नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार केवल ज्ञान अथवा केवल कर्म से इस मार्ग में सफलता या सिद्धि नहीं मिलती है।

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां पक्षिणः खे यथागतिः।
तथैव ज्ञान-कर्माभ्यां साधनायां सदागतिः॥

ज्ञान तो हमें ग्रंथों, पुस्तकों से भी कुछ अंशों में मिल जाता है, किन्तु कर्म-क्रिया की पद्धति तो गुरु से ही प्राप्त होती है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गुरु द्वारा मिले हुए मार्ग-दर्शन से एक निश्चित संरक्षण मिल जाता है। उसमें शंकाओं को कोई अवकाश नहीं रहता। शास्त्रों में गुरु की महिमा बतलाते हुए कहा गया है—

गुरुपाद-विहीना ये, ते नश्यन्ति ममाज्ञया।
गुरुर्मूलं हि मन्त्राणां, गुरुर्मूलं परं तपः॥
गुरौः प्रसादमात्रेण, सिद्धिरेव न संशयः।
अहं गुरु रहं देवो, मन्त्रार्थोऽस्मिन्न संशयः॥

भगवती भैरवी ने यहां स्वयं कहा है, ''गुरु सेवा से विहीन मेरी आज्ञा से नष्ट हो जाते हैं। समस्त मंत्रों का मूल गुरु ही है। गुरु ही परम तप है। गुरु की केवल प्रसन्नता से ही अवश्य सिद्धि होती है, इसमें संशय नहीं है। मैं भैरवी ही गुरु हूं और मैं ही मंत्रार्थ हूं।''

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि उपास्य देव और गुरु दोनों में समान श्रद्धा रहने पर ही उपासना (साधना) फलवती होती है।

गुरु की कृपा से शक्ति प्रसन्न होती है और शक्ति की प्रसन्नता से मोक्ष होता है। कभी भी गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए तथा अहर्निश दास की तरह उनकी आज्ञा माननी चाहिए। इतना ही नहीं, गुरु की पादुका, आसन, वस्त्र, शय्या एवं भूषणादि देखकर भी उन्हें प्रणाम करना चाहिए।

गुरु प्रणाम के लिए कतिपय नियमों का निर्देश भी यहां किया गया है, जिसमें बतलाया गया है कि सदा पादुका-मंत्र का स्मरण करते रहें। जब गुरु और शिष्य एक स्थान अथवा एक ग्राम में रहते हों तो शिष्य को प्रतिदिन गुरु के पास जाकर उन्हें प्रणाम करना चाहिए।

सात योजन तक के विस्तार में यदि गुरु रहते हों, तो मास में एक बार उनके दर्शन अवश्य कर आना चाहिए। गुरु जिस दिशा में रहते हों, उस दिशा में भक्तिपूर्वक प्रणाम करें। कभी उनके साथ एक आसन पर न बैठें। अंत में कहा गया है—

गुरुभक्त्या च शक्रत्वमभक्त्या शूकरो भवेत्।
गुरुभक्तेः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः॥

श्री गुरु उपासना के प्रकार

कुण्डलिनी योग साधना के प्रत्येक अनुयायी के लिए गुरु-स्मरण का बड़ा महत्त्व है। अतः प्रातःकाल में निद्रा का त्याग करते ही हाथ, पैर और मुखादि का प्रक्षालन करके पवित्रतापूर्वक सहस्रार में गुरु, परमगुरु और परमेष्ठी गुरु का गुरुपदेशानुसार पादुका-मंत्र का जप करके स्मरण करना चाहिए। रुद्रयामल तंत्र के अनुसार स्मरण योग्य पद्य इस प्रकार है—

शिरःस्थितसुपंकजे तरुण-कोटि-चन्द्रप्रभं,
वराभय-कराम्बुजं सकल-देवतारूपिणम्।
भजामि वरदं गुरुं किरण-चारु-शोभाकुलम्,
प्रकाशित-पदद्वयाम्बुज-लसत्क-कोटिप्रभम्॥
जगद्भय-निवारणं भुवन-भोग-मोक्षप्रदं,
गुरो पदयुगाम्बुजं जयति यत्र योगे जयम्।
भजामि परमं गुरुं नयन-पद्म-मध्यस्थितम्,
भवाब्धि-भयनाशनं शमन योग कायक्षमय्॥
प्रकाशित-सुपंकजे मृदुल-षोडशाख्ये प्रभुं,
परापर गुरं भजे सकल-बाह्यभोगप्रदम्।
विशाल नयनाम्बुज-द्वय-तडित्प्रभा मण्डलं,
कडार-मणिपाटलप्रभ-समुल्लसद् बिन्दुकम्॥
चलाचल कलेवरं प्रचपले दले द्वादशे,
महौज समुमापतेर्विगतदक्षभागे हृदि,
भजामि परमेष्ठिनं गुरुमतीव वारोज्ज्वलम्॥

गुरु मंत्र के संबंध में कहा गया है कि ''ओम् ऐं नाम'' (मंत्रदाता गुरु का जो नाम हो, उसके साथ चतुर्थी विभक्ति का एक वचन लगाकर बोलें) आनन्दनाथाय गुरवे नमः ओम्, इस प्रकार लघु मंत्र का जप किया जाए अथवा ''गुरु पादुका-मंत्र'' जो उसे उपदेश प्राप्त हुआ हो, उसका जप करें। गुरु स्तोत्र का पाठ करें।

गुरुभक्तेः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः।
गुरुपूजां बिना नाथ कोटिपुण्यं वृथा भवेत्॥

अर्थात् संपूर्ण भक्ति शास्त्रों में गुरु की भक्ति से बढ़कर कोई दूसरी भक्ति नहीं है। इसलिए हे नाथ! गुरु की पूजा किए बिना करोड़ों पुण्य भी व्यर्थ हो जाते हैं।

गुरु पूजा एक तो नित्य होती है और एक ''गुरु जयंती'' आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा अर्थात् गुरु पूर्णिमा को होती है। नित्य पूजा में स्मरण तथा चित्र पूजा होती है, किन्तु गुरु पूर्णिमा को विशेषत: यदि गुरु विद्यमान हों तो ''साक्षात् पूजा'' और न हों तो ''विशेष पूजा'' करनी चाहिए। यह तांत्रिक संप्रदाय के अनुसार सशक्ति गुरु की पूजा होती है।

शक्ति (गुरु पत्नी) के अभाव में ज्ञान-शक्ति का स्मरण-पूजन होता है। विशेष पूजा में गुरु मण्डलार्चन का आगमिक विधान है। आगम रहस्य में ''गुरु-पूजन पंचांग'' का संकलन करते हुए वहां ''गुरु-ध्यान, मंत्र, पटल, गायत्री, प्रार्थनास्तोत्र, कवच, पूजन-पद्धति'' आदि का निर्देश किया गया है। अत: विशेष जानने और कर्म करने के इच्छुक मूल-पाठ वहीं से प्राप्त करें।

गुरु-पूजा विधान

गुरु यंत्र का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

बिन्दु-त्रिकोणं वसुकोण-विम्बं, वृत्ताष्टपत्रं शिखिवृत्तयुक्तम्।
धरागृहं वह्नितुरीभिराढ्यं यन्त्रं गुरोर्देवि मया प्रदिष्टम्॥

इसके अनुसार बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अष्टदल तथा भूपुर से यह यंत्र बनता है।
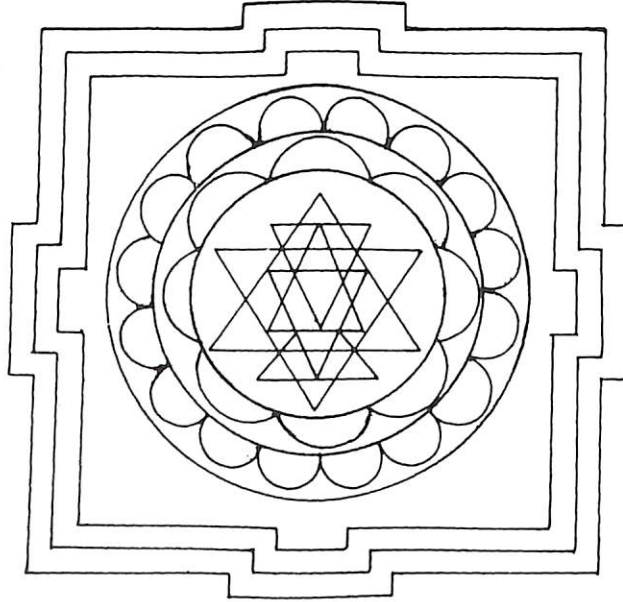
इस यंत्र को सिंदूर, कुंकुम अथवा चंदन से भूर्जपत्र अथवा चंदन के पट्टे पर बनाकर पहले प्रतिष्ठा करें। तदनन्तर शक्ति सहित श्री गुरु की बिन्दु में स्थापना और पूजा करें। चारों द्वारों पर ''गणेश, धर्म, वरुण, कुबेर'' की पूजा करें।

अष्टदल में असितांग, रुद्र, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाल, भीषण और संहार भैरव की पूजा करें।

अष्टकोण में परमानन्द, प्रकाशानन्दनाथ, भोगानन्दनाथ, समयानन्दनाथ, गगनानन्दनाथ, विश्वनन्दनाथ, भुवनानन्दनाथ तथा स्वात्मानन्दनाथ रूप अष्ट कुलगुरुओं की पूजा करें।

त्रिकोण में मदनानन्दनाथ, लीलानन्दनाथ तथा महेश्वरानन्दनाथ की पूजा करें।

बिन्दु में पुनः गुरु और उनके ऊपर वाले भाग में परमगुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठि गुरु की भक्तिपूर्वक षोडशोपचार पूजा करें।

गुरु गायत्री—**''ॐ वेदादिगुरुदेवाय विद्महे, परमगुरवे धीमहि, तन्नो गुरुः प्रचोदयात्।''** के द्वारा भी यह पूजा विधान सम्पन्न किया जा सकता है।

इस प्रकार यंत्र पूजा करके किसी एक गुरु मंत्र का जप करना चाहिए। सर्व साधारण में यह भी परंपरा प्रचलित है कि गुरुजी के द्वारा जो मंत्र प्राप्त होता है, वह चाहे किसी देव विशेष का हो, उसी को गुरु मंत्र समझ लेना चाहिए। किन्तु हमारे विचार से यह उचित नहीं है। हमारे मत से गुरु मंत्र दाता गुरु का स्वतंत्र मंत्र होता है। जैसा कि हमने ऊपर बताया कि उसी का जप करना चाहिए। वैसे प्रत्येक देवता के मंत्र की दीक्षा लेने वाले गुरु के लिए ''गुरु पादुका-मंत्र'' के जप तथा उस मंत्र के द्रष्टा गुरु की पादुका के मंत्र का भी जप किया जाता है, यह शास्त्रोक्त विधान है। रुद्रयामल के उत्तरतंत्र के प्रथम अध्याय में यह विषय विस्तार से लिखा है। गुरु कृपा करने के लिए गुरु का हृदय में निवास तथा विवेक, विमर्श और प्रकाश की नितांत आवश्यकता है। अत: निम्नलिखित स्तोत्र का पाठ अवश्य किया जाना चाहिए—

नमस्ते नाथ भगवन्! शिवाय गुरुरूपिणे।
विद्यावतार संसिद्ध्यै स्वीकृतानेक-विग्रह॥
नवाय नवरूपाय परमार्थैक रूपिणे।
सर्वाज्ञान-तमोभेदभानवे चिद्घनाय ते॥
स्वतन्त्राय दयाक्लृप्त-विग्रहाय परात्मने।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे॥
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिणाम्।
प्रकाशिनां प्रकाशाय ज्ञाननिनां ज्ञानरूपिणे॥
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्यकुर्यामुपर्यधः।
सदा मच्चित्तरूपेण विधेहि भवदासनम्॥

गुरु पादुका का मंत्र जप करने के पश्चात् सहस्रदल पद्म में मृगी मुद्रा से जप करने का आदेश है। अत: इस ओर सावधान रहते हुए गुरु-स्मरण किया जाए, तो कुण्डलिनी पर ध्यान का फल शीघ्र ही प्राप्त होता है। ❑❑

निःश्वास : सत्रह

शारीरिक चक्र और उनकी साधना

जब बात कुण्डलिनी की आती है, तो सहज ही इससे सम्बद्ध शारीरिक षट्चक्र और अन्य चक्रों का विचार हो जाता है। तंत्र-ग्रंथों में षट्चक्र और उनके भेदन की महत्ता दिखाकर कहा गया है—

षट्चक्र प्रीतिर्यस्य साधनचेतसः।
संसारे वा वने वाऽपि स सिद्धो भवति ध्रुवम्॥

अति प्रसिद्ध षट्चक्र क्रमशः—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा चक्र हैं। रुद्रयामल तंत्र में उनके दलों के आधार पर भी निम्न विवरण दिया गया है—

मूलाधार के चार दलों में क्रमशः—भूमि, स्वर्ग, तुलाचक्र एवं वारिचक्र भी स्थित है तथा इनमें स्थित वर्णों के जप से इन्हीं में विद्यमान अनेक ग्रंथियों के भेदन का भी संकेत दिया है। प्रत्येक चक्र का वर्णन और उसमें जप की विशिष्ट फलप्रदता भी यहां अति विस्तृत है।

''षट्चक्र फलोदय'' में छहों चक्रों की स्थिति, आकृति, उनके देवता, वर्ण और उनके ध्यान का विषय व्यक्त किया गया है। इन सबके वर्णन में कुण्डलिनी को नहीं भुलाया गया है, अपितु साथ-ही-साथ उसके संबंध में भी उपयोगी निर्देश किए हैं।

छहों चक्रों में विराजमान देव और उनकी योगिनियों का यहां (ग्रंथ में) विस्तार से वर्णन किया गया है। ये योगिनियां शाकिनी, काकिनी, लाकिनी, राकिनी, डाकिनी और हाकिनी हैं। इसी प्रसंग से योग-साधना करने का काल यज्ञोपवीत- संस्कार के साथ माना गया है—

प्राप्ते यज्ञोपवीत यः श्रीधरो ब्राह्मणोत्तमः।
योगाभ्यासं सदा कुर्यात् स भवेद् योगिवल्लभः॥

क्रमशः साधना करते हुए भक्षण-नियम, अभक्षण-त्याग, पयोभक्षण, आसन, कालनिर्णय जैसी महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान तथा करने योग्य यौगिक कर्मों का निर्देश रुद्रयामल तंत्र में दिया गया है। ब्रह्मचर्य का वास्तविक पालन बाल्यकाल से ही किया जाए तो वह अग्रिम काल में सुसाध्य बन जाता है, क्योंकि कामादि-संहरण के बिना योग भी कैसे किया जा सकता है?

षट्चक्रों की भाव-सिद्धि के लिए वायु के द्वारा ही यजन किया जाता है। मूलाधार से आज्ञा तक के चक्रों की भावना यहां निर्दिष्ट है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्राणायाम से ऊपर उठकर योग में विघ्न करते हैं, किन्तु कुम्भक द्वारा अवरुद्ध हो जाने पर तत्काल सिद्धि प्रदान करते हैं।

प्रणव के तीन वर्ण ''अ-उ-म्'' क्रमशः योग पूरक, योग कुम्भक और योग रेचक के आधार हैं। इन्हीं से ''सोऽहम्'' तथा ''हंस'' मंत्र बनते हैं।

यह सर्वविदित है कि हमारे श्वास-प्रश्वास से रात-दिन एक महामंत्र का जप चलता रहता है। उसको शास्त्रकारों ने ''हंस-मंत्र'' अथवा ''हंस-गायत्री'' कहा है, जिसमें ''सोऽहम्-हंस'' का स्वरूप निहित है। इसी सोऽहम् जप को अजपागायत्री कहते हैं। हमें इसका ज्ञान न होने से, हम इसके तत्त्व का साक्षात्कार नहीं कर पाते, किन्तु सिद्धजन इसी अजपाजप से मुक्ति द्वार उद्घाटित करते हैं। यही सोऽहम् जब वाणी का रूप धारण करता है, तो ''स'' और ''ह'' का लोप होकर ''ओम्'' बन जाता है। अत: ओम् का निरंतर जप करते रहने से सभी सिद्धियां सहज ही प्राप्त हो जाती हैं।

''सोऽहम्'' तथा ''हंस'' मंत्र बनते हैं। इन्हीं मंत्रों से बना ''बृहद् हंस-मंत्र'' भी निम्न दिया जा रहा है—

ओम् हंसः ओम् परमपदं तर्पयामि ओम् फट्।

इस मंत्र का जप करने से षट्चक्रों का भेदन होता है। वायु-सिद्धि का भी यही मंत्र है। चक्र-भेदन के लिए भी उनके उपायों का उल्लेख मिलता है, जिनमें खान-पान का संयम, विभिन्न आसन, काल, क्रिया एवं शिव साधन भी हैं।

वस्तुत: जिस प्रकार योग के प्रकारों में हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग और लययोग पृथक-पृथक होते हुए भी मिश्रित रूप में भी प्रयुक्त होते हैं, उसी प्रकार चक्र और उनकी साधना में भी इन सबका उभयविध प्रयोग होता है।

चक्रों में व्याप्त अंतर्नाड़ियों का स्वरूप, ध्यान और उनसे संबद्ध मंत्र बीजों का स्मरण भी यहां निर्दिष्ट है। चक्रेशीरूप योगिनियों के सहस्रनाम तो संभवत: रुद्रयामल तंत्र में ही प्रोक्त हैं, जो कि अत्यंत दुर्लभ हैं।

❑❑

नि:श्वास : अट्ठारह
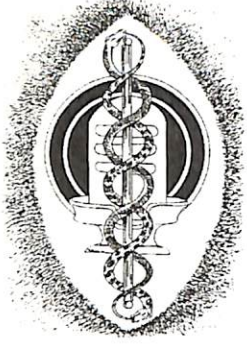
कुण्डलिनी साधना के कुछ स्त्रोत

रुद्रयामल (उत्तरतंत्र) में कुण्डलिनी-प्रबोधन के लिए स्तोत्र, ध्यान, न्यास, मंत्र, कवच और सहस्रनाम आदि का वर्णन मिलता है। कुण्डलिनी को ही मानव की जीवनी-शक्ति भी कहा गया है। वह मृणालतंतु के समान कोमल और सूक्ष्म है।

मानव-शरीर में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाम की तीन सूक्ष्म नाड़ियां हैं, जिनके बारे में पीछे भी काफी विस्तार से बताया जा चुका है कि इड़ा का संबंध चंद्रस्वर से, पिंगला का संबंध सूर्यस्वर से है। जबकि सुषुम्ना शून्य नाड़ी है। जैसे इड़ा और पिंगला नाड़ी मूलाधार चक्र से चलकर भ्रूमध्य में होती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचती है। उसी प्रकार सुषुम्ना नाड़ी भी मूलाधार (उपस्थ से दो अंगुल नीचे और गुदा से दो अंगुल ऊपर) स्थान से इन तीनों नाड़ियों का संगम होता है। इसलिए उस स्थान को अंतर्जगत का प्रयाग धाम कहा जाता है।

कुण्डलिनी मूलाधार पद्म में स्थित स्वयंभूलिंग को साढ़े तीन चक्करों से आवेष्टित करके अपने मुख से सुषुम्ना-पथ को रोककर सुषुप्तावस्था में स्थित है। यह कुण्डलिनी द्विमुखी है। एक मुख से तो यह ब्रह्म द्वार को रोककर सोई रहती है और दूसरे मुख में दण्डाहत भुजंगिनी के समान मात्र श्वास-प्रश्वास का संचालन करती है। यही जीव का नि:श्वास प्रश्वास है।

योग आदि अनेक क्रियाओं द्वारा साधक इसी सुषुप्त शक्ति को जाग्रत कर सुषुम्ना पथ से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचने का प्रयास करता है। इस यात्रा में कुण्डलिनी को कई ग्रंथिरूप स्थानों से गुजरना पड़ता है और यह सहस्त्रार में पहुंचकर सहस्त्रदल कमल की कर्णिका में स्थित परमानन्दमय परमात्मा के साथ एकात्म्य प्राप्त करती है तथा पुन: मूलाधार कमल में लौट आती है। यह एकात्म्य ही शिव-शक्ति का सायुज्य कहलाता है। कुण्डलिनी की एक स्तुति में कहा गया है—

मूलोन्निद्रभुजंगराज सदृशीं यान्तीं सुषम्नान्तरं।
भित्त्वाधारसमूहमाशु विलसत् सौदामिनी सन्निभाम्॥
व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद् दिव्यामृतौधैः पतिं।
सम्भाव्य स्वगृहागतां पुनरिमां सच्चिन्तये कुण्डलीम्॥

साधकों ने कुण्डलिनी को अनेक रूपों में व्यक्त किया है। यह मूलाधार में रहने से ''अध: कुण्डलिनी'' कहलाती है, जबकि सहस्त्रार में एक और कुण्डलिनी का आवास माना गया है, जिसे ''ऊर्ध्व कुण्डलिनी'' कहते हैं।

साधना-क्रम में सृष्टि क्रम के साधक अध: कुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर षट्चक्र भेदन कराते हुए उसका सहस्त्रार में ऊर्ध्व कुण्डलिनी से योग कराते हैं और संहार-क्रम के उपासक ऊर्ध्व कुण्डलिनी को सहस्त्रार से अवरोहित कराते हुए षट्चक्र भेदन पूर्वक मूलाधार में अ: कुण्डलिनी के साथ संयोग कराते हैं। गौतमीय तंत्र में कहा गया है—

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो!।
तावत् किंचिन्न सिद्धयेत् मन्त्र-यन्त्रार्चनादिकम्॥
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्य संचयै।
तत् प्रसादमायाति मन्त्र-यन्त्रार्चनादिकम्॥

अर्थात् मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति जब तक सोई रहेगी, तब तक मंत्र-यंत्र एवं भजन-पूजनादि कुछ भी सिद्ध नहीं होते और जब उनके पुण्यों के प्रभाव से वह देवी जाग्रत हो जाती है, तो उसकी कृपा से मंत्र, यंत्र और भजन-पूजनादि सभी सफल हो जाते हैं।

इसलिए उत्तरोत्तर साधना में अग्रसर होने के अभिलाषी कुण्डलिनी की साधना के लिए अनेक उपाय करते हैं। जिनमें साधक विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति और मुमुक्षुत्व भाव से सम्पन्न होकर गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से अनुष्ठान करता हुआ सफलता प्राप्त करता है।

जिस समय कुण्डलिनी अपने स्थान को छोड़कर उत्थित होती है तो शरीर में स्फुरण होने लगता है। जैसे-जैसे यह महाशक्ति चक्रों का भेदन करती हुई, ऊपर को बढ़ती है, वैसे ही शरीर में प्रफुल्लता एवं भारहीनता की अनुभूति बढ़ती जाती है। सहस्रार में कुण्डलिनी के पहुंचने पर निर्विकल्प समाधि की दशा में शरीर भारहीन होकर चिदानन्द की प्राप्ति कराता है। यही साधना का अंतिम लक्ष्य है।

कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप-वर्णन उत्तरतंत्र में इस प्रकार दिया गया है—"यह देवी शक्ति रूपा, समस्त भेदों का भेदन करने वाली तथा कलिकल्मष का नाश करके मोक्ष देने वाली है।" इसकी उपासना के लिए स्तोत्र, ध्यान, न्यास और मंत्र का वर्णन भी वही आनंद भैरवी ने बतलाया है।

कुण्डलिनी की साधना इन उपादानों का ज्ञान मूल पद्म में मन का विलय करता है। साधक चैतन्य आनंद में तल्लीन आकाशगामिनी सिद्धि भी प्राप्त कर लेता है।

यह अमृत और आनंद रूप से मनुष्यों का पालन करती है और यह श्वास तथा उच्छ्वास कला के द्वारा शरीरस्थ पंच महाभूतों से आवृत होकर पंचप्राणरूपा हो जाती है। कुण्डलिनी परदेवता है, मूलाधार में विराजमान यह कुण्डलिनी, "कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्ञानरूपा, ध्यान-ज्ञान-प्रकाशिनी, चंचला, तेजोव्याप्तकिरणा, कुण्डलाकृति, योगिज्ञेया एवं ऊर्ध्वगामिनी", आदि महनीय स्वरूप वाली है। रुद्रयामल तंत्र में कुण्डलिनी का 11 पद्यों का एक स्तोत्र इस प्रकार दिया गया है—

आधारे परदेवता भवानताधः कुण्डली देवता,
देवतानामधिदेवता त्रिजगतामानन्दपुन्ज स्थिता।
मूलाधारनिवासिनी त्रिरमणी या ज्ञानिनी मालिनी,
सा मे मातृमनुस्थिता कुलपथानन्दैकबीजानना॥

इस स्तोत्र को प्रणव से संपुटित कर पाठ करने से सर्वविध सौख्य प्राप्त होने के साथ ही पाठकर्ता "कुण्डली पुत्र" ही बन जाता है अर्थात् माता कुण्डलिनी उसको अपना लेती है। पचास पद्यों में कुण्डलिनी के नाम, रूप, गुण एवं धर्मों का वर्णन करने वाले भगवती के नामों से कामना की गई है कि वह मेरे अंग-प्रत्यंगों को भिन्न-भिन्न, छोटे-बड़े स्थूल अवयवों की तथा आंतरिक सूक्ष्म अवयवों की रक्षा करे। यथा—

ओम् ईश्वरी जगतां धात्री ललिता सुन्दरी परा।
कुण्डली कुलरूपा च पातु मां कुल चण्डिका॥

इस कवच का ध्यानयोग में रहते हुए जो योगी पाठ करता है तथा इसे भोजपत्र पर लिखकर धारण करता है, वह सर्वसिद्धि प्राप्त करता है।

कुण्डलिनी जागरण करने के लिए तंत्रग्रंथों ने अनेक प्रयोग और उपायों के भी निर्देश किए हैं। प्रत्येक साधनानुरागी संप्रदाय की अपनी-अपनी दृष्टि और पद्धति होती है। जो जिस पद्धति का अनुसरण करता है, उसे उसी दृष्टि से अपने संप्रदायानुमत मार्ग का अवलम्बन लेकर आगे बढ़ना चाहिए। भिन्न-भिन्न संप्रदायों के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट मार्गों का परस्पर यथारुचि सम्मिश्रण करके साधना करने का शास्त्रकारों ने सर्वथा निषेध किया है, उसी प्रकार कुण्डलिनी के बारे में भी समझें।

न्यासविद्या एवं मुद्राओं की महिमा

रुद्रयामल तंत्र में वर्णित यहां एक साधना के स्वरूप का उल्लेख किया जा रहा है, जो कि स्वतंत्र साधना के लिए तथा कुण्डलिनी साधना के लिए अत्यंत उपयोगी है। तंत्र का एक अर्थ विस्तार भी है। यह विस्तार आगम और यामलों में अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं के समन्वित प्रयास से ही ध्यान जमता है और साधना सम्पन्न होती है। इनमें कायिक कर्मों में विभिन्न कर्म सम्मिलित हैं। स्थूल शरीर की पूरी तैयारी होने पर ही सूक्ष्म शरीर तत्त्व ज्ञान की भूमिका प्राप्त करता है और इसी से वाणी एवं मन भी साधनोपयोगी क्रियाओं की वास्तविकताओं के निकट पहुंच पाते हैं।

इस दृष्टि से योगासन, ध्यान, अर्चन के क्रमों में ''न्यास'' का भी बड़ा महत्त्व है। किसी भी कर्म के लिए जो विनियोग किया जाता है, उसमें जो मंत्र, स्तोत्र, कवच आदि प्रयुक्त होते हैं, उन सभी में ''न्यास'' आवश्यक माने गए हैं।

''देवो भूत्वा देवं यजेत्'' देव बनकर ही पूजा करें। इस आदेश का पालन भी न्यासों पर ही आधारित है।

यहां देव बनने का तात्पर्य है कि अपने शरीर में देवताओं को विराजमान करना और ऋषि, छंद, देवता, बीज शक्ति, कीलक और विनियोग के न्यासों द्वारा मंत्रमय देह बनाना।

करन्यास, अंगन्यास, शरीरावयवन्यास, आयुधन्यास तथा मातृका-मंत्राक्षर आदि के न्यास साधना के अनिवार्य अंग हैं। जो *''निःशेषेण आस्यत इति न्यासः ''*इस व्युत्पत्ति के अनुसार निश्चित स्थानों पर, निश्चित देव-ऋषियों की स्थापना की भावना को पूर्ण करते हैं। ये न्यास सभी साधनाओं में, सभी संप्रदायों में समान रूप से स्वीकृत हैं।

साधना-क्रम में न्यास-विधान को ''न्यास विद्या'' कहा है। महाकाल संहिता में कहा गया है कि इस प्रकार की सिद्धिदां विद्या दूसरी कोई नहीं है, इसलिए इसका दूसरा नाम ''सिद्धविद्या'' भी है। तांत्रिकों का यह सिद्धांत है कि भूत-शुद्धि द्वारा शरीर को शुद्ध किया जाता है और न्यासों के द्वारा ''मंत्रमय देवता को आत्मा में संक्रान्त कर तन्मयता बुद्धि प्राप्त की जाती है।'' *''न्यासस्तन्मयता-बुद्धिः।''*

रुद्रयामल तंत्र में जिन-जिन मंत्रों अथवा स्तोत्रों का कथन हुआ है, उनके विनियोगों में कथित ऋष्यादि न्यास, मंत्रांगभूत न्यास, करन्यास, हृदयादिषडंग न्यास तो सर्वविदित हैं ही, उनके अतिरिक्त कतिपय विशिष्ट न्यासों का भी उल्लेख हुआ है।

न्यास विधि—सामान्यतः सभी न्यास विधि में सूचित स्थानों का तत्त्वमुद्रा (अनामिका और अंगुष्ठ के अग्रभागों के सम्मिलित रूप) से स्पर्श करने का विधान है। किन्तु उंगलियों के स्पर्श में केवल अंगुष्ठाग्र से नीचे वाले पर्व से अग्रभाग तक स्पर्श होता है।

इसी प्रकार अंगुष्ठ में तर्जनी द्वारा पर्व-स्पर्श करते हैं। यह न्यास का सृष्टि-क्रम है। विशेष साधक कुलानुकूल अथवा कर्मानुकूल न्यासों में अग्रभाग से मूल पर्व तक स्पर्श से सहार-न्यास और मध्य पर्व से ऊपर-नीचे स्पर्श द्वारा स्थिति न्यास करते हैं।

हृदयादिन्यासों में दाहिने हाथ से जो स्पर्श होता है, वह भिन्न-भिन्न मुद्राओं द्वारा संपन्न होता है। इनके

अतिरिक्त जो स्वतंत्र विशेष न्याय कहे गए हैं, उनमें शरीर के निर्दिष्ट अंगों का स्पर्श मंत्रोच्चारणपूर्वक उन स्थानों में उक्त देवता का आवाहन, वहां स्थित होने की प्रार्थना और ''वे स्थित हो गए हैं'' ऐसी भावना करके उन्हें प्रणाम करना, ये तीनों क्रियाएं एक साथ होती हैं।

ये न्यास जब और भी गूढ़ होते हैं तो योनि मुद्रा, त्रिखंड मुद्रा, एकेक उंगली मुद्रा, तर्जनी भ्रमण संहार मुद्रा आदि अनेक रूपों में मुद्राएं बनाकर किए जाते हैं।

न्यास-स्वरूप—न्यासों की यह विशेषता है कि ये—कहीं तो व्यष्टि रूप में रहते हैं और कहीं समष्टि रूप में। जब समष्टि होती है तो इनके प्रकार बड़े अद्‌भुत हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—षोढा न्यास को लें। इसमें छह पृथक-पृथक न्यास होते हैं, जिनमें गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि और पीठों के न्यास होते हैं। यह प्रथम प्रकार ''लघुषोढा'' कहलाता है, जबकि द्वितीय ''महाषोढा'' न्यास में 1. प्रपंच, 2. भुवन, 3. मूर्ति, 4. मंत्र, 5. देवता और 6. मातृका भैरव के न्यास रहते हैं।

ये न्यास ललिता त्रिपुरसुंदरी के हैं। इसी प्रकार अन्य देवताओं के न्यासों में क्रम-परिवर्तन तथा विषय परिवर्तन होता रहता है। यंत्र के आवरण, देवताओं के न्यास, देवता के आयुधों का न्यास, शरीर के विशिष्ट अंगों के न्यास, मुखों के आधार पर उतने ही वक्त्र-न्यास, अस्त्र-न्यास, दूतो-न्यास, शक्ति-न्यास, डाकिनी-न्यास आदि विध न्यास हैं, जिनका विचार करके उनका प्रयोग करना चाहिए।

न्यास की फलश्रुति—वैसे तो प्रत्येक न्यास-विधान के अंत में उसका फल लिखा ही रहता है, तथापि यह विशेष स्मरणीय है कि जिस प्रकार हम किसी मंत्र का पुरश्चरण करते हैं, विशेष अनुष्ठान करते हैं और किसी विशेष कामना से उसका प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार केवल न्यासों से भी ये विधियां की जा सकती हैं। इस दृष्टि से—नित्यानुष्ठान, काम्यानुष्ठान भी न्यासों द्वारा होते हैं।

ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के लाभ केवल न्यास-साधना से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। कुछ न्यासों के बारे में भी यह कहा गया है कि *''येषां चिकीर्षयाऽपि स्यात् सिद्धिः सार्वत्रिकी नृणाम्''*, अर्थात् न्यास करने की इच्छा से ही लोगों के अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। इन न्यासों का पुरश्चरण (1008 पारायण अथवा ग्रहण काल पारायण द्वारा) करके न्यास करने से विशेष लाभ होता है।

न्यास को भोजपत्र आदि पर पर्वकाल में लिखकर कवच के रूप में धारण करने की भी शास्त्रकारों ने आज्ञा दी है। महाषोढा के प्रसंग में यह भी निर्देश है कि जहां यह लिखकर भी रख दिया जाता है, वहां सर्वविधि मंगल का आधिक्य और किसी भी प्रकार से विघ्नों का सर्वथा क्षय होता है।

न्याससिद्धि के लिए नियम—न्यास द्वारा साधक जब अपने शरीर में देवत्व का आधान कर लेता है, तो उसमें इष्टदेव का परिवार-सहित होने से उसके लिए प्रायः व्यर्थ की चर्चा करना किसी को शाप अथवा आशीर्वाद देना एवं किसी को नमस्कार करना वर्जित है।

ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि न्यास-सिद्धि महापुरुषों द्वारा प्रणाम न करने पर उनसे रुष्ट होकर हठपूर्वक प्रणाम करवाने से प्रणामापेक्षी का अनिष्ट हुआ है। ❑❑
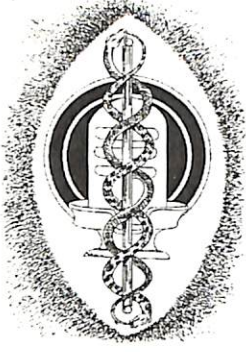
निःश्वास : उन्नीस

कुण्डलिनी मंत्र, जप-विधि और स्तोत्र

प्राणवायु का निरोध करके मूलाधार में चतुर्दल कमल के बीच त्रिकोण रूप पीठ में स्थित ज्योतिर्लिंग को आवेष्टित कर विराजमान साढ़े तीन वलय वाली कुण्डलिनी को ''ओम् हूं'' इस बीज से लगाकर ''ऐं ह्रीं श्रीं'' इस मंत्र का जप करते हुए ध्यान करें।

विनियोग

अस्य श्रीकुण्डलिनी मंत्रस्य शक्तिः ऋषिः गायत्रीच्छन्दः, चेतना कुण्डलिनी शक्तिर्देवता ऐं बीजं श्रीं शक्तिः ह्रीं कीलकं मम श्रीकुण्डलिनी-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

शक्तिऋषये नमः (शिरसि) **गायत्रीच्छन्दसे नमः** (मुखे), **चेतना कुण्डलिनीशक्तिदेवतायै नमः** (हृदये), **ऐं बीजाय नमः** (गुह्ये), **श्रीं शक्तये नमः** (पादयोः), **ह्रीं कीलकाय नमः** (नाभौ), **विनियोगाय नमः** (सर्वांगे)।

कर-हृदयादिन्यास

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ह्रीं श्रीं (इन छह बीजों से क्रमशः अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका और करतल-कर-पृष्ठ में तथा हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र-न्यास करें)।

ध्यान

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्-
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीन-वक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं विभ्रतीं,
सौम्यां रत्नघटस्थ-सव्यचरणां वन्दे परामम्बिकाम्॥

(मानसिक पूजा करने के पश्चात् यथाशक्ति मूलमंत्र ''**ऐं ह्रीं श्रीं**'' का जप करें और समर्पण करके प्रार्थना करें)।

कुण्डलिनी शक्ति के प्रार्थना-स्तोत्र अनेक हैं, जिनमें मूलाधारस्थ त्रिकोण में सोये सर्प जैसी, सार्धत्रिवलयाकारा, नीवारशूत के समान पतली, अत्यंत तेजोमयी, शीतल, शिव-शक्तिस्वरूपा, शंखावर्तक्रम से स्थित, सुषुम्ना के मध्य से परशिव तक जाने वाली तथा सहस्रार में विराजमान परशिव से सामरस्य प्राप्त कर पुनः स्वस्थान पर आने वाली के रूप में ध्यान-स्तुति आदि हैं। रुद्रयामल में इसके अनेक स्तोत्र, सहस्रनाम आदि हैं। उनमें से यहां एक महत्त्वपूर्ण ''स्तोत्राष्टक'' प्रस्तुत है। साधकों को इसके पाठ से लाभान्वित होना चाहिए।

कुण्डलिनी-स्तोत्राष्टकम्

जन्मोद्धारनिरीक्षणीह तरुणी वेदादि-बीजादिमा,
नित्यं चेजसि भाव्यते भुवि कदा सद्वाक्यसंचारिणी।
मां पातु प्रियदा स विपदं संहारयित्री धरे,
धात्रि त्वं स्वयमादिदेववनिता दीनातिदीनं पशुम्॥ 1॥
रक्ताभामृत चन्द्रिका लिपिमयी सर्पाकृतिर्निद्रिता,
जाग्रत्कूर्मसमाश्रिता भगवती त्वं मां समालोकय।
मांसोद्‌गन्ध-कुगन्धदोषजडितं वेदादिकार्यान्वितं,
स्वल्पान्यामलचन्द्रकोटि किरणैर्नित्यं शरीरं कुरु॥ 2॥

सिद्धार्थी निजदोषवित् स्थलगतिर्व्याजीयते विद्यया,
कुण्डल्याकुलमार्गमुक्तनगरीमाया-कुमार्गः श्रिया।
यद्येवं भजति प्रभातसमये मध्याह्नकालेऽथवा,
नित्यं यः कुलकुण्डली-जय-पदाम्भोजं स सिद्धो भवेत्॥ 3॥
वाय्वाकाशचतुर्दलेऽतिविमले वांछाफलोन्मूलके,
नित्यं सम्प्रति नित्यदेहघटिता संकेतिता भाविता।
विद्याकुण्डलमानिनी स्वजननी मायाक्रिया भाव्यते,
यैस्तैः सिद्धकुलोद्भवैः प्रणतिभिः सत्स्तोत्रकैः शंभुभिः॥ 4॥
वेधःशंकरमोहिनी त्रिभुवनच्छायापटोद्गामिनी,
संसारादिमहाऽसुखप्रहरणी तत्र स्थिता योगिनी।
सर्वग्रन्थि-विभेदिनी स्वभुजगा सू मातिसू मा परा,
ब्रह्मज्ञान-विनोदिनी कुलकुटी-व्याघातिनी भाव्यते॥ 5॥
वन्दे श्रीकुलकुण्डलीं त्रिवलिभिः सांगेः स्वयंभू-प्रियं,
प्रावेष्ट्याम्बर-मार चित्तचपलां बालाबलां निष्कलाम्।
या देवी परिभाति वेदवदना सम्भावनी तापिनी,
स्वेष्टानां शिरसि स्वयंभू-वनिता तां भावयामि क्रियाम्॥ 6॥
वाणीकोटि - मृदंगनादमदना - निश्रेणिकोटि - ध्वनिः,
प्राणेशी रसराशिमूलकमलोल्लासैक-पूर्णानना।
आषाढोद्भव-मेघवाज-नियुत-ध्वान्तानना स्थायिनी,
माता सा पारपातु सूक्ष्मपथगा मां योगिनां शंकरी॥ 7॥
त्वामाश्रित्य नरा व्रजन्ति सहसा वैकुण्ठ-कैलासयो-
रानन्दैक-विलासिनी शशिशतानन्दाननां कारणाम्।
मातः श्रीकुलकुण्डली प्रियकरे काली-कुलोद्दीपनेः,
तत्स्थानं प्रणमामि भद्रवनिते मामुद्धर त्वं पशुम्॥ 8॥
कुण्डली-शक्ति-मार्गस्थं स्तोत्राष्टक-महाफलम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स वै योगी भवेद् ध्रुवम्॥ 9॥

उपर्युक्त स्तोत्र का प्रातः उठते ही कुण्डली का ध्यान करते हुए पाठ करने से योग-शक्ति की प्राप्ति होती है। पाठ के समय श्लोकों के अर्थों की भावना निम्नलिखित रूप से करें—

हे भगवती कुण्डलिनी! आप वेदों के आदि बीज ओंकार के समान आकृति वाली, लाल आभा से युक्त, अमृतचंद्रिका, जाग्रत कूर्म-वायु का आश्रय लिए हुए, सृष्टि-स्थिति-संहार शक्ति से परिपूर्ण ब्रह्मादि देवों को मोहित करने वाली, वेदवदना, स्वयंभूलिंग को आवेष्टित कर विराजमान, सूक्ष्ममार्ग से गमन कर सहस्रार तक पहुंचने वाली, ब्रह्मज्ञान दात्री तथा विद्युत के समान चमक वाली हैं। आप मेरी रक्षा करें, मेरे दोषों को मिटाएं, सभी ग्रंथियों का भेदन करें तथा मुझ अज्ञानी का उद्धार करें।

❑❑
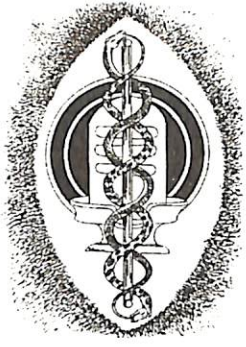
निःश्वास : बीस

कुण्डलिनी साधना में अजपा-जप विधि की महत्ता

मनुष्य का जीवन प्राणवायु पर निर्भर है। जब तक श्वास है, तब तक आस (आशा) है। ये श्वास बाहर से अंदर और अंदर से बाहर जाते-आते रहते हैं। यह क्रिया चौबीसों घंटे चलती रहती है। ये श्वास और निःश्वास चौबीस घंटों की अवधि में 21 हजार 6 सौ बार चलते हैं।

आस्तिक मनुष्य के लिए यह निर्देश है कि वह अपनी इस श्वास-क्रिया को परमात्मा का बिना प्रयत्न के होने वाला जप मानकर उन्हें अर्पित करे। यह समर्पण शरीर में विद्यमान छह चक्रों में स्थित देवताओं का स्मरण करते हुए किया जाता है, उसी को ''अजपा-जप'' कहते हैं। अजपा-जप की विधि निम्नलिखित है—

❑ **मूलाधारे चतुर्दलपद्मे वं शं षं सं चतुरक्षरे चतुष्कोणयन्त्रे ऐरावतवाहने लं बीजे स्थिताय सिद्धि-बुद्धिशक्तिसहिताय कुङ्कुमवर्णाय महागणपतये षट्शतमजपाजपं निवेदयामि।**

❑ **स्वाधिष्ठाने षडदलपद्मे बं भं मं यं रं लं षडक्षरे अर्धचन्द्रयन्त्रे मकरवाहने वं बीजे स्थिताय सरस्वतीशक्तिसहिताय सिन्दूरवर्णाय ब्रह्मणे, षट्सहस्त्रमजपाजपं निवेदयामि।**

❑ **मणिपूरचक्रे दशदलपद्मे डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं दशाक्षरे त्रिकोणयन्त्रे मेषवाहने रं बीजे स्थिताय लक्ष्मीशक्तिसहिताय नीलवर्णाय विष्णवे षट्सहस्त्रमजपाजपं निवेदयामि।**

❑ **अनाहतचक्रे द्वादशदलपद्मे कं खं गं घं ङं. चं छं जं झं ञं टं ठं द्वादशाक्षरे षट्कोणयन्त्रे हरिणवाहने यं बीजे स्थिताय पार्वतीशक्तिसहिताय हेमवर्णाय परमशिवाय षट्सहस्त्रमजपाजपं निवेदयामि।**

❑ **विशुद्धचक्रे षोडशदलपद्मे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः षोडशाक्षरे शून्ययन्त्रे हस्तिवाहने हं बीजे स्थिताय प्राणशक्तिसहिताय शुद्धस्फटिकसंकाशाय जीवाय सहस्त्रमेकजपाजपं निवेदयामि।**

❑ **आज्ञाचक्रे द्विदलपद्मे श्वेतवर्णे हं क्षं द्वयक्षरे लिंगयन्त्रे नरवाहने स्थिताय ज्ञानशक्तिसहिताय विद्युद्वर्णाय गुरवे सहस्त्रमेकजपाजपं निवेदयामि।**

❑ **ब्रह्मरन्ध्रे सहस्त्रदल पद्मे चित्रवर्णे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं. चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं—इति विंशतिवारोच्चारिते सहस्त्राक्षरे विसर्गयन्त्रे बिन्दुवाहने पूर्णचन्द्रमण्डले आनन्दमहासमुद्रमध्ये चिन्मयमणिद्वीपे चित्सारचिन्तामणिमन्दिरे कल्पवृक्षाधः स्थले अव्याकृत-ब्रह्ममहासिंहासने स्थिताय नानावर्णाय वर्णातीताय चिच्छक्तिसहिताय परमात्मने सहस्त्रमेकजपाजपं निवेदयामि।**

इसके पश्चात् कुछ क्षण तक ''हंसः सोऽहम्'' की श्वास-निःश्वास के साथ भावना करें। तदनन्तर शरीर के चक्रों में जिन-जिन देवताओं का ध्यानपूर्वक आवाहन किया है, उनकी मानसोपचार पूजा करें—

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि (कनिष्ठिका और अंगुष्ठ मिलाकर)।

हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि (अंगुष्ठ और तर्जनी मिलाकर)।

यं वाय्वात्मकं धूपमाघ्रापयामि (तर्जनी और अंगुष्ठ मिलाकर)।

रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि (अंगुष्ठ और मध्यमा मिलाकर)।

वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि (अंगुष्ठ और अनामिका मिलाकर)।

सं सर्वात्मकान् ताम्बूलादिसर्वोपचाराचन् समर्पयामि (अंगुष्ठ सहित सभी उंगलियों से)।

नोट—अजपा-जप के प्रकार भी भिन्न-भिन्न हैं जिनमें इष्ट बीजमंत्र एवं इष्टमंत्रों के प्रयोग होते हैं।

उपरोक्त अजपा-जप के पश्चात् प्रात:स्मरण, भूमि-प्रार्थना, शौच, दंतधावन, स्नानादि कर्म करके संध्या करनी चाहिए। तदनन्तर पूजा आरंभ की जाती है। संध्या का विशिष्ट परिचय न देकर केवल हम यह कहेंगे कि विधि कोई भी हो, किन्तु संध्या अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि यह समस्त कर्मों की मूल है। इसके बिना अन्य कर्म मूलहीन होते हैं, जिससे अस्थिरता और अपरिपक्वता बनी रहती है।

संध्या के समय गायत्री-जप भी परमावश्यक है। ब्रह्मयज्ञ और तर्पण भी साधना करने के लिए आवश्यक माने गए हैं। द्विजमात्र के लिए ये कर्म नित्य कर्त्तव्य हैं। इन्हें यथासंभव विद्वान ब्राह्मणों से सीखकर करने से बहुत ही लाभ होता है तथा शास्त्रीय नियमों का भी रक्षण होता है।

❑❑

निःश्वास : इक्कीस

यौगिक साधना की पूर्ति

गुरु-चरणों की अनुकम्पा प्राप्त करके साधना-पथ की ओर अग्रसर होने वाले साधकों के लिए महागणपति की साधना नितांत आवश्यक बतलाई गई है। जिस मार्ग पर चलकर हमें अपने लक्ष्य तक पहुंचना है, उसमें आने वाले विघ्नों का अपसारण तथा कण्टकाकीर्ण पथ को कुसुम-कोमल बनाने के लिए भगवान गणपति का मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त कर लेना साधक का सर्वप्रथम कर्त्तव्य बन जाता है।

गणपति केवल विघ्न दूर करने वाले देव नहीं हैं, अपितु ये ऋद्धि-सिद्धि के दाता, विद्या प्रदाता, मांगलिक कार्यों के पूरक, संग्राम-संकट के निवारक तथा सर्वविधि मंगलकारी हैं। यौगिक साधना की पूर्ति में भी महागणपति की कृपा प्राप्ति अत्यावश्यक है। कुण्डलिनी जागरण से पहले गणपति की उपासना का विधान इसलिए भी है कि ध्यान-

साधना में आगे चलकर कोई विघ्न-व्यवधान आए, तो इनके प्रभाव से उसकी प्रतिक्रिया समाप्त, कुंठित की जा सके।

स्वतंत्र देव के अतिरिक्त गणपति को पंचबालक, षट्कुमार, सप्तबालक आदि गणों में भी सम्मिलित माना गया है। उद्धारकोश के अनुसार निम्नलिखित पद्य स्मरणीय हैं—

पंचबालक

हेरम्ब-शरजन्मानौ कार्तवीर्यार्जुनस्तथा।
हनुमछ्-भैरवावेतौ भाषिताः पंचबालकाः॥

षट्कुमार

हेरम्ब-शरजन्मानौ महामृत्युंजयस्तथा।
कार्तवीर्यार्जुनश्चैव हनुमद्-भैरवी तथा।

सप्तबालक

गणेशो बटुकश्चैव स्कन्दो मृत्युंजयस्तथा।
कार्तवीर्यार्जुनोऽप्येवं सुग्रीवो हनुमांस्तथा॥
यामले रुद्रशब्दादौ भाषिताः सप्तबालकाः।

अनन्तरूपधारी भगवान गणपति का अट्ठाईस अक्षरों का महामंत्र इस प्रकार सूचित है—

महामंत्र

प्रणवं कमलां लज्जा कन्दर्प मठ-बीजकम्।
शंकरम् षट् शिरोमन्त्रं तत पल्लवमुद्धरेत्॥
गणपते पश्चाद् वाच्यं वर-वरदमेव च।
अन्ते पीटद्व्यं ज्ञेयमष्टाविंशाक्षरो मनुः॥

इसके अनुसार मूलमंत्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—"ओम् श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लीं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं वशमान्य स्वाहा।"

मंत्र का जप-विधान निम्नलिखित है—

विनियोग

ओम् अस्य श्रीमहागणपतिमंत्रस्य गणक ऋषिर्निचृद्गायत्रीच्छन्दो महागणपतिर्देवता गं बीजं स्वाहा शक्तिः ग्लौं कीलकं मम श्रीमहागणपतिप्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

गणकऋषये नमः (शिरसि), **निचृद्गायत्रीच्छन्दसे नमः** (मुखे), **महागणपतिदेवतायै नमः** (हृदये), **गं बीजाय नमः** (गुह्ये), **स्वाहा शक्तये नमः** (पादयोः), **ग्लौं कीलकाय नमः** (नाभौ), **महागणपति-प्रसाद सिद्धयर्थे जपे विनियोगाय नमः** (सर्वांगे)

कर-षडंगन्यास

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गां (अंगुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः)
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गीं (तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा)

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गूं (मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्)
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गैं (अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुम्)
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गौं (कनिष्ठिकाभ्यां नमः, नेत्राभ्याम् वौषट्)
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गः (करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्)

ध्यान

बीजारू-गदेक्षुकार्मुकरुजा-चक्राब्जपाशोत्पला,
व्रीह्यग्रस्वबिषाणरत्न-कलश-प्रोद्यत्मकराम्भोरुहः।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरयाश्लिष्टो ज्वलद्भूपया,
विश्वोत्पत्ति-विपत्ति-संस्थितिकरो विघ्नेश इष्टार्थदः॥

इसके पश्चात् मानसोपचार पूजा करके मंत्र-जप किया जाता है।

मानसोपचार में—**लं पृथिव्यात्मकं गन्धं कल्पयामि नमः।** (यहां 'गंध' आदि पदों में पहले पूज्य देवता का नाम जोड़ने का विधान है)।

हं आकाशात्मकं पुष्पं कल्पयामि नमः।
यं वाय्वात्मकं धूपं कल्पयामि नमः।
रं वह्न्यात्मकं दीपं कल्पयामि नमः।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं कल्पयामि नमः।
सं सर्वात्मकं ताम्बूलादि सर्वोपचारान् कल्पयामि नमः।

जप के पश्चात् जप-समर्पण करें और स्तोत्र पाठ करें। इस स्तोत्र के संबंध में यह कहा गया है कि यह स्तोत्र कलियुग में शीघ्र सिद्धि देने वाला है तथा इसके लिए न्यास, संस्कार, होम, तर्पण, मार्जन आदि भी आवश्यक नहीं हैं। गणपति-पूजन, जप और पाठ करने से ही यह सिद्ध होता है।

गणपति के समक्ष सात मुद्राएं दिखाने का भी बड़ा माहात्म्य है—दंत, पाश, अंगकुश, विघ्न, परशु, मोदक और बीजापूर ये सात मुद्राएं हैं। इन मुद्राओं का ज्ञान किसी योग्य साधक से लिया जा सकता है।

❑❑

निःश्वास : बाईस

कुण्डलिनी जागरण में श्रीविद्या का महत्त्व

तंत्र-ग्रंथों में श्रीविद्या की उपासना पद्धति पर पर्याप्त विस्तार से लिखा गया है। इस विद्या की उपासना में दीक्षा-क्रम के आधार पर अनेक नामों से उपास्य देवियों की दीक्षाएं हैं और उनके मंत्रों का क्रम भी अति विस्तृत है। साधक अपनी दीक्षा के क्रम से ही क्रमशः आगे बढ़ते हुए परम लक्ष्य की सिद्धि प्राप्त करता है।

श्रीविद्या साधना का मूल आधार ''श्रीयंत्र'' है। इसी का दूसरा नाम ''श्रीचक्र'' है। यह यंत्र भगवती त्रिपुर सुंदरी का है। यंत्रों में इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। योगिनी हृदय में इस यंत्र का माहात्म्य वर्णित है। पराशक्ति अपने संकल्प मात्र से विश्व ब्रह्माण्ड में समाहित होकर स्वयं अपने रूप-लावण्य का आनंद लेती है। इस अपरिमेय आनंद के समय श्रीचक्र का प्राकट्य होता है। भैरवायमल में कहा गया है, *''चक्रं त्रिपुर सुन्दर्या ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि''*, अर्थात् हे ईश्वरी! त्रिपुर सुंदरी चक्र का आकार ब्रह्माण्ड की तरह है। भावनोपनिषद् में कहा गया है कि नवचक्रमयी देह, अर्थात् इस देह में नवचक्र हैं। श्रीयंत्र में ''श्रीं'' शब्द का अर्थ बताया गया है कि ''जो सुना जाए वह श्री है''। जो नित्य परब्रह्म का आश्रवण करती है, वह ''श्री'' है। शिव, शक्ति की एकरूपता आगम ग्रंथों में भी प्रतिपादित की गई है, जैसे—

न शिवेन बिना देवी, न देव्या बिना शिवः।
नान्योरन्तरः किंचिच्चन्द्रचान्द्रिकयोरिव॥

शिव के बिना देवी नहीं और देवी के बिना शिव नहीं। इन दोनों में चंद्रमा एवं उसकी चंद्रिका के समान किंचित् भी भेद नहीं है।

ब्रह्म की उत्पत्ति, स्थिति और पालन की सामर्थ्य प्राप्त करने का श्रेय ''श्री'' के कारण ही है। श्री शंकराचार्य के अनुसार—

शिवः शक्त्या युतो तद्भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेदं देवो न खलु कुथलः सपन्दितुमपि॥

तात्पर्य यह है कि जो शिव, शक्ति के सहित होता है वही सामर्थ्य वाला होता है। जो इससे युक्त नहीं होता, वह देव तो स्पंदन करने योग्य ही नहीं है।

ब्रह्म स्वयं निष्कल निरंजन तथा निर्गुण है। शैव आगम में उल्लेख है कि—

अचिन्त्यमिताकार शक्ति स्वरूपा
प्रति व्यक्त्यधिष्ठान सत्यैक मूर्त्तिः,
गुणातीत निर्द्वंद्व बोधैक गम्या
त्वमेका परब्रह्म रूपेण सिद्धा।

अर्थात् चिंतन करने से परे, अमित आकार एवं शक्ति स्वरूप, प्रति व्यक्ति में अधिष्ठित सत्ता मूर्त्ति, गुणों से अलग निर्द्वन्द्व बोध ही केवल जानने के योग्य आप एक परब्रह्मस्वरूप सिद्ध हैं।
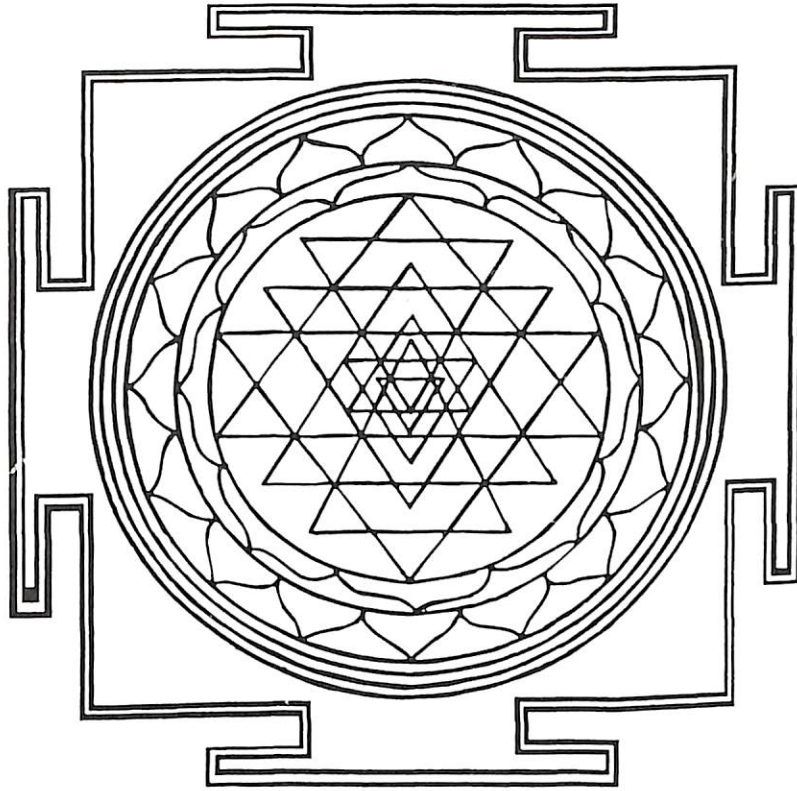
श्रीयंत्र के चित्रित स्वरूप में कई वृत्त हैं। सबसे अंदर वाले केन्द्र में बिंदु स्थित है। इस बिंदु के चतुर्दिक नौ त्रिकोण बनाए गए हैं। इनमें से पांच की नोक ऊपर और चार त्रिकोण की नोक नीचे की ओर है। उन्हें भगवती का प्रतिनिधि माना जाता है तथा उन्हें शिव युवती की संज्ञा दी गई है। नीचे की नोक वाले त्रिकोणों को शिव का प्रतिनिधि मानकर उन्हें श्रीकंठा कहा गया है।

ऊर्ध्वमुखी पंचत्रिकोण पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच तन्मात्राएं और पांच महाभूतों की प्रतीक हैं। शरीर में यह अस्थि, मेदा, मांस, अवृक और त्वक् के रूप में विद्यमान हैं। अधोमुखी चार त्रिकोण शरीर में जीव, प्राण, शुक्र और मज्जा के द्योतक हैं। ब्रह्माण्ड में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के प्रतीक हैं। पांच ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण नौ मूल प्रकृतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस प्रकार यंत्र में एक आठ दल वाला, दूसरा सोलह दल वाला कमल है। पहला अंदर वाले वृत्त के बाहर और दूसरा दूसरे वृत्त के बाहर है। आनंद लहरी में भगवान शंकराचार्य ने लिखा है—

चतुर्भिः श्रीकंठो शिव युवतिभिः पंचभिरमि।
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवनिरपि मूल प्रकृतिभिः॥
त्रयश्चत्वारि हृद्बसुदलकलाब्ज त्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्धः तव भवन कोणः परिणताः॥

तात्पर्य यह है कि श्रीयंत्र की रचना के अनुसार चार श्रीकंठों के, पांच शिव की युवतियों के, शंभु की नौ अभिन्न मूल प्रकृतियों के, तैंतालीस वसुदल कलाब्ज की त्रिवलय, तीन रेखाओं के साथ आपके (त्रिपुर सुंदरी) भवन-कोण में परिणत होते हैं।

श्रीयंत्र में ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण को अग्नितत्त्व, वृत्त को वायु तत्त्व, बिन्दु को आकाश तत्त्व और भूपुर को पृथ्वी तत्त्व माना गया है। यह यंत्र सृष्टि क्रम का सूचक है तथा शैव मतावलंबी इस यंत्र की उपासना करते हैं। आद्य शंकराचार्य इस मत के प्रवर्तक माने जाते हैं तथा उनके प्रत्येक पीठ में श्रीयंत्र प्रतिष्ठित है।
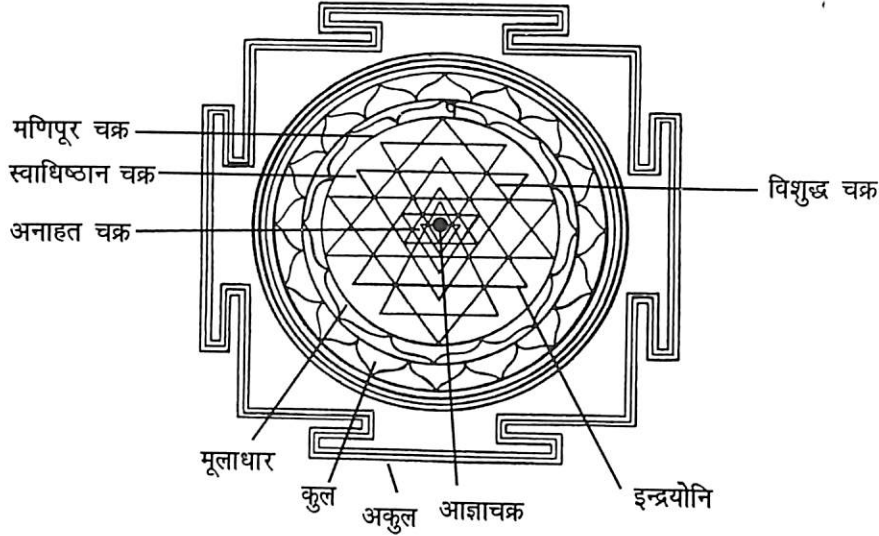
साधक की पात्रता के अनुसार इसकी (श्रीयंत्र की) ''बाह्यपूजा'' और शरीर में भावना करते हुए ''आंतर-पूजा'' के विधान हैं। ''आंतर-पूजा'' यद्यपि गहन विषय है, किन्तु यह निरंतर अभ्यास से शनैः शनैः समझ में आने लगता है। तंत्र ग्रंथ ''रुद्रयामल'' में इसके लिए बहुत से विधान वर्णित हैं। शरीरस्थ योगचक्रों की स्तुतियां, ध्यान और उन्हें उद्बुद्ध करने के लिए मंत्र जप भी विस्तार से बतलाए हैं। उनमें एक प्रयोग ''उद्घाटन-कवच'' का भी है, जिसका परिचय और मूल पाठ निम्नलिखित है—

उद्घाटन-कवच

योग-साधना के मूलतः चार प्रकार माने गए हैं। यथा—हठयोग, मंत्रयोग, लययोग और राजयोग। इस योग चतुष्टयी में हठयोग—शरीर शुद्धि, यम, नियम, आसन और प्राणायाम—की साधना के स्तर को समुन्नत बनाने की एक आवश्यक भूमि है। हठयोग की भूमि पर ही मंत्रयोग की प्रतिष्ठा होती है, अतः मंत्रयोग का समस्त ''प्रासाद'' इसी पर स्थित है। मंत्रयोग के पश्चात् लययोग और राजयोग की दिशा में प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है।

मंत्रयोग की साधना के निम्न दो पार्श्व हैं—विश्व विज्ञान, संसार-बंधन-त्राण।

ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। यथा—

मननाद् विश्वविज्ञानं त्राणं संसार-बन्धनात्।
यतः करोति संसिद्धिं ''मंत्र'' इत्युच्यते बुधैः॥

मंत्र के स्थूल एवं सूक्ष्म रूप से पुनः दो अंग माने गए हैं, जिनमें स्थूल रूप में—प्रणव, बीज, कूट, अक्षर तथा इनके विशिष्ट संयोजन से संबद्ध मंत्र के पल्लवादि-विधान आते हैं, किन्तु सूक्ष्म रूप में उनके स्वरूप, ध्यान, शक्ति, गति, क्रियाकारित्व आदि का समावेश होता है।

इनमें से भी सर्वाधिक महत्त्व कुण्डलिनी-जागरण का है और यह कार्य शरीरस्थ मूलाधार आदि चक्रों के उन्मीलन की अपेक्षा रखता है। चक्रों के उन्मीलन का प्रकार जप एवं ध्यान से संभव है। तत्तद चक्रों की अधिष्ठात्री

देवता जब तक प्रसन्न नहीं होती, तब तक इस कार्य में भी बाधाएं आती हैं। ये बाधाएं केवल इसी जन्म से संबद्ध न होकर अपर जन्म में भी बाधक बनती हैं। इसी दृष्टि से शक्ति-उपासकों के लिए निम्नलिखित एक ''उद्घाटन-कवच'' स्तोत्र दिया जा रहा है, जिसका भक्तिपूर्वक अजपा-जप के पश्चात् पाठ करना अत्यंत लाभप्रद माना गया है।

कवच-पाठ

मूलाधारे स्थिता देवि, त्रिपुरा चक्रनायिका।
नृजन्मभीति-नाशार्थं, सावधना सदाऽस्तु मे॥ 1॥
स्वाधिष्ठानाख्यचक्रास्था, देवी श्रीत्रिपुरेशिनी।
पशुबुद्धिं नाशयित्वा, सर्वेश्वर्यप्रदाऽस्तु मे॥ 2॥
मणिपूरे स्थिता देवी, त्रिपुरेशीति विश्रुता।
स्त्रीजन्म-भीतिनाशार्थं, सावधाना सदाऽस्तु मे॥ 3॥
स्वस्तिके संस्थिता देवी, श्रीमत्त्रिपुरसुंदरी।
शोकभीति-परित्रस्तं, पातु मामनधं सदा॥ 4॥
अनाहताख्य-निलया, श्रीमत्त्रिपुरवासिनी।
अज्ञानभीतितो रक्षां, विदधातु सदा मम॥ 5॥
त्रिपुराश्रीरिति ख्याता विशुद्धाख्य-स्थलस्थिता।
जरोद्भव-भयात् पातु, पावनी परमेश्वरी॥ 6॥
आज्ञाचक्रस्थिता देवी त्रिपुरामालिनी तु या।
सा मृत्युभीतितो रक्षां, विद्धातु सदा मम॥ 7॥
ललाट-पद्म-संस्थाना, सिद्धा या त्रिपुरादिका।
सा पातु पुण्यसम्भूतिर्भीति-संघात् सुरेश्वरी॥ 8॥
त्रिपुराम्बेति विख्याता, शिरः पद्मे सुसंस्थिता।
सा पापभीतितो रक्षां, विर्दधातु सदा मम॥ 9॥
ये पराम्बापदस्थान-गमने विघ्न-संचयाः।
तेभ्यो रक्षतु योगेशी, सुन्दरी सकलार्तिहा॥ 10॥

उपरोक्त स्तोत्र में भगवती के श्रीचक्र में विराजमान आवरणगत प्रमुख देवियों से प्रार्थना की गई है जो कि चक्र नायिकाएं हैं। यहां नव आवरण रूप नौ शरीरगत चक्र एवं हृदय में विराजमान देवियों से जिन-जिन भयों से रक्षा की प्रार्थना की गई है, उनकी तालिका निम्नलिखित है—

चक्र	*चक्र-नायिका*	*भय*
❑ मूलाधार	त्रिपुरा	नृजन्म
❑ स्वाधिष्ठान	त्रिपुरेशिनी	पशुबुद्धि
❑ मणिपूर	त्रिपुरेशी	स्त्रीजन्म
❑ स्वस्तिक	त्रिपुर सुंदरी	शोक
❑ अनाहत	त्रिपुरवासिनी	अज्ञान

❑ विशुद्ध	त्रिपुराश्री	जरा
❑ आज्ञा	त्रिपुरामालिनी	मृत्यु
❑ ललाटपद्म	त्रिपुरासिद्धा	भीतिसंध
❑ सहस्रार	त्रिपुराम्बा	पाप
❑ बिन्दु	सुंदरी योगेशी	विघ्न

इन सब भयों से निवृत्ति की याचना करते हुए इसमें पराम्बा के चरणों में शरण-प्राप्ति की कामना की गई है, जो उचित ही है। ऐसे ही अंतर्याग के लिए अन्य उपयोगी विधान भी शास्त्रों में वर्णित हैं।

उपर्युक्त चक्रों में ही प्रत्येक आवरण देवी के मंत्र का जप किया जाता है। जैसे-जैसे साधना-क्रम आगे बढ़ता है, उसमें और भी विशिष्ट प्रक्रियाओं का समावेश करते हुए सामुज्य तथा सारूप्य की प्राप्ति तक पहुंचा जा सकता है।

बाह्यपूजा विधान

इसके ''न्यास, पात्रासादन'' और ''अर्चन'' ये तीन महत्त्वपूर्ण अंग हैं। *''न्यासप्रिया तु श्रीविद्या''* इस आगमवचन के अनुसार श्रीविद्या के अंगभूत न्यासों की संख्या अति विशाल है। किन्तु पूजाधिकार सिद्धि के लिए— ब्रह्म विद्यासंप्रदायस्तोत्र, यागमंदिर प्रवेश, तत्त्वाचमन, गुरुपादुकामंत्र जप, घंटापूजन, संकल्प, आसनपूजा, देहरक्षा, दिग्बंधन, मंदिर पूजा, दीपपूजा, भूतशुद्धि, आत्मप्राण-प्रतिष्ठा के बाद मातृकान्यास (दोनों प्रकार का), करशुद्धिंन्यास, आत्मरक्षान्यास, बाला षडंगन्यास, चतुरासनन्यास, वाग्देवतान्यास, बहिश्चक्रन्यास, अंतश्चक्रन्यास, कामेश्वर्यादिन्यास और मूल विद्यान्यास करने चाहिए।

यदि महाषोडशी प्राप्त हो तो षोडशाक्षरी न्यास, सम्मोहन न्यास और महाषोडशाक्षरी के संहार, स्थिति एवं सृष्टिन्यास तक के न्यास अवश्य करने चाहिए। इनके अतिरिक्त लघुषोढादि न्यासों के करने से अभ्युदय होता है, किन्तु यदि नहीं किए जा सकें तो कोई दोष नहीं है।

पात्रासादन में—वर्धनीकलश, सामान्यार्घ्य तथा विशेषार्घ्य की स्थापना एवं पात्रों में वह्नि, सूर्य, सोमकला आदि का पूजन होता है। तदनन्तर शुद्धिपात्र, गुरुपात्र एवं आत्मपात्र की स्थापना और पूजा करके अंतर्याग किया जाता है। यहीं अन्य आचार्यों के मत से अर्घ्यार्चनादि के पात्र भी स्थापित होते हैं।

अर्चन में—आवाहन, चतुःषष्ट्युपचार पूजा, चतुरायतन पूजा, लयांग पूजा, षडंगार्चन, नित्यायजन एवं गुरुमंडलार्चन के पश्चात् आवरणार्चन (उपदेशानुसार सृष्ट्यादि क्रम से) करते हैं। तदनन्तर पंचपंचिका पूजा, षड्दर्शनविद्या, षडाधार, आम्नाय समष्टि, दण्डनाथा, मंत्रिणी एवं ललितानामार्चनपूर्वक अर्चन संपन्न होता है। यहीं अवकाशानुसार सहस्रनामार्चनादि भी किए जाते हैं।

महानैवेद्य, आरती, पुष्पांजलि, प्रदक्षिणा, कामकलाध्यान, बलिदान, जप, पुष्पांजलिस्तोत्र, कल्याणवृष्टिस्तोत्र, सर्वसिद्धिकृतस्तोत्र और क्षमा-प्रार्थना, गुरुस्तोत्रादि का पाठ करके सुवासिनी पूजन, तत्त्वशोधन, पूजासमर्पण देवतोद्वासन शांतिस्तव पाठ के साथ अर्चनविधि पूर्ण होती है। जो साधक इतने विस्तार से पूजादि न कर पाए, उनके लिए आचार्यों ने अनेक प्रकार की लघुपूजा विधियां भी बनाई हैं, जिनमें कलश और शंख (सामान्यार्घ्य पात्र) स्थापन करके निम्नलिखित पद्धति से अर्चन करना चाहिए—

संक्षिप्त यंत्र पूजा

आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ च संकीर्त्य। श्रीगुरुं महागणपतिं भगवतीं महात्रिपुरसुन्दरीं च प्रणम्य पूजयेत्।

ध्यानम्

बालार्कारुणतेजसं त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीं,
नानालंकृतिराजमानवपुषं बालोडुराड्शेखरम्।
हस्तैरिक्षुधनुः सृणीसुमशरान् पाशं मुदा विभ्रतिं,
श्रीचक्रस्थितसुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां भजे॥

इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूजयेत् ततश्च—

❑ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं सौः चतुरस्त्रयात्मकत्रैलोक्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविंशति-शक्तिसहितप्रकटयोगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नमः।

❑ ॐ त्रिवृत्तात्मकत्रिवर्गसाधकचक्राधिष्ठात्र्यै कालरात्रयादिसहित-मातृकायोगिनीरूपायै त्रिपुरेशिनी देव्यै नमः।

❑ ॐ ऐं क्लीं सौः षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामाकर्षिण्यादि षोडश शक्तिसहितगुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरेश्वरी देव्यै नमः।

❑ ॐ ह्रीं क्लीं सौः अष्टदल पद्मात्मकसर्वसंक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै अनंगकुसुमाद्यष्टशक्ति सहितगुप्ततरयोगिनीरूपायै त्रिपुरसुन्दरी देव्यै नमः।

❑ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हैं हक्लीं हसौः चतुर्दशारात्मक-सर्वसौभाग्यदायक चक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसंक्षोभिण्यादि चतुर्दशशक्तिसहितसम्प्रदाययोगिनीरूपायै त्रिपुरावासिनीदेव्यै नमः।

❑ ॐ हसैं हस्क्लीं हस्सौः बहिर्दशारात्मक सर्वार्थसाधकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसिद्धिप्रदादि दशशक्तिसहितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्रीदेव्यै नमः।

❑ ॐ ह्रीं श्रीं सौः अष्टारात्मक सर्वरोगहर चक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्तिसहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नमः।

❑ ॐ ह्रीं क्लीं व्लें अंतर्दशारात्मकसर्वरक्षाकरचक्राधिष्ठात्यै सर्वज्ञादिदश—शक्तिसहित निगर्भयोगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नमः।

❑ ॐ हस्त्रैं हस्क्ल्रीं हस्त्रोः त्रिकोणात्मक सर्वसिद्धिप्रदचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादि त्रिशक्ति सहितातिरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नमः।

❑ ॐ (मूलमंत्रः) बिन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडंगायुधदशशक्तिसहितपरापराति रहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः।

इसके पश्चात् नैवेद्यादि विधि करके नित्यकृत्य पूर्ण कर लें।

वस्तुतः यह महाविद्या ''ब्रह्मविद्या'' है। इसकी 1. स्थूल, 2. सूक्ष्म और 3. परा के रूप में त्रिविध उपासना होती है। पराशक्ति की विज्ञानानन्दघन ब्रह्म है। विज्ञानानन्दघन ब्रह्म का तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म एवं गुह्य होने के कारण शास्त्रों में उसे नाना प्रकार से समझाने की चेष्टा की गई है।

यह वास्तविक सत्य है कि किसी भी कार्य को करने के लिए मनुष्य में शक्ति का होना आवश्यक है और सबको शक्ति प्रदान करने वाली पराशक्ति ही उसकी अधिष्ठात्री देवता है। वही परब्रह्मस्वरूपिणी है। अतः उसकी यथाशक्ति उपासना करते हुए *''मयायज्ञेश्व यज्ञेश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः''* के अनुसार ब्रह्म सम्मिलन के लिए अपने शरीर को नित्यपूजा, नैमित्तिक पूजा तथा जपादि के द्वारा ब्रह्मरूप बनाना चाहिए। इससे लक्ष्य तक पहुंचने की क्षमता प्राप्त होती है।

❑❑

निःश्वास : तेईस

पंचामरा योग

योग-सिद्धि प्राप्ति के लिए यौगिक देह बनाना अत्यावश्यक है। जैसे किसी उत्तमोत्तम मेहमान के आने अथवा बुलाने से पूर्व हम उनके योग्य आवास-निवास की पूरी समुचित व्यवस्था करते हैं, उसी प्रकार विभिन्न मलों से दूषित इस शरीर में सर्वातिशायी परमात्मा और उनकी महनीय शक्ति के निवास के लिए योग्य व्यवस्था करना अत्यावश्यक है।

आंतरिक-शुद्धि से पूर्व बाह्य-शुद्धि के लिए तंत्रों में ''पंचामरा-साधन'' का निर्देश दिया है। इसी में पांच अमर वस्तु, जिनका प्रयोग होता है, ये हैं—दूर्वा ग्रंथियुक्त, विजया (भांग), बिल्वपत्र, निर्गुण्डी, काली तुलसी।

विशेष बात यह है कि इनमें विजया के पत्र दुगुने और अन्य चार समान भाग में लेकर उनका अलग-अलग चूर्ण बना लें तथा उनका मिश्रण करते समय निम्नलिखित मंत्रों का एक बार पठ करें—

ॐ त्वं दूर्वेऽमरपूज्ये त्वमममृत-समुद्भवे।
अमरं मां सदा भद्रे कुरुष्व नृहरिप्रिये॥
ॐ संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदाऽनधे।
भैरवाणां च तृप्तयर्थे पवित्रा भव सर्वदा॥
ॐ काव्यसिद्धिकारी-देवी-बिल्वपत्रनिवासिनी।
अमरत्वं सदा देहि शिवतुल्यं कुरुष्व माम्॥
ॐ निर्गुण्डि परमानन्दे योगानामधिदेवते।
रक्ष माममरे देवि भावसिद्धिप्रदे नमः॥
ॐ विष्णोः प्रिये महामाये महाकालनिवारिणि।
मां सदा रक्ष तुलसि मामेकममरं कुरु॥

फिर सबको मिलाकर—

ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि
अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि स्वाहा।

इस मंत्र से धेनुमुद्रा, योनिमुद्रा तथा मत्स्यमुद्रा दिखाते हुए प्रणाम करें। सात बार यह बिना मंत्र के गुरु-स्मरणपूर्वक तथा सात बार इष्टमंत्र बोलते हुए प्रत्येक के साथ ''**तर्पयामि नमो नमः**'' जोड़कर तर्पण करने का भी विधान है। इसके पश्चात्—

ॐ ऐं वद वद वाग्वादिनी मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव
सर्वसत्त्व वशंकरि शत्रुकण्ठ त्रिशूलिनी स्वाहा।

इस मंत्र से चूर्ण का भक्षण करें। इन पांचों वस्तुओं में क्रमशः गणपति, सरस्वती, शिव, योगिनी तथा विष्णु का

निवास होने से ये देवता साधक पर प्रसन्न होकर उसे सिद्धि प्रदान करते हैं। योग-साधकों के लिए 1. नेती, 2. दंती, 3. धौती, 4. नौली और 5. क्षालिनी के लिए जो जहां उपदेश किया गया है, वह भी ''पंचामरा-योग'' के नाम से निर्दिष्ट है।

इस योग से कुण्डलिनी जागरण में सहयोग प्राप्त होता है।

पंचतिक्त प्रयोग

जप-संबंधी निर्देशों में यह भी कहा गया है—

पंचतिक्तं मुखे क्षिप्त्वा जपं कृत्वा समर्पयेत्।
तस्याहं सकलां पृथ्वीं ददामि पुरुषोत्तम॥
कौलं च पंच तिक्तं स्यात् कौलं कुलसमुद्भवम्।
तस्माद् देयं प्रयत्नेन देव्याश्चोद्भवमिच्छता॥
एला जातीफलं चैव कर्पूरं च लवंगकम्।
जातिपत्रं तथा देवि पंचतिक्तमिदं प्रियम्॥

अर्थात् जो व्यक्ति जप के समय मुख में 'पंचतिक्त' वस्तुओं—जिनमें '1. इलायची, 2. जायफल, 3. कपूर, 4. लौंग, 5. जावित्री' हैं, को रखकर देवी-मंत्रों का जप करता है और भगवती को जप समर्पित करता है, उसको मैं समस्त पृथ्वी दे देता हूं अर्थात् उसके लिए कोई वस्तु अदेय नहीं रहती। ऐसे ही अन्यान्य देवताओं के जप में भी कुछ विशिष्ट वस्तुओं के मुख में रखने का निर्देश है। कौल-मार्गियों के लिए ये पंचतिक्त ही 'कौल' हैं, क्योंकि ये कुल-वृक्षों से उत्पन्न हैं।

❑❑

नि:श्वास : चौबीस

नाभि-चक्र का जागरण

साधक बीज प्राप्त कर उसे काया रूप में प्रस्फुटित करता है इससे उसकी साधकोचित साधना पूर्ण होती है। योगी शिष्य का आधार सबल होता है, अत: उसे इस प्रकार की साधना की आवश्यकता नहीं है। काया लाभ के पश्चात् साधक योगभूमि प्राप्त करता है, तथापि वह योगी ही रहता है।

दर्पी योगी नहीं बन सकता।

वह अज्ञात रूप-से उत्तराभिमुख गति से योगधारा में प्रवाहित होता हुआ महाशक्ति के अंक में अर्थात् परमाप्रकृति के स्वरूपभूत कमलदल में विशेष लाभ करता है। इसमें संदेह नहीं कि वह अब योगी है, क्योंकि बिना योग पथ का आश्रय लिए परमाप्रकृति के अंकदेश में उपवेशन कर सकना संभव नहीं।

इतने पर भी वह मात्र योगी है, दर्पी योगी नहीं। वह मध्य बिंदु प्राप्त नहीं कर सकता। अपरदिक जो प्रारंभ से योगी है, उसे प्रारंभ से ही योगकाया (अर्थात् इष्ट अथवा गुरुकाया) प्राप्त रहती है।

उसका अंतर्निहित बल (आधार) श्रेष्ठतर होता है। इसलिए गुरु उसमें प्रारंभ से (बीज नहीं देते) बीज का विकास अर्थात् कायादान कर देते हैं। इसका फल यह है कि योगकर्म का अनुष्ठान करते-करते गुरु प्रदत्त काया का विकास हो जाता है।

पूर्ण विकास हो जाने पर चिदाकाश का भेद कर वह योगी गुरु के स्वरूप में स्थान प्राप्त करता है। यह है बोधयुक्त अवस्था। वस्तुत: यही है शिवभाव।

साधक योगी रूप में परिणति प्राप्त कर संतान रूप-से महाशक्ति की गोद में स्थान प्राप्त करते हैं। जो प्रारंभ में ही योगी हैं, उनकी गति भिन्न है। वे कर्म पूर्ण होने पर शिवभाव में स्थित होते हैं। दोनों गतियों में पार्थक्य है। ये योगी खंड योगी के नाम से परिगणित होने योग्य हैं। इसके पश्चात् योग की और भी उच्चतर भूमि है।

जो साधक योगी की स्थिति प्राप्त होने पर मां के क्रोड़ में आसीन होते हैं, उनके लिए इस उच्चतर योगभूमि की प्राप्ति असंभव है। इसके पश्चात् भी अवस्था होती है। पिंड अथवा ब्रह्माण्ड में सहस्रदल के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र नामक स्थान में योगी की स्थिति होती है।

एक प्रकार से इससे ऊर्ध्व कोई स्थान नहीं होता। उससे उच्चतर अवस्था कैसी होगी? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। इसका समाधान अवश्य है। ब्रह्मरन्ध्र में स्थिति होने के पश्चात् भी एक गुह्य स्तर उन्मुक्त होता है इस स्तर की उपलब्धि एवं स्थिति ब्रह्मरन्ध्र की अपेक्षा उच्चतर अवस्था है। उसका वर्णन इस प्रकार है—

वास्तव में ब्रह्मरन्ध्र में स्थिति से भी महाशक्ति का विकास नहीं होता। जो महायोगी परमशिव अवस्था प्राप्त करते हैं, वे निम्नवर्ती समस्त सृष्टि के शिखरदेश पर आरूढ़ होते हैं, तथापि उनके लिए अभी भी प्राप्य अवस्था विद्यमान है। वह अवस्था तभी प्राप्त होगी, जब नाभिकेंद्र का जागरण संभव हो सके। यह अत्यंत दुरूह कार्य है।

शिवत्व के पश्चात् भी इस केंद्र को जगाना अत्यंत दुष्कर है अर्थात् जो योगी महाभाव में स्थित हैं (वे जब तक नाभिचक्र का जागरण संपन्न नहीं कर पाते) उनको शिवावस्था ही प्राप्त है।

नाभिचक्र उद्बुद्ध होने पर परमशिवावस्था की अभिव्यक्ति होती है। शिवभाव एवं परम शिव भाव में अनेक पार्थक्य है। शिव है विश्वातीत, विश्वप्रपंच से अतीत। विश्व एवं शिव के मध्य एक व्यवधान है, जो उस समय भी रह जाता है, अपसारित नहीं होता।

विश्व है जड़ एवं शिव है चैतन्यमय।

वह विश्व के अतीत हैं किन्तु विश्वात्मक नहीं। इसका मात्र कारण यह है कि शिव में अभ्यंतर शक्ति स्फुरण का अभाव है।

शक्ति एवं उसका कार्य है विश्व।

शक्ति अचित है एवं उसका कार्य भी अचित ही है। शिव है चित्त स्वरूप, चित्त जब स्वयं में शक्ति स्फुरण का अनुभव करते हैं, तब वह उचित रूप हो जाते हैं। शक्ति एवं उसके कार्य (विश्व) के साथ चित्त रूपी शिव का समन्वय प्रतिष्ठित होता है।

चित्त रूप शिव एवं अचितरूपा शक्ति में चितशक्ति उन्मेष द्वारा समन्वय होता है और यही है ''नाभि-चक्र का जागरण''।

इसे नाभि केन्द्र भी कह सकते हैं। यह अत्यंत दुर्लभ है, अत: महायोगी भी नाभि-क्रिया का रहस्य नहीं जानते। यहीं से महा कुण्डलिनी की क्रीड़ा प्रारंभ होती है।

यह विचित्र है।

तीनों को आयत्त कर योगीगण महाशक्तिस्थ बिंदु-भेद द्वारा ब्रह्मावस्था प्राप्त करते हैं। ये हैं दर्पी योगी। ये ही हैं महाखण्ड गुरु। ये ही त्रिविध शक्ति जागरण के पश्चात् अखण्ड महागुरु रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं।

जो योगी इन तीन के अंतर्गत मात्र एक कुण्डलिनी को जाग्रत कर कर्म पूर्ण होने के पूर्व ही देह त्याग कर देते हैं, वे महाशक्ति के चक्र पर आसीन होते हैं तथापि वह अस्थायी अवस्था है। दर्पी योगी स्वयं मां बनकर एवं ब्रह्मत्व लाभकर, मां और गुरु के अभिन्न रूप की प्रतिष्ठापना करते हैं। वे मातृ-ऋण शोध करने में समर्थ होते हैं, इनके अतिरिक्त मातृ-ऋण शोधन की क्षमता किसी में नहीं है।

❑❑
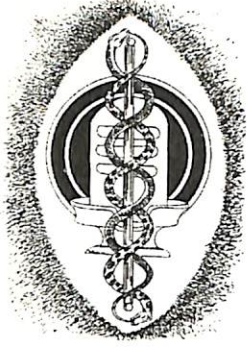
निःश्वास : पच्चीस

छठी इन्द्रिय की शक्ति

यहां सबसे पहले ''त्रिनेत्र'' की बात करते हैं। इस त्रिनेत्र का विवरण शास्त्रों में बखूबी आया है। भगवान शिव को त्रिनेत्र कहा गया है। यह तीसरा नेत्र ''आन्तरिक नेत्र'' या ''ज्ञान नेत्र'' कहा जाता है, जिससे बाहर की सारी वस्तुएं, भौतिक पदार्थ आदि देख सकते हैं, किन्तु इस तीसरे नेत्र के माध्यम से हम उन गुप्त रहस्यों को भी देख सकते हैं, जिन्हें सामान्यतः चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। इस तीसरे नेत्र को ही ''आत्म चक्षु'' कहा गया है।

कुण्डलिनी के चक्र

कुण्डलिनी-जागरण मानव-जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। यह बात पहले कई बार दोहराई जा चुकी है कि मानव-शरीर में कुछ विशेष चक्र सन्निहित हैं, जो कि सुप्तावस्था में हैं। ये चक्र अंदर की सारी चेतना को जाग्रत करने में समर्थ हैं।

इसका प्रारंभिक चक्र मूलाधार कहलाता है। इसके बाद क्रमशः स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार चक्र हैं। इन सब चक्रों में आज्ञा चक्र का महत्त्व सबसे अधिक है। यह दो पद्मों में संयुक्त समस्त ब्रह्माण्ड का परिचायक है।

आज्ञा चक्र जाग्रत होते ही साधक को किसी भी मनुष्य के जीवन के बारे में पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है। वह क्षण मात्र में ही भूत-भविष्यकाल को जान लेता है। ऐसा योगी एक स्थान पर बैठा-बैठा संपूर्ण विश्व की हलचल को अनुभव कर लेता है तथा आज्ञा चक्र के माध्यम से ही यह भी जान लेता है कि आने वाले समय में विश्व में कहां-कहां पर क्या-क्या घटनाएं घटित हो सकती हैं अथवा घटने वाली हैं।

इस आज्ञा चक्र को शास्त्रों में तीसरा नेत्र कहा गया है। जो शक्ति तीसरा नेत्र या आज्ञा चक्र के खुलने पर प्राप्त होती है, उसी को ''छठी इन्द्रिय'' या ''सिक्स्थ सेंस'' कहते हैं। इस छठी इन्द्रिय के माध्यम से व्यक्ति उन सारे रहस्यों को जान सकता है, जो सर्वथा अगोचर, गोपनीय और महत्त्वपूर्ण होते हैं।

कई बार चेतना किसी-किसी को स्वतः प्राप्त हो जाती है और कभी-कभी प्रयत्न करने पर इस चेतना को हस्तगत की जा सकती है। यों सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति में, थोड़े-बहुत रूप में यह चेतना होती है, जिसके आधार पर वह अनुमान लगाने में समर्थ हो जाता है। किसी व्यक्ति को देखते ही मन में स्वतः यह भाव पैदा हो जाता है कि यह व्यक्ति बदमाश या धूर्त है अथवा वो व्यक्ति धोखेबाज या वो स्त्री कुलटा है, आगे चलकर यह बात सत्य उतरती है, ऐसी चेतना को ही ''छठी इन्द्रिय'' कहा गया है।

यदि व्यक्ति शुद्ध भावना से मन की आंतरिक चेतना से कोई बात कह देता है, तो वह कार्य संपन्न हो जाता है, ऐसी क्रिया को ही हमारे शास्त्रों में ''श्राप'' या ''आशीर्वाद'' कहा है।

छठी इन्द्रिय शक्ति का ज्ञान

मुगल बादशाह हुमायूं का यह किस्सा बहुत मशहूर है। बात उस समय की है, जब हुमायूं रोगावस्था में मृत्यु शय्या पर पड़ा था। दरबार के सारे नीम-हकीमों ने अनेक तजुर्बे किए, दवाइयां दीं, किन्तु हुमायूं को कोई लाभ नहीं हुआ। एक समय ऐसा आया, जब बाबर ने अनुभव किया कि कुछ ही घंटों में हुमायूं की मृत्यु निश्चित है, तब वह उठा।

उसने अपने खुदा से इबादत की, बीमार हुमायूं के पलंग के चारों तरफ घूमकर अल्लाह से प्रार्थना की कि वह हुमायूं को जीवन दे दे, बदले में चाहे उसका जीवन ले ले। संभवतः यह प्रार्थना सच्चे हृदय से, पूर्ण आत्मचेतना से की गई थी और इतिहास साक्षी है, उस वक्त से हुमायूं लगातार ठीक होने लगा और बाबर ज्यादा-से-ज्यादा बीमार पड़ता गया। फिर एक दिन ऐसा आया कि बाबर की मृत्यु हो गई।

यह छठी इन्द्रिय की शक्ति का ज्वलंत उदाहरण है। छठी इन्द्रिय की शक्ति के ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं, जिन्हें लिखने बैठें, तो शायद पूरी एक पुस्तक ही बन जाए।

मन की एकाग्रता अपने आप में बहुत बड़ी शक्ति है, जिसके माध्यम से असंभव कार्य भी संभव किए जा सकते हैं। आज संसार भर में मन की एकाग्रता या छठी इन्द्रिय की शक्ति को लेकर बराबर परीक्षण चल रहे हैं और इसमें सफलता भी मिल रही है।

भारत में इस अतीन्द्रिय शक्ति या मन शक्ति से सम्बंधित चमत्कारी बातों से सैकड़ों ग्रंथ भरे पड़े हैं। ऋषियों ने वरदान देकर या आशीर्वाद देकर एक क्षण में कठिन-से-कठिन कार्य संपन्न कर दिखाए हैं, जो कुण्डलिनी रहस्यों को जान लेता है, वह मन की अतीन्द्रिय शक्तियों पर भी नियंत्रण प्राप्त कर लेता है।

वस्तुत शरीर में तीन प्रकार की शक्तियां होती हैं—भौतिक या शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति और मानसिक शक्ति। मानव शारीरिक शक्ति का प्रयोग तो पिछले कई सौ वर्षों से करता आ रहा है। जैसे, बोझा उठाना, परिश्रम करना आदि ऐसी ही शक्ति हैं। इसके अलावा अब मनुष्य पहले की अपेक्षा अधिक बौद्धिक शक्ति का उपयोग करने लगा है। यद्यपि वैज्ञानिकों के अनुसार अभी भी मनुष्य अपनी बौद्धिक क्षमताओं का बौद्धिक शक्ति का तीस प्रतिशत से अधिक उपयोग नहीं कर पाया है, मनः शक्ति के प्रयोग के बारे में तो वह अभी तक कोरा है और केवल उसका पांच प्रतिशत ही उपयोग करने में समर्थ हो सका है।

ध्यान, धारणा, समाधि या कुण्डलिनी जागरण के द्वारा ही इन मनःशक्ति का विकास होता है। निरंतर अभ्यास करने पर मनः शक्ति या संकल्प शक्ति बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है। इस शक्ति को प्राप्त कर साधक प्रत्येक कार्य में समर्थ हो जाता है। कोई कार्य उसके लिए असंभव नहीं रहता। प्राचीन योगियों के अनुसार कुण्डलिनी जागरण कर चक्रों को जाग्रत करने से अथवा नित्य आधा घंटा किसी एकांत स्थान पर बैठकर ध्यान लगाने (त्राटक क्रिया) से स्वयं में उस अद्वितीय शक्ति का अनुभव किया जा सकता है। किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कुण्डलिनी का जागरण ही है।

❑❑

निःश्वास : छब्बीस

शरीरस्थ मंत्राक्षर

भगवान शिव के महामृत्युंजय मंत्र के अंतर्गत विभिन्न प्रकाशात्मक वर्ण शरीर में स्थित विभिन्न शक्तियां मंत्रजप से जाग्रत होकर जीवन को सबल और सुरक्षित बनाती हैं तथा विघ्नों का नाश करती हैं। कौन-कौन वर्ण किस-किस शक्ति का सजातीय है और वह शक्ति शरीर के किस-किस स्थान में रहती है? इसका महर्षि वशिष्ठ ने विस्तार *''देवो भूत्वा देवं यजेत्''* के सिद्धांत पर बतलाया है।

महामृत्युंजय मंत्र के 33 अक्षर हैं जो महर्षि वशिष्ठ के अनुसार 33 दिव्य-शक्तियों (देवताओं) के द्योतक हैं। इन देवताओं की गणना इस प्रकार है—8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, 1 प्रजापति एवं 1 वषट्कार—ये 33 देवता प्राणियों के भिन्न-भिन्न शरीर के अंगों में स्थित हैं। सबल तथा जाग्रतावस्था में ये शक्तियां प्राणियों के शरीर की रक्षा और संहारक शक्तियों का विनाश करती हैं।

महामृत्युंजय मंत्र

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

मंत्राक्षरों के अर्थ—

- **त्रि**—प्राण (ध्रुव वसु) का बोधक है जो सिर में स्थित है।
- **यम्**—अध्वर वसु (प्राण) का बोधक है, जो मुख में स्थित है।
- **ब**—शक्ति (साम वसु) का बोधक है जो दक्षिण कर्ण में स्थित है।
- **कम्**—जल वसु (देवता) का बोधक है जो वाम कर्ण में स्थित है।
- **य**—वायु वसु का बोधक है जो दक्षिण बाहु में स्थित है।
- **जा**—अग्नि वसु का बोधक है जो वाम बाहु में स्थित है।
- **म**—प्रत्यूष वसु का बोधक है जो दक्षिण बाहु-मध्य में स्थित है।
- **हे**—प्रयास वसु का बोधक है जो मणिबंध में स्थित है।
- **सु**—वीरभद्र रुद्र का बोधक है जो दक्षिण हस्त के अंगुलिमूल में स्थित है।
- **ग**—शंभु रुद्र का बोधक है जो दक्षिण हस्तांगुलि के अग्र भाग में स्थित है।
- **न्धिम्**—गिरीश रुद्र (शक्ति) का बोधक है जो वाम बाहुमूल में स्थित है।
- **पु**—अजैकपात् रुद्र (शक्ति) का द्योतक है जो वामहस्त के मध्य में स्थित है।
- **ष्टि**—अहिर्बुध्न्य रुद्र का बोधक है जो वाम हस्त के मणिबंध में स्थित है।
- **व**—पिनाकी रुद्र (प्राण) का बोधक है जो वाम हस्तांगुलिमूल में स्थित है।

- ❑ **र्ध**—भवानीश्वर रुद्र का बोधक है जो वाम हस्तांगुलि के अग्रभाग में स्थित है।
- ❑ **नम्**—कपाला रुद्र का बोधक है जो दक्ष उरुमूल में स्थित है।
- ❑ **उ**—दिक्पति रुद्र का बोधक है जो दक्ष जानु में स्थित है।
- ❑ **र्वा**—स्थाणु रुद्र का बोधक है जो दक्ष गुल्फ में स्थित है।
- ❑ **रु**—भर्ग रुद्र का बोधक है जो दक्ष पदांगुलिमूल में स्थित है।
- ❑ **क**—धाता आदित्य का बोधक है जो दक्षपादांगुलियों के अग्रभाग में स्थित है।
- ❑ **मि**—अर्यमा आदित्य का बोधक है जो वाम उरुमूल में स्थित है।
- ❑ **व**—मितादित्य का बोधक है जो वाम जानु में स्थित है।
- ❑ **ब**—वरुणादित्य का बोधक है जो वाम गुल्फ में स्थित है।
- ❑ **न्ध**—अंशु आदित्य का बोधक है जो वाम पादांगुलिमूल में स्थित है।
- ❑ **नात्**—भगादित्य का बोधक है जो वामपादांगुलियों के अग्र भाग में स्थित है।
- ❑ **मृ**—विवस्वान् का बोधक है जो दक्ष पार्श्व में स्थित है।
- ❑ **त्योः**—इन्द्रादित्य का बोधक है जो वाम पार्श्व में स्थित है।
- ❑ **मु**—पूषादित्य का बोधक है जो पृष्ठ में स्थित है।
- ❑ **क्षी**—पर्जन्यादित्य का बोधक है जो नाभि में स्थित है।
- ❑ **य**—त्वष्टा आदित्य (शक्ति) का बोधक है जो गुह्य में स्थित है।
- ❑ **मा**—विष्णु आदित्य का बोधक है जो दोनों भुजाओं में स्थित है।
- ❑ **मृ**—प्रजापति (प्राण) का बोधक है जो कण्ठभाग में स्थित है।
- ❑ **तात्**—अमित वषट्कार का बोधक है जो हृदय में स्थित है।

उपर्युक्त वर्णों के अर्थ भी प्राप्त होते हैं, जिनमें शक्तियों सहित देवताओं की बोधकता स्थिति का वर्णन व्याप्त है। यथा—

- ❑ **त्र्यम**—त्रिनेत्रा शक्ति सहित त्र्यक्षेश का बोधक है जो शिखा में स्थित है।
- ❑ **ब**—प्रभेदिनी शक्ति सहित बालार्कतेज का बोधक है जो सिर में स्थित है।
- ❑ **कं**—कल्याणी शक्ति सहित कालानन्तेश का बोधक है जो ललाट में स्थित है।
- ❑ **य**—यज्ञरूपा शक्ति सहित विघ्नेश का बोधक है जो भ्रूमंडल में स्थित है।
- ❑ **जा**—ज्वालामुखी शक्ति सहित जालंधरेश का बोधक है जो नेत्र-युगल में स्थित है।
- ❑ **म**—महाशक्ति सहित महादेवेश का बोधक है जो कर्णयुगल में स्थित है।
- ❑ **हे**—हेमवती सहित हाकिनीश का बोधक है जो नासिका द्वारों में स्थित है।
- ❑ **सु**—सुगंधि सहित सुगंधेश का बोधक है जो कपोल-मंडल में स्थित है।
- ❑ **ग**—गंभीरा सहित गंधेक का बोधक है जो ऊर्ध्वोष्ठ में स्थित है।
- ❑ **न्धिम्**—धीरा सहित महीश (प्राण) का बोधक है जो अधरोष्ठ में स्थित है।
- ❑ **पु**—पूर्णा सहित पुंडरीकाक्षेश का बोधक है जो ऊर्ध्वदंतों में स्थित है।
- ❑ **ष्टि**—अधिष्ठानी सहित अधिष्ठेश का बोधक है जो अधोदंतों में स्थित है।
- ❑ **व**—वरेण्या सहित वरिष्ठेश का बोधक है जो हनुयुगल में स्थित है।
- ❑ **र्ध**—धर्मा सहित धर्मेश का बोधक है जो चिबुक में स्थित है।
- ❑ **नं**—नंदिनी सहित नंदीश का बोधक है जो मुख में स्थित है।

❑ **उ**—उमा सहित ऋद्धीश (प्राण) का बोधक है जो कंठ में स्थित है।
❑ **र्वा**—वामा सहित वरुणेश का बोधक है जो दोनों कंधों में स्थित है।
❑ **रु**—रूपवती सहित रुद्रेश का बोधक है जो भुजयुगल में स्थित है।
❑ **क**—कांति सहित कांतेश का बोधक है जो हृदय में स्थित है।
❑ **मि**—शिवा सहित मीढुष्टमेश का बोधक है जो हृदय में स्थित है।
❑ **व**—वेदगर्भा सहित वेदेश का बोधक है जो स्तनमंडल में स्थित है।
❑ **बं**—बंधिनी सहित बंधिनीश का बोधक है जो हृदय में स्थित है।
❑ **ध**—धनुष्मति सहित धंवीश का बोधक है जो नाभि में स्थित है।
❑ **नात्**—पुष्टि सहित नाकेश्वर का बोधक है जो कटि में स्थित है।
❑ **मृ**—मृत्युनाशिनी सहित मृत्युंजयेश का बोधक है जो गुह्य में स्थित है।
❑ **त्योः**—नित्या सहित नित्येश का बोधक है जो पायु में स्थित है।
❑ **मु**—मुकुंदा सहित मुक्तीश का बोधक है जो दोनों पार्श्वों में स्थित है।
❑ **क्षी**—क्षेमकरी सहित क्षितीश का बोधक है जो उरुमंडल में स्थित है।
❑ **य**—मंत्रभेदिनी सहित योगीश का बोधक है जो गुल्फ युगल में स्थित है।
❑ **मा**—मंत्रप्रभेलिनी सहित मंत्रेश का बोधक है जो पादतलों में स्थित है।
❑ **मृ**—क्षमा सहित अमृतेश का बोधक है जो पैरों के ऊर्ध्व भाग में स्थित है।
❑ **तात्**—तंवीशा सहित तंवीश का बोधक है जो पाद युगल में स्थित है।

पदों के आधार पर प्रत्येक पद में शक्ति और देव की पृथक-पृथक बोधकता के ज्ञान का वर्ण निम्नलिखित है—

❑ **त्र्यम्बकम्**—त्रैलोक्य शक्ति सहित त्रिपुरा-नरेश का बोधक है जो सिर में स्थित है।
❑ **यजा**—सुगंधक शक्ति सहित यज्ञवतीश का बोधक है जो ललाट में स्थित है।
❑ **महे**—मायाशक्ति सहित महत्तत्त्वेश का बोधक है जो कानों में स्थित है।
❑ **सुगन्धिम्**—सुगंधि शक्ति सहित सुगंधीश का बोधक है जो नासिका में स्थित है।
❑ **पुष्टि**—पुरंदरी शक्ति सहित पुरुषेश का बोधक है जो मुख में स्थित है।
❑ **वर्धनम्**—वंशकरी शक्ति सहित वरेश का बोधक है जो कंठ में स्थित है।
❑ **उर्वा**—ऊर्ध्वेश शक्ति सहित उमापतीश का बोधक है जो हृदय में स्थित है।
❑ **रुक**—रुक्मवती शक्ति सहित रूपवतीश का बोधक है जो नाभि में स्थित है।
❑ **मिव**—रुक्मवती शक्ति सहित रूपवतीश का बोधक है (पूर्ववत्) जो कटि में स्थित है।
❑ **बन्धनात्**—बर्बरी शक्ति सहित बालचंद्रमौलीश का बोधक है जो गुह्य में स्थित है।
❑ **मृत्योः**—मंत्रवती शक्ति सहित मंत्रेश का बोधक है जो उरुद्वय में स्थित है।
❑ **मुक्षीय**—मुक्तिकरी शक्ति सहित मुक्तिरीश का बोधक है जो जानुद्वय में स्थित है।
❑ **मा**—महाशक्ति सहित महाकालेश का बोधक है जो जंघाद्वय में स्थित है।
❑ **अमृतात्**—अमृतवती शक्ति सहित अमृतेश का बोधक है जो पादतल में स्थित है।

कुण्डलिनी चक्रों में मंत्रगत वाक्यों के अर्थ

❑ **त्र्यम्बकम**—भूत शक्ति सहित भवेश का बोधक है जो अध:सहस्रार मूलाधार में स्थित है।

- **यजामहे**—शर्वाणी शक्ति सहित शर्वेश का बोधक है जो स्वाधिष्ठान में स्थित है।
- **सुगन्धिम्**—विरूपा शक्ति सहित रुद्रेश का बोधक है जो मणिपूर में स्थित है।
- **पुष्टिवर्धनम्**—वंशवर्धिनी शक्ति सहित पशुपतीश (पुरुषवरदेश) का बोधक है जो अनाहत में स्थित है।
- **उर्वारुकमिव**—उग्रा शक्ति सहित उग्रेश का बोधक है जो विशुद्ध में स्थित है।
- **बन्धनात**—मानवती शक्ति सहित महादेवेश का बोधक है जो आज्ञा में स्थित है।
- **मृत्योर्मुक्षीय**—भद्रकाली शक्ति सहित भीमेश का बोधक है जो सहस्रदल में स्थित है।
- **माऽमृतात्**—ईशानी शक्ति सहित ईशानेश का बोधक है जो सहस्रदल में स्थित है।

मंत्रस्वरूप, अर्थ एवं तात्पर्यार्थ

तत्त्वचिंतकों ने आधिभौतिक अर्थ को स्थूल, आध्यात्मिक अर्थ को सूक्ष्म तथा आधिदैविक अर्थ को पर अर्थ की संज्ञा दी है। इस सिद्धांत का अनुसरण यास्क तथा स्कंदस्वामी आदि सभी आचार्यों ने किया है। इस पद्धति के आधार पर ''त्र्यम्बकम्'' आदि पद और मंत्र के अर्थ निम्नलिखित हैं—

अहिर्बुध्न्य के मतानुसार, ''तिस्रः अंबिकाः यस्य सः त्र्यम्बकः'', अर्थात् इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति—ये तीनों विश्व की माताएं हैं। यह शक्तित्रय जिसके वश में हों, वह त्र्यम्बक कहलाता है। वैदिक परिभाषा में इन तीन माताओं को गायत्रीछन्द (ज्ञानशक्ति), त्रिष्टुप्छन्द (इच्छाशक्ति), जगतीछन्द (क्रियाशक्ति ''अर्थशक्ति'') कहा गया है।

पौराणिक भाषा में क्रियाशक्ति का ही दूसरा नाम अर्थशक्ति है। महर्षि कणाद ने इन तीनों को ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न—इन शब्दों से परिभाषित किया है।

''त्रीणि अम्बकानि (नेत्राणि) संति यस्य स त्र्यम्बकः'', अर्थात् जिसके अग्नि, चंद्र और सूर्य—ये तीन नेत्र (प्रकाश) हैं, वह त्र्यम्बक कहलाता है।

सांख्य दर्शन के प्रेणता महर्षि कपिल ने सत्त्व, रज और तम—ये तीन नेत्र माने हैं। याज्ञिकों ने पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक को तीन नेत्र कहा है, जबकि मीमांसकों की परिभाषा में ऋग्, यजुः और साम—ये तीन वेद ही नेत्रत्रय हैं।

कुमारिल ने ''तंत्रवार्तिक'' में कहा है—

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे॥

इसके अलावा शाण्डिल्य ने 'भक्तिमीमांसा' में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—इन तीनों को त्र्यम्बक (महादेव) के तीन नेत्र माना है।

ज्योतिषियों के मतानुसार भूत, भविष्य और वर्तमान—ये तीनों काल-महाकाल त्र्यम्बक के नेत्र हैं, जबकि वेदांत में चित्त, अहंकार एवं बुद्धि को और ग्यारह योगियों के मत में ''उ, उम्'' इन तीनों (प्रणवाक्षरों) को शिव के तीन नेत्र माना है।

सुगन्धिम—जो आत्मतेज से समस्त तत्त्वों को शोभन-सुगंधमय बनाता है अर्थात् उन-उन वस्तुओं को स्व-स्वरूप में स्थिर रखता है और अपने अंतः प्रवेश से उन वस्तुओं को अपना सुगंधमय स्वरूप देकर उन्हें सहसा विकृत नहीं होने देता, वह परमात्मा इस पद में सुगंधि पद से अभिहित है।

बौद्धमतावलंबी वसुबंधु ने समगंध—तत्त्व को अविकृति एवं पुष्टप्रद माना है तथा विषम गंध तत्त्व को दुर्बलता तथा विकारप्रद कहा है। समगंध तत्त्व ही (पृथ्वी आदि तत्त्वों की) स्थूलता तथा पदार्थों की अविकृति का कारण है। इसलिए धर्मशास्त्रों में सुगंधित पुष्पों का धारण आरोग्य और पुष्टिदायक माना गया है।

पुष्टिवर्धनम्—परमात्मा पुष्टिवर्धक है। यहां पुष्टि का अर्थ पोषण, लक्ष्मी और भूति है। पुष्-पुष्टौ (धातु) से ''क्तिने'' प्रत्यय द्वारा पुष्टि शब्द बनता है। आनंदार्णव तंत्र में ''पुष्टिल मीस्वरूपिणी'' कहकर इसका अर्थ लक्ष्मी कहा गया है। तांत्रिकों की परिभाषा में इसे शक्ति माना है। पौराणिकों की परिभाषा में माया और तत्त्व-चिंतकों की परिभाषा में यह प्रकृति कही जाती है। इस पुष्टि को जो बढ़ाता है अर्थात् सूक्ष्मावस्था से स्थूलावस्था में लाकर उसे विविध रूप-से परिणत कर देता है, वही परमात्मा पुष्टिवर्द्धनम् है, यह मानना चाहिए।

यजामहे—त्र्यम्बक परमात्मा के लिए स्वयं को समर्पित कर उससे अपना संबंध जोड़ना ही इसका अर्थ है। यहां यज् धातु का अर्थ, किसी देवता विशेष को उद्देश्य करके द्रव्य का त्याग करना है। यज् ''देवपूजासंगतिकरणदानेषु'' इस धातु से निष्पन्न ''यजामहे'' क्रिया का अर्थ ''यज्ञ करते हैं'' यह होता है।

मीमांसकों ने स्थूल द्रव्य (हवन, पूजा सामग्री) के माध्यम से आध्यात्मिक शक्तियों का आधिदैविक शक्तियों के साथ संबंध स्थापित करने को यज्ञ कहा है। इस मीमांसानुसारी सिद्धांतानुसार ''यजामहे'' का अर्थ स्थूल पदार्थों के माध्यम से प्रस्तुत तीन शक्तियों के स्वामी महान देव, अमर होने से मृत्यु का, प्रकाशमय होने से अंधकार का एवं स्थाणु होने से अस्थिरता का प्रतिपक्षी है तथा अमृत, प्रकाश एवं स्थिर भाव का उद्गम स्थल है।

मृत्योर्बन्धनात् उर्वारुकमिव मुक्षीय—इसका अर्थ विद्वानों ने जो निकाला है, वह यह है—हम भी वेदों में निर्दिष्ट (सौ प्रकार की रोगादि) मृत्तियों, अष्टविध अज्ञानपर्वों और सतत परिणामशील जन्म-मरण रूपी संसरणात्मक बंधन से मुक्त होकर उसी प्रकार मृत्युंजय की प्राप्ति की इच्छा करते हैं जिस प्रकार पका हुआ फल बिना किसी कष्ट के बंधनमुक्त हो जाता है।

यहां मृत्यु शब्द अज्ञान, प्राणापहारक शक्ति, बंधनात्मक संसार—इन तीनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। अज्ञानवाचक मृत्यु शब्द की निरुक्ति, *''मतिं ज्ञानं त्यजति अनेन इति मृत्युः''*, जिससे मनुष्य ज्ञानरहित हो जाता है, वह अज्ञान मृत्यु है।

प्राणापहारक मृत्यु शब्द की परिभाषा है, *''मृतिं तनोति जंतूनामिति मृत्युरिति स्थितिः''*, जो प्राणियों के प्राणों का प्रतिक्षण संहार करती है, वह मृत्यु शक्ति है तथा, *''मृतिःसंतानरूपत्वान्मृत्युः संसार उच्यते''*, अर्थात् मरणधर्मा होने से संसार भी मृत्यु कहलाता है। इन तीन प्रकार की मृत्यु से मुक्ति दिलाना ही इस मंत्र का महान उद्देश्य है।

अमृतात् मा मुक्षीय—का भावार्थ है कि अमर, प्रकाशरूप, सतत एकरूप ब्रह्म के साथ जापक ने जो संबंध स्थापित किया है, उससे जापक भी अमर, प्रकाशमय और स्थिर होकर रहे तथा उस अमृतमय परमात्मा से उसका संबंध कदापि विच्छिन्न न हो।

इस प्रकार उपर्युक्त मंत्र द्वारा जीवात्मा और परमात्मा के सनातन संबंध की स्थिरता और आत्मा के स्वस्त्ययन (सर्वविध कल्याण) की कामना की गई है।

इस प्रकार मंत्रगत वर्ण, पद, वाक्यादि में प्रतीयमान सब शक्तियां शरीर के तत्तद् स्थानों में निवास करती हैं। देवता मंत्रमय हैं, अतः मंत्र के उच्चारण से देवताओं का उल्लास होता है, शक्तियों का उल्लास ही स्थिति है। अमृत है। शक्तियों की सुषुप्ति ही अंधकार है, मृत्यु है। सुषुप्त शक्तियां मंत्रजप से जाग्रत होकर स्थित भाव की संरक्षिका बनती हैं, क्योंकि मंत्र में ''सुगन्धि'' और ''पुष्टिवर्धन'' जैसे शब्द हैं।

सुगन्धि का अर्थ यहां पुण्य और विस्तृत कीर्ति है और कीर्ति का पर्याय यश है। यश चांद्रीशक्ति है, जो ''अमृता'' बनकर शक्तियों का संरक्षण करती है। ''पुष्टिवर्धनम्'' यह शक्तिवर्धन का सूचक है।

शब्दब्रह्म में वर्ण अक्षर कहलाते हैं। ये ही वर्ण अर्थब्रह्म पदार्थों में ''कला'' कहलाते हैं। वर्ण शब्द प्रकाश का वाचक है। शब्दब्रह्म विचित्र प्रकाशमय वर्णों का समुदाय है तो अर्थब्रह्म भी विभिन्न प्रकाशमय कलाओं का समूह है। दोनों ब्रह्म परस्पर एक-दूसरे से मिले हुए हैं। इसलिए शब्द से अर्थ और अर्थ से शब्द का ज्ञान होता रहता है और शब्द अर्थरूप से तथा अर्थ शब्दरूप से परिणत होते रहते हैं।

जिन विचित्र रंगों के प्रकाशों के संयोग से अमृतत्व सिद्ध होता है अथवा जो प्रकाश अमृतरूप से परिणत होते रहते हैं, उन सब प्रकाशों का संग्रह अक्षरों के द्वारा मृत्युंजय-मंत्ररूप ऋचा में है। इस मंत्र के उच्चारण से सर्वविध प्रकाश जाग्रत होते हैं और वे अमृत का उत्पादन तथा आकर्षण करते हैं।

साधकों ने जिन मंत्रों का जिस रूप में साधन किया और अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति की, उसी को आगे चलकर आचार्यों ने शास्त्रों में संगृहीत कर दिया और वह भावी पीढ़ी के लिए उत्तम साधना का मार्ग बन गया। महामृत्युंजय मंत्र भी इस दृष्टि से विभिन्न प्रकार की साधनाओं का मुख्य लक्ष्य रहा है।

मृत्युंजय मंत्र द्वारा मणिपूर चक्र भेदन

मानव की सबसे बड़ी चिंता शरीर की स्वस्थता, मानसिक प्रसन्नता, दीर्घजीवन और मृत्यु से रक्षा होती है। जीवन में उत्साह तथा उल्लास का संचार इन्हीं पर निर्भर है। यदि ये सब नहीं तो सभी प्रकार की उधेड़बुन किसलिए? किसके लिए? इस चिंता का निवारण करने का सरलतम उपाय है—महामृत्युंजय भगवान महादेव की भक्ति।

यही वो साधना है, जिसे साधकर मनुष्य आगे बढ़ता है, आशाओं के दीप जलाता है और उनके उज्ज्वल प्रकाश में अपने विचारों, प्रयासों एवं आकांक्षाओं को मूर्तिमान बनाकर सफल होता है। भगवती आनन्दभैरवी ने उत्तरतंत्र में चक्रभेदन के प्रसंग में मणिपूर-भेदन का वर्णन करते हुए कहा है—

अष्टैश्वर्य साधक, जीवन्मुक्ति एवं सर्वज्ञता प्रदान करने वाले मणिपूर-भेदक मंत्र का मैं कथन करती हूं। साधक मणिपूर में रुद्राणी सहित रुद्र का ध्यान एवं पूजन करके ''ओम् नमस्ते रुद्ररूपिण्यै'' इस रुद्राणी मंत्र का तथा ''ॐ नमस्ते रुद्राय'' इस महारुद्र मंत्र का जप करे।

षट्चक्रसाधन में ही अन्य मंत्रों का कथन करते हुए कहा गया है कि भगवान महारुद्र के अनंत मंत्र हैं। उनमें मृत्युंजय मंत्र द्वारा मणिपूर में स्थित रुद्राणी और रुद्र को चैतन्य करना चाहिए। उसके लिए प्रसाद मंत्र ''ॐ हौं स्वाहा'', *''ॐ हौं जूं स्वाहा''* अपना मृत्युंजय-महामंत्र का मानस जप करना चाहिए और इसके पश्चात् पूजा-विधान, न्यास-विधान तथा अन्य प्रक्रियाओं का विस्तार से निर्देश है। इनमें रुद्राणी का तथा रुद्र का ध्यान इस प्रकार है—

रुद्राणी का ध्यान

रुद्राणीं रुद्रकान्तां नवरसजडितां कुङ्कुमासकक्तगात्रां,
लोकेशीं षड्भुजान्तां त्रिभुवनमहितां कोटिसौदामिनीभाम्।
पद्मस्थां पद्महस्तां वरमभयकरां खड्गशक्तिं दधानां,
ध्यायेद् रौद्रीं त्रिनेत्रां शरदमलशशिश्रेणिभूषामलाङ्गीम्॥

रुद्र का ध्यान

रौद्रं रुद्रात्मकं तं प्रकृति-पुरुष-गम्भीरगीताभिधानं,
शूलं खड्गं दधानं वरमभयकरं पद्ममेकं प्रचण्डम्।
संचारं रश्मिजालं शशिशककिरणं कामधेनुस्वरूपं,
ध्यायेद् रौद्रीं स्वशक्तिं प्रलयमयतनुं सूर्यकोटिप्रकाशम्॥

रुद्र के समान ही रुद्रशक्ति का पूजन-स्मरण भी आवश्यक माना गया है। यह एक बहुत ही रहस्यपूर्ण बात है कि मणिपूर में इस मंत्र का जप होना चाहिए, क्योंकि इसी चक्र में अमृत का निवास है और अमृत ही मृत्यु को जीतने का सर्वोत्तम साधन है।

❑❑
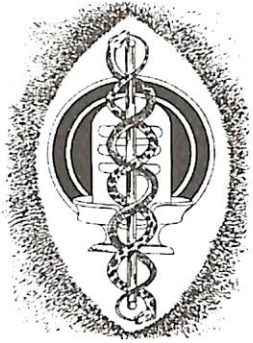
निःश्वास : सत्ताईस

कुण्डलिनी के संबंध में सावधानियां

श्रेष्ठ योगी साधक ही कुण्डलिनी जाग्रत कर सकता है। गुरु की आज्ञा, निर्देश अथवा बिना पूर्व तैयारी के या अच्छी जानकारी के बिना कुण्डलिनी शक्ति को छेड़ना खतरे से खाली नहीं है। जिस प्रकार नंगे हाथों बिजली के तारों को पकड़ने या छूने से करंट लगता है, ठीक वो ही स्थिति कुण्डलिनी के साथ है। कुण्डलिनी शक्ति पराविद्युत शक्ति का केंद्र है। यह विद्युत से भी अधिक शक्तिशाली और काल से भी अधिक भयंकर सर्पिणी है। उसकी तीव्रता और चालन गति का कोई पारावार नहीं है। प्रकृति की परम ऊर्जा शक्ति कुल कुण्डलिनी इच्छाशक्ति के द्वारा जगाई जाती है।

ध्यान रहे, जब तक योग साधना के द्वारा मन और शरीर पूरी तरह से शुद्ध और संयत न हो गए हों तब तक इस योग शक्ति कुण्डलिनी ऊर्जा शक्ति को संभालना अत्यधिक कठिन होगा। अनाड़ी साधक, अयोग्य गुरु अथवा स्वयं पुस्तकें आदि पढ़कर अपनी थोड़ी-बहुत समझ के अनुसार जिज्ञासावश कुण्डलिनी शक्ति को छेड़ना किसी महान कष्टदायी दुर्घटना के समान होगा।

कुण्डलिनी शक्ति न तो तजुर्बा करने की कोई वस्तु है और न ही चमत्कार आदि देखने की। असमय में, अपरिपक्व साधना के समय कामवासना को नियंत्रण किए बिना, संयम का ठीक-ठाक ध्यान न रखते हुए, कुण्डलिनी जैसी दु:साध्य शक्ति को जगाना किसी भी प्रकार उचित न होगा। जिनकी संकल्पशक्ति दुर्बल (कमजोर) हो, उन्हें चाहिए कि वो इस भयंकर महा सर्पिणी को छेड़ने का जोखिम न उठाएं।

यदा-कदा ऐसा भी होता है कि पूर्व जन्म में की गई योग साधनाओं के प्रभाव से चरित्रवान, सीधे-सच्चे, भावुक साधक-साधिकाओं में केवल हल्की-सी भक्ति भाव से साधन, कीर्तन करने या सत्संग आदि में जाने, बैठने से कुण्डलिनी शक्ति अपने आप जाग्रत होने लगती है। ऐसे समय में साधक को परम सात्त्विक, सरल, अभिमान रहित, काम, क्रोध, लोभ आदि से दूर रहते हुए उस शक्ति का स्वागत करना चाहिए तथा उससे प्राप्त हुई शक्तियों एवं सिद्धियों का प्रयोग लोगों की सेवा और उनके कष्टों को दूर करने में करना चाहिए।

बहुत से साधक इस विचित्र, चकित कर देने वाली यौगिक शक्ति कुण्डलिनी को कई जन्मों के परिश्रम के बाद भी जगाने में असमर्थ रहते हैं। इसका केवल एक ही कारण है कि उनका मन की शक्ति पर नियंत्रण नहीं होता।

कुण्डलिनी को हरेक जन्म में बार-बार जाग्रत करना होता है। बार-बार जाग्रत करने से इसे फिर अगले जन्म में जाग्रत करने में सरलता होती है।

एक बार कुण्डलिनी जाग्रत हो जाने पर यह न समझना चाहिए कि हमेशा ऐसा होता ही रहेगा ? मन तथा शरीर की स्वस्थावस्था, निर्मलता, सूक्ष्मता, विचारों की पवित्रता और वैराग्य का बना रहना अत्यावश्यक है, इनके अभाव में यह कार्य बंद हो सकता है।

भृकुटि, ब्रह्मरन्ध्र आदि स्थानों पर प्राणों के ठहर जाने को कुण्डलिनी जाग्रत हो जाना न समझना चाहिए, किन्तु

सारे प्राणों का प्रवाह जब स्थूल शरीर से सुषुम्ना नाड़ी में आ जाए और स्थूल शरीर तथा स्थूल जगत से बेसुध होकर सूक्ष्म शरीर तथा जगत में प्रवेश हो जाए, तो कुण्डलिनी शक्ति का जाग्रत होना समझना चाहिए।

यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि कुण्डलिनी शक्ति जब सुषुम्ना नाड़ी के अंदर प्रवेश करती है, तब उसकी पहली टक्कर मूलाधार चक्र पर लगती है, इससे उपस्थ इन्द्रिय पर दबाव पड़ता है, इसलिए मूलबंध सावधानी से लगाए रहना चाहिए। उस समय स्थूल जगत से सूक्ष्म जगत में प्रवेश तथा स्थूल शरीर से सारे प्राणों का प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में जाना आरंभ होने लगता है, सारे बाह्य प्राण हाथ-पैर आदि से खिंचाव के साथ अंदर जाने लगते हैं, उस समय बिल्कुल भी भयभीत न होना चाहिए, अन्यथा भय की वृत्ति आने के साथ ही प्राण फिर उतर जाएंगे और रह जाएगा तो सिर्फ पछतावा!

कुण्डलिनी जागरण के समय कभी-कभी अनेक भयंकर दृश्य भी आंखों के आगे दिखाई देने लगते हैं, वह कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते, बल्कि खुद ही हट जाते हैं, लोप हो जाते हैं, उनसे भयभीत नहीं होना चाहिए। विद्युत्मय सूक्ष्म नाड़ियों, चक्रों, तन्मात्राओं तथा तत्त्वों आदि के प्रकाश भी इतने अलौकिक होते हैं कि साधकों को प्रथमावस्था में उनका सहन करना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार सूक्ष्म जगत के शब्द भी अपरिचित होने के कारण अति भयानक प्रतीत होते हैं, अतः केवल द्रष्टा बनकर देखते रहें, अन्यथा भय की वृत्ति आने के साथ ही कुण्डलिनी शक्ति जहां पहुंचती है, वहीं से फिर लौट जाएगी। इस प्रकार के भय उसी समय तक रहते हैं, जब तक कि कुण्डलिनी भृकुटि तक न पहुंच जाए। आज्ञा चक्र पर कुण्डलिनी के स्थिर होने के बाद फिर किसी प्रकार का भय नहीं रहता। उस समय सारे सूक्ष्म जगत का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, जिस ओर वृत्ति जाती है, उसी का यथार्थ स्वरूप समक्ष आने लगता है। यही वास्तविक समाधि है। कुण्डलिनी शक्ति जब सहस्रार में पहुंचती है तो सारी वृत्तियों का निरोध होकर असंप्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

विशेष—कुण्डलिनी शक्ति का जागरण करने वाले साधकों को बुरे विचारों से सर्वथा दूर रहना चाहिए। किसी भी प्रकार के नशीले पदार्थ, तंबाकू, बीड़ी-सिगरेट, मद्य, भांग, गांजा, चरस, अफीम आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा उतावलापन, चंचलता एवं दुराचरण से दूर रहना भी अत्यंत आवश्यक है। कुण्डलिनी जागरण एक ऐसी पद्धति है, जिसमें योगी साधक स्वयं अपने अंदर की शक्ति को प्रस्फुटित कराकर समस्त ब्रह्माण्ड से एकाकार स्थापित करता है।

❑ ❑

अनंत की ओर

आलेख

काका हरिओ३म्
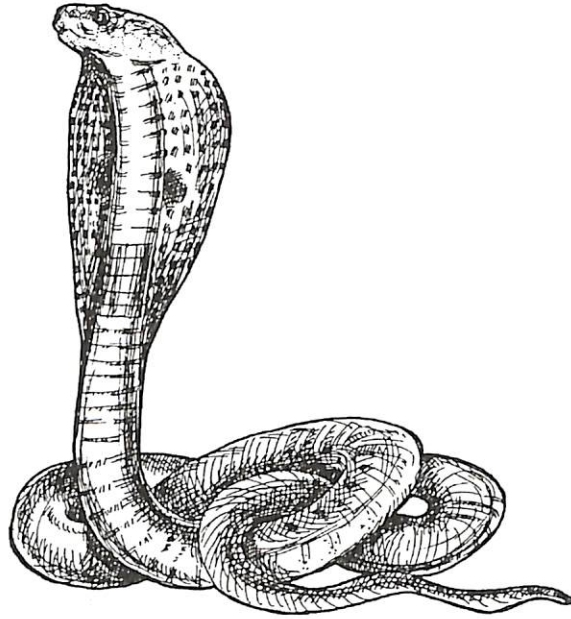
सर्प प्रतीक है ऊर्जा का। वह बिना पैरों के चलता है। उसके चलने को इसीलिए सरकना कहते हैं। सरकने में गति है, बिना किसी स्थूल साधन के। इसी को प्रवाहित होना कहते हैं। सर्प कुंडली मार ही बैठता है। कुंडली उसकी विश्रांति की स्थिति है—इसे महानिद्रा भी कहा जा सकता है। कुंडली संकेत है विस्तार के सिमटने का। छोटे-छोटे कुंडलों में परिवर्तित कर दिया है असीम ऊर्जा ने अपने आपको। जैसे-जैसे वह सक्रिय होगी, कुंडलों का विलय होता जाएगा। सर्प के लिए शायद सबसे सहज है अपने दोनों सिरों को जोड़ना। कुछ सांप तो ऐसे भी होते हैं जिनकी पूंछ और फन में स्थूलरूप से कोई अंतर नहीं होता। अक्सर उन्हें शिकार बनाने वाले धोखे में पड़ कर उसी का शिकार बन जाते हैं। फन है अनंत संभावनाओं की स्थिति का प्रतीक। हम पूंछ को ही तो फन माने बैठे हैं। शिकार बने हुए हैं उसके। सर्प बिना किसी दूसरे आधार के खड़ा हो सकता है बिल्कुल सीधा। यही स्थिति ऊर्जा की है। सर्प प्रतीक है विजडम का, प्रज्ञा का भी।

❑ *तब शायद सर्प से बेहतर कोई प्रतीक नहीं था, भविष्य में रॉकेट बन सकता है कुंडलिनी का प्रतीक। कुंडलिनी-सी ही उसकी यात्रा है—एक अंतरिक्ष से दूसरे अंतरिक्ष में, एक ग्रह से दूसरे ग्रह में—बीच में शून्य की पर्त है। प्रतीकों की खोज तो युग करता है। हो सकता कुछ समय बाद सर्प हमारे लिए मिथ बन जाए।*

—ओशो

❑ *सर्प जैसे बुद्धिमान, चालाक और कबूतर से भोले बनो।*

—जीसस

अनंत की ओर

कोई नहीं जानता और बता सकता कि कितना ऊंचा है तुम्हारा आसमान,
क्या और कितनी संभावनाएं हैं तुममें,
यहां तक कि तुम खुद भी,
इसका सही अंदाजा तो तब लगता है
जब तुम अपने पंखों को खोलते हो, फड़फड़ाते हो
और छलांग लगा देते हो वहां से
जहां बैठे हो तुम इस समय

मूल्यवान है संभावना

उम्र के आखिरी पड़ाव पर गुरुदेव को चिंता हो रही थी, कौन संभालेगा उनके बाद गुरुकुल की गरिमामयी परंपरा को। परीक्षा लेने की बात सोची उन्होंने। सभी शिष्यों को बुलाया। सीधा-सादा सवाल पूछा—'कीमती क्या है, लोहा या चांदी?' सभी का जांचा-परखा, समझा-बूझा जवाब था, 'चांदी!' लेकिन शिष्यों की भीड़ में एक ऐसा भी था, जो असहमत था इस जवाब से। वह लोहे को मूल्यवान कह रहा था। 'क्यों ऐसा मानते हो तुम?' जब गुरुदेव ने पूछा, तो उसका जवाब था, 'चांदी, चांदी ही बनी रहेगी ताउम्र। जबकि लोहे में संभावनाएं हैं। लोहा पारस का स्पर्श पाकर सोना बन सकता है।' गुरुदेव ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में उसी शिष्य की घोषणा कर दी थी। वर्तमान मूल्यवान हो सकता है। अतीत भी मूल्यवान हो सकता है। लेकिन सबसे अधिक मूल्यवान होता है वह, जिसमें संभावना है। जिसमें कोई संभावना नहीं, वह मूल्यहीन है। मनुष्य होना, मनुष्य योनि में जन्म लेना इन्हीं अर्थों में मूल्यवान है। यह योनि पशु और परमात्मा के बीच एक सेतु-का सा कार्य करती है।

चौरासी लाख योनियों के बाद मनुष्य जन्म मिलता है, ऐसा धर्म ग्रंथ कहते हैं। मनुष्य योनि के भोग और कर्म दोनों पक्ष हैं। भोग योनि है देव योनि। मनुष्येतर सभी योनियां भोग योनियां हैं। इनके कर्मों से दृष्ट (पाप-पुण्य) की उत्पत्ति नहीं होती। मनुष्य भोगता भी है पुण्य-पाप को और वह जो कर्म करता है उससे अदृष्ट की उत्पत्ति भी होती है। मनुष्य गतिमान है। ऊर्ध्वगति भी कर सकता है मनुष्य, अधोगति भी। मनुष्य इन्हीं अर्थों में सबसे अलग है। मनुष्य स्वतंत्र है, परतंत्र भी। जबकि शेष वंशानुक्रम के ट्रेक पर गति करते हैं। वे परतंत्र है। उन पर पर्यावरण का प्रभाव पड़ता तो है लेकिन बहुत कम। कौन-सी विशेषता मनुष्य को शेष योनियों से अलग करती है, इसके बारे में नीतिकार का कथन है—

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणां।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिः समाना।

'आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन स्तरों में मनुष्य समान है पशुओं के। मनुष्य में धर्म ही विशेष है। जिसमें धर्म नहीं वह पशु के समान है।'

नीतिकार के इन वचनों से कुछ संत अलग राय रखते हैं। उनका कहना है कि धर्महीन मनुष्य को जानवरों की कैटेगिरी में नहीं रखना चाहिए। ऐसा करना पशुओं का अपमान करना है।

धर्म ही विशेषता है मनुष्य की। मनुष्य का धर्म है मनुष्यत्व। इसीलिए 'मनुष्यत्व' को धर्मग्रंथों ने दुर्लभ कहा। धर्म ही मनुष्य को उसके अस्तित्व के साथ जोड़ता है। यहां इस बात को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि तथाकथित (हिन्दू, मुस्लिम आदि) धर्म से यहां 'धर्म' इस शब्द को जोड़ना ठीक नहीं। धर्म की परिभाषा को उसी विशुद्ध रूप में देखना चाहिए जिस रूप में उनकी चर्चा धर्मग्रंथों में की गई है—जो मनुष्य को श्रेय और प्रेय दोनों की प्राप्ति कराते हैं, जिनसे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति होती है वही धर्म है। *''यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।''* इस प्रकार धर्म की व्याख्या भी अनंत संभावनाओं को जाग्रत करने में है। ये वो सिद्धांत हैं जिनसे ऐंद्रिक और अतींद्रिय सुखों की प्राप्ति होती है। इसका मूल है 'असंभव कुछ भी नहीं।' विवेकहीन 'असंभव' इस शब्द का प्रयोग करते हैं।'

'धर्म' के आचरण में सामान्यतया सामान्यीकृत सिद्धांतों को अपनाया जाता है। जब यही क्रिया विशिष्ट हो जाती है, जब इसमें सामान्य क्रिया-प्रक्रिया (व्यवहार) से तृप्ति नहीं मिलती तब मनुष्य बन जाता है साधक। तब उसके प्रश्न भी विशेष हो जाते हैं। तब सही-गलत, पाप-पुण्य, हानि-लाभ जैसे प्रश्नों पर विचार नहीं करता वह बल्कि तब उसके सामने प्रश्न उठता है—कोऽहं, कौन हूं मैं? तब उसे भीतर कहीं गहरे में महसूस होता है कि 'यह सब कुछ' जिस रूप में दिख रहा है, असल में वैसा है नहीं। क्या है वास्तविकता, यह प्रश्न जब सघन होता है, तब उसकी राह मुड़ती है अध्यात्म की ओर।

प्रतीति और वास्तविकता के अंतर को समझने का प्रयास करना ही साधना है और उसकी गहरे तक अनुभूति कर लेना ही परम सिद्धि। इस परमसिद्धि की स्थिति में अनुभव होता है स्व भाव का। तब लगता है कि क्या था मैं और उसे क्या बना रखा था, क्या माने बैठा था। तभी वह स्थिति बनती है जिसकी ओर इकबाल ने संकेत किया है—

खुदी को कर बुलंद इतना कि हर तकदीर से पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है।

स्वामी रामतीर्थ ने इसी स्थिति के बारे में कुछ यूं कहा है—

खंजर की मजाल, जो इक जख़्म कर सके
तेरा ही है खयाल कि घायल हुआ है तू।

भौतिक स्तर पर जी रहे व्यक्ति को ये बातें समझ नहीं आतीं। वह इन्हें अतिशय समझता है। यही वजह है जो 'वह मैं ही हूं,' 'मैं ही वह हूं,' ऐसा कहने वाले को पागल करार कर दिया जाता है। लेकिन ऋषियों का, तत्त्व ज्ञानियों का कथन है कि इस स्थिति तक पहुंचे बिना स्थिरता नहीं, शांति नहीं, आनंद नहीं, प्रसन्नता नहीं—भटकाव बना ही रहेगा, यात्रा समाप्त होने वाली नहीं नहीं—*'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं'* वाली।

नदियों की गति समुद्र में जाकर ही थमती है। नदी सापेक्षिक रूप से तुच्छ है, महद् समुद्र की तुलना में (व्यवहार में ऐसा ही कहा जाता है। ऐसा कहने के अलावा और कोई चारा भी नहीं है)। बूंद का नदी बनना, नदी का समुद्र बनना ही अनंत संभावना है बूंद की। इसके बाद बूंद को बूंद बनकर रहने में कोई समस्या नहीं है, क्योंकि वह जान चुकी है अपनी अनंत संभावनाओं को। इसीलिए वह बूंद-सी दिखती हुई भी वास्तव में समुद्र ही है।

स्थल से सूक्ष्म की ओर

सांत में छिपे अनंत को समझने के लिए आइए अनंत से सांत की यात्रा पर एक दृष्टि डालें। '*वह एक था। उस एक ने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊं।*' ऐसा ही हुआ! वह एक नाना नाम-रूपों वाला हो गया। यह प्रक्रिया

उपनिषदों में वर्णित है। उस एक ने नाना रूप लेने के लिए किसी का सहारा नहीं लिया। किसका सहारा लेता, जब दूसरा कोई था ही नहीं। और फिर वह निर्बल थोड़े ही था। उसने 'स्वयं से' समूची सृष्टि की रचना की। एक घड़ा बनाने के लिए मिट्टी और कुम्हार दोनों जरूरी हैं। मुख्य कारण हैं ये दोनों। सब कुछ हो, लेकिन इन दोनों में से कोई न हो, तो बात नहीं बनती। एक से अनेक होने की जब अलौकिक घटना घटी, तब कुम्हार और मिट्टी अलग-अलग नहीं थे। उस स्थिति को निर्वचन से परे इसीलिए कहा जाता है। आश्चर्यजनक थी वह घटना—

सारी बिच नारी है कि नारी बिच सारी है।

सारी है कि नारी है कि नारी है कि सारी है।

दोनों एक, लेकिन कई नाम-रूपों वाले लग रहे थे।

कार्य-कारण सब एक थे उस समय। इसीलिए उपनिषदों ने कहा—यह सृष्टि वैसे ही हुई जैसे मकड़ी अपना जाला अपने मुख से निकालकर बुनती है। इसीलिए ऋषियों को कहना पड़ा कि परमात्मा (ब्रह्म) इस जगत के प्रति अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है। निमित्त कारण (कुम्हार) और उपादान कारण (मिट्टी) वह स्वयं ही है।

हम परमात्मा ही तो हैं वास्तव में, *अहं ब्रह्माऽस्मि,* (मैं ब्रह्म हूं), *सोऽहम्* (वह मैं ही तो हूं) इन वाक्यों को सुनकर हम अक्सर भ्रमित हो जाते हैं—'क्या मैं सच में अनंत शक्ति संपन्न हूं'। इस बारे में सशंकित हो उठते हैं। ऐसा मानना स्वभाव बन चुका है हमारा। शेर का बच्चा भेड़ों में मिल गया। स्वयं को भेड़ मानने लगा। जैसा मानने
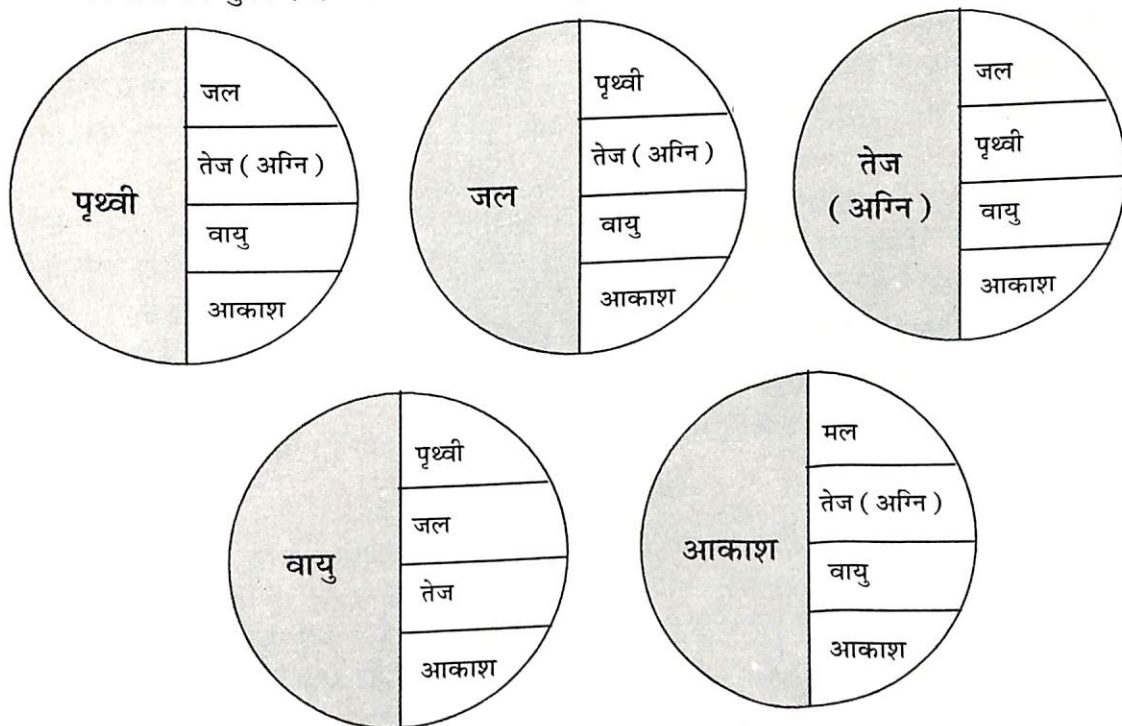
पंचीकृत पंचमहाभूतों की चित्रमयी प्रस्तुति

लगा—वैसा व्यवहार करने लगा। अपने सच्चे अस्तित्व को ही नकार दिया उसने। जब भेड़ माने बैठे शेर के बच्चे को पहली बार किसी ने कहा होगा कि वह भेड़ नहीं शेर है, असल में, तब उसमें भी ऐसा ही प्रश्न उठा होगा। इसी तरह जब कोई मनुष्य में अनंत संभावनाओं की बात करता है, तो उसके गले नहीं उतरती यह बात। वह तो स्वयं को सान्त माने बैठा है। उसकी नजर में तो अनंत कोई दूसरा है। उस अनंत को वह अलग-अलग नामों से पुकारता है। उसे

अलग-अलग रूपों में पूजता है। कैसे उतरे उसके गले में अनंत संभावनाओं वाली बात? क्यों हो रहा है ऐसा? क्या ऐसा संभव है? इन्हीं संदर्भों को अध्यात्म ने एक-एक करके, क्रमवार समझाया है। जैसी संकल्प की सृष्टि परमात्मा की है, वैसी ही जीव की भी है। जैसे परमात्मा अपनी सृष्टि को स्वयं में समेट लेता है, वैसे ही जब समेटने की सामर्थ्य मनुष्य में आती है तो वह कह उठता है—मैं अपनी सृष्टि को स्वयं बनानेवाला हूं (इन्हीं अर्थों में मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है)। जब चाहूं मैं अपनी सृष्टि को समेट लूं।

उपनिषदों के सृष्टिक्रम पर जब गहरे में विचार करें तो भौतिक होने का अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। तब यह स्थूल शरीर ही नहीं, सूक्ष्म और कारण शरीर भी भौतिकता की सीमा में आ जाते हैं। विचार, वाणी, बुद्धि, मन, भाव, सभी तो भौतिक हैं। किस प्रकार पंचमहाभूतों की उत्पत्ति के बाद उनके पंचीकरण से ज्ञानेंद्रियों, कर्मेन्द्रियों, पंचप्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि की संरचना होती है, इसका अत्यंत विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन है वेदांत के प्रक्रिया ग्रंथों में। उसी आधार पर अधिष्टात्री देवी-देवताओं की चर्चा की गई है। इन प्रक्रियाओं को समझने के बाद वह संकेत स्पष्ट दिखाई देने लगता है, जिसे दिखाने-समझाने का प्रयास ऋषि बार-बार करते रहे हैं। चित्रमयी मूर्त भाषा का प्रयोग किया है ऋषियों ने सूक्ष्मतत्त्व को समझाने के लिए। पूर्व के अध्यायों में, षट्चक्र निरूपण में ऐसी ही भाषा का प्रयोग किया गया है। षट्चक्र भेदन का अर्थ है, जिस चक्र पर स्थिति है उससे आगे बढ़ना, अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा। सूक्ष्म से स्थूल की यात्रा आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की है। जब साधक इसे उलटे क्रम में अर्थात् सूक्ष्म से स्थूल के क्रम में अपनाता है तो इस प्रक्रिया को लय कहते हैं। कार्य से कारण में प्रवेश। कारण में ज्यादा संभावनाएं होती हैं, कार्य से कई गुनी ज्यादा। इस प्रकार ससीम से असीम की यात्रा हो जाती है यह पंचमहाभूतों के लय की यात्रा। इसीलिए यह भौतिक होते हुए दिव्य है। उपासना में आरोह-अवरोह प्रक्रिया से पूजन का यही रहस्य है।

इस यात्रा में कुछ नया घटित नहीं होता, हां जो दिख नहीं रहा होता, दिखने लग जाता है बस। पहले दिखने में धुंधलापन होता है लेकिन जैसे-जैसे स्थूल छंटता जाता है, दिखना ज्यादा-से-ज्यादा स्पष्ट होता जाता है। बिखरी हुई चेतना, ऊर्जा एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होने लगती है। जो अब तक वश से बाहर होता है, पूरी तरह से वश में हो जाता है, अनायास ही। लगने लगता है कि कमाल है, शेर होते हुए भी मैंने खुद को भेड़ कैसे मान लिया। अब खुद को भेड़ मानना उतना ही, बल्कि उससे भी ज्यादा मुश्किल हो जाता है जितना पहले 'मैं शेर हूं,' ऐसा स्वीकारना था। बदलाव सिर्फ दृष्टि में होता है। बाकी सब कुछ जैसा था, वैसा ही रहता है। यही जागरण है।

जहां जागो—वहीं सवेरा

जागरण का अर्थ साधक के लिए यह भी है कि बस स्पष्ट हो गया लक्ष्य क्या है, और यह भी कि उसे प्राप्त करना है। साध्य और साधन दोनों का साफ-साफ दिखना जागरण है, ऐसा कहना भी ठीक होगा। जन्म-जन्मान्तरों का भटकाव समझ में आ गया। यह बात स्पष्ट हो गई कि वस्तुओं में, संबंधों में, पदों में क्या खोजा जाता रहा है। इन सबकी कामना करना, उन्हें प्राप्त करना और फिर उन्हें पा जाने के बाद किसी नई वस्तु को पाने की राह पर चल देना साफ-साफ बताता है कि जिससे जिसे प्राप्त करने के लिए प्रयास किया गया था, उससे वह नहीं मिला। वह नहीं मिला जिसकी उम्मीद थी। इसीलिए साधन बदलते गए, साध्य एक ही रहा और मजे की बात है कि उस एक साध्य की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया। यही स्थिति मूर्च्छा की है। जागरण में साफ-साफ दिखाई देता है कि क्या चाहिए और वह कैसे मिलेगा।

बाल्यस्तावद् क्रीडासक्तः तरुणस्तावत्तरुणी रक्तः।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः पारे ब्रह्मणि कोऽपिन लग्नः॥

''बालकपन में खेलकूद में आसक्त रहा, जवान हुआ तो स्त्री में डूब गया, वृद्ध हुआ तो चिन्ता में मग्न रहा, (लेकिन आश्चर्य है) परब्रह्म में कोई भी नहीं लगा।''

'कोई भी नहीं', ऐसा कहकर आद्यशंकराचार्य ने जीवों की सामान्य प्रवृत्ति की चर्चा की। लगता है साधन और साध्य दोनों को ही स्पष्ट कर दिया आचार्य ने इस श्लोक में। खेल-कूद में बच्चा क्या ढूंढता है? तरुणी में (सेक्स में) क्या तलाशता है युवक? और वृद्ध अतीत व भविष्य की गुत्थियों को सुलझाता हुआ क्या ढूंढ़ रहा है? तलाशने का यह क्रम प्रत्येक जन्म में, होता रहा है। लेकिन यह तलाश अपरोक्ष है, अस्पष्ट है। मजे की बात है कि तलाशा जा रहा है अनंत समय से जबकि यही पता नहीं कि तलाश किसकी है। उपनिषद् के ऋषियों ने पहले तो यही स्पष्ट किया कि तलाश किसकी है। उनका कहना है कि प्रत्येक आनंद को तलाश रहा है। आनंद अर्थात् ऐसा सुख जो नष्ट न होता हो। इसी संदर्भ में संसारी सांसारिक विषयों का चुनाव करता है। अर्थात् संसारी कैसे एक के बाद दूसरी गलती कर रहा है। वह दुखरूप में सुख तलाश रहा है। मरणधर्मा। में अमरता तलाश रहा है। ऐसा नहीं कि सिर्फ पढ़ने-लिखने से उसके साध्य व साधन के इस तरह के विचार स्पष्ट हो जाते हैं। शास्त्रों के जानकार भी चकरा जाते हैं।

महाकाली का अर्थ ही है, जिसमें समूची प्रकृति का लय हो जाए। जहां शिव निष्क्रिय हो जाए

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामायां प्रयच्छति॥

''प्रकृतिरूपा वह भगवती ज्ञानियों के मन में मोह पैदा कर महामाया की गोद में डाल देती है।''

मोह बनाम भ्रम

मोह का अर्थ है, जो जैसा, वह वैसा न दिखकर उसके बिल्कुल विपरीत दिखे। शास्त्रों की जानकारी रखनेवाला भी अज्ञानी का सा व्यवहार करने लगता है। पुराणों में ऐसी कई कथाएं आपको पढ़ने को मिल जाएंगी। क्यों होता है ऐसा? यही प्रश्न अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा है—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

''बलपूर्वक किसके द्वारा पाप में जीव नियुक्त हो जाता है, जबकि वह पाप करना नहीं चाहता।''

अनंत संभावनाओं का स्वामी किस प्रकार जड़ और गुलाम बन जाता है श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर देते हुए रजोगुण को कारण बताया है—

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

''काम और क्रोध रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। ये महान पापों को कराने वाले और कभी न तृप्त होने वाले हैं। इसलिए इन्हें अपना सबसे बड़ा बैरी मान।''

तमोगुण जड़ बनाता है। यह प्रवृत्त नहीं करता। 'कर लेंगे', इसका तर्क होता है। सतोगुण ज्ञान की ओर उन्मुख करता है। एकाग्रता व स्थिरता देता है यह। इससे मोह टूटता है। रजोगुण में मोहयुक्त प्रवृत्ति होती है। इन्हीं अर्थों में यह सतोगुण व तमोगुण से अलग है लेकिन इसमें दोनों के विशेष गुणों की झलक भी मिलती है।

योगदर्शन के अनुसार सत्व, रज व तमोगुण की साम्य (समान) अवस्था प्रकृति है। इस साम्य में सृष्टि नहीं होती। सृष्टि के लिए वैषम्य (असंतुलन) अपेक्षित है। वैषम्य का परिणाम है द्वन्द्व। इस प्रकार द्वन्द्व से तब तक नहीं मुक्त हुआ जा सकता, जब तक वैषम्य बना है। इस मायने में स्व+स्थ होना प्रकृतिस्थ होना है। जैसे-जैसे प्रकृतिस्थ होते जाते हैं, साम्य बनता जाता है। अनंत संभावनाओं के द्वार खुलते जाते हैं। आनंदामृत जब प्रकृतिस्थ होने में है, तो सहज होना ही सर्वश्रेष्ठ साधना है। साधना सहजता में होना है, होने को महसूस करना है, कुछ करना नहीं है। इसीलिए साधना के नाम पर, 'कुछ करना' उलझाने वाला है। जो हो रहा है उसकी स्वीकृति, जस की तस स्वीकृति ही परम साधना है। साधना में यदि कहीं कुछ करना दिखता है, उससे होने का कोई संबंध नहीं, उसका काम तो उन अवरोधों को हटाना है, जिसकी वजह से अस्तित्व का, उसके सही रूप में बोध नहीं होता।

आपकी खिड़की बंद है। सुबह के सूरज की उजली रोशनी आपके कमरे में नहीं आ रही। आपने खिड़की के परदे को हटाया। खिड़की की चिटकनी को सरकाया। खिड़की को खोला। उससे प्रकाश के आने में आपने कोई सहयोग नहीं किया, प्रकाश का आना तो सहज था। आपने खिड़की खोलकर प्रकाश के कमरे में आने के बीच के अवरोध को ही सिर्फ खत्म किया। कर्म, उपासना और ज्ञान की त्रिपुटी से भी तो मल, विक्षेप और आवरण इन दोषों को हटाने की बात ऋषियों द्वारा कही गई है। इन तीनों साधनों से प्रकृति में साम्य आ जाता है। और जो था, जो है, जो हमेशा है उसका अनुभव होने लगता है।

'करना' या 'न करना'

'करने' और 'न करने' के अर्थ का स्पष्ट होना साधक के लिए आवश्यक है। इन शब्दों का प्रयोग उलझा देता है, यदि स्पष्ट न हो इनका अर्थ। क्योंकि अक्सर 'करने', 'न करने' की चर्चा साथ-साथ चलती है। यहां इस बात को भी समझ लेना जरूरी है कि मोक्ष यदि अप्राप्त है, उसे कर्म के द्वारा प्राप्त किया गया है, तो संसार के अन्य विषयों की तरह ही वह भी हमारे हाथ से सरक जाएगा। और यदि वह प्राप्त ही है, तो उसके लिए कर्म आदि साधनों की क्या उपयोगिता। ऋषियों ने इसीलिए घोषणा की कि मुक्ति, आनंद, प्रसन्नता ये सभी हमारे 'स्वभाव सिद्ध अधिकार' हैं। यदि आपके मस्तिष्क में ऊपर कही गई बात स्पष्ट हो गई होगी, तो आप मेरी इस बात से भी सहमत होंगे कि जिसे बंधन कहा जा रहा है, दोष कहा जा रहा है, वह भी असल में कुछ भी नहीं है।

एक प्रसंग है। तब की बात है जब आने-जाने के साधनों का विकास नहीं हुआ था। एक कुम्हार अपने पांच-

सात गधों को लिये शहर की ओर चल पड़ा। सफर लंबा था। शाम हुई। कुम्हार ने धर्मशाला में शरण ली—अपने गधों के साथ। लेकिन जब गधों को बांधने की बारी आई, तो वह परेशान हो उठा। बांधने वाली रस्सियां छोड़ आया था। उसे हैरान-परेशान देख दूसरे यात्री ने कारण पूछा। कुम्हार ने अपनी विवशता बताई। पूछने वाले ने सवाल किया, ''कितने बरसों से ये तुम्हारे पास हैं ?'' ''आठ बरस तो हो गए होंगे,'' कुम्हार ने जवाब दिया। लेकिन कुम्हार को यह सवाल समझ नहीं आया। कुम्हार का जवाब मिलते ही उस सह-यात्री ने मार्ग सुझाया, ''इन गधों को बांधने वाली जगह ले जाकर खड़ा कर दो। फिर इन्हें बिना रस्सी के वैसे ही बांधों, जैसे इन्हें रोज बांधते हो।'' कुम्हार ने वैसा ही किया। फिर भी डर था इसलिए रात को उठकर बार-बार देखता रहा। आश्चर्य! गधे अपनी जगह खड़े थे। सुबह उसके सामने एक बार फिर से परेशानी आ खड़ी हुई। बिना रस्सी के बंधे गधों को कैसे खोले ? सहयात्री ने फिर सलाह दी, ''जैसे बांधे थे, वैसे ही खोल लो।''

हमारी सारी संभावनाएं अवरुद्ध हैं एक ऐसी वस्तु द्वारा जो वास्तव में है ही नहीं। 'माया' का अर्थ ही है, जो नहीं है। आश्चर्य है जो है नहीं हम उसके कारण बंधे हुए हैं। इस बात को जान लेना कि जो बांध रहा है, वह वास्तव में है नहीं, मोक्ष की स्थिति है, तत्त्वज्ञान है। ऐसा जानते ही प्रत्येक चक्र का भेदन हो जाता है (चक्रों के भेदन से ऐसा होता है, यह भी कहा जा सकता है)। अनंत संभावनाओं का कमल खिल उठता है। सारा बनावटीपन छंट जाता है। प्रकृति सम हो जाती है। जीवन परम सहज हो जाता है। ऐसा होना साधना की परम स्थिति है। प्रतिफल है यह साधना का। लेकिन जब तक ऐसा घटित नहीं होता तब तक जो वास्तव में है नहीं, लेकिन फिलहाल अस्तित्व वाला है, उसी की शब्दावली में सोचना-बरतना पड़ता है।

सहज शब्द का अर्थ

सहज शब्द का अर्थ है साथ जन्मना। 'सह' अर्थात् साथ 'ज' अर्थात् जन्मना। यह शब्द संकेत करता है दो की ओर। दो के लिए ही साथ-साथ शब्द का प्रयोग किया जाता है। सहज का अर्थ है साथ-साथ अस्तित्व में आना। यह भी कि दिखने में अलग-अलग हैं, दो हैं लेकिन हैं एक ही। साधना में 'सहज' शब्द का प्रयोग अक्सर किया जाता रहा है। *'साधो! सहज समाधि भली।'* संत कबीर ने सहज समाधि पर जोर दिया है। योग से पहले भी सहज शब्द जुड़ा है। इन दिनों 'सहज योग' की काफी चर्चा है। इसकी व्याख्या कुछ न करने के अर्थों में की जा रही है। हठयोग की साधनाओं को टोटली नकारा जा रहा है, इस शब्द का प्रयोग करके। यह भूल बिल्कुल वैसी ही है, जैसी हठयोगी करते हैं। हठयोगी तन साधने को ही परमलक्ष्य मान लेते हैं। जबकि आधुनिक सहज योगी शारीरिक साधना को नकार देते हैं। शायद इसीलिए यह सहज योग की साधना पढ़े-लिखे लोगों, अफसरों, संभ्रांत महिलाओं की साधना बन गई है। लगता है तन-मन के संबंधों की जानकारी दोनों को नहीं है। आध्यात्मिक ग्रंथों में शरीर शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया गया है। कुंडलिनी से संबंधित योग व तंत्र ग्रंथों में सात शरीरों का वर्णन है। इनका आपस में संबंध है। इनकी गति स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है। इस प्रकार स्थूल शरीर साधना का प्रथम चरण है, अंतिम नहीं। जितनी यह बात सच है, उतनी ही यह भी कि बिना स्थूल को साधे सूक्ष्म में प्रवेश संभव नहीं है। ग्लैंड्स से व्यक्तित्व के संबंधों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि शरीर का प्रभाव मन पर होता है। कहीं अगर ऐसा संबंध नहीं दिखता, तो समझ लेना चाहिए, हमारी समझ से पार की बात है, उस बारे में हमारी समझ अधूरी है। ऐसी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए ही 'कर्म की निरंतरता' की व्याख्या की गई है। 'योगभ्रष्ट' जैसे अन्य कई शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस तरह हठ जरूरी है साधना की प्रारंभिक स्थिति में। शरीर और मन की मांगों को मोटे तौर पर जब तक पकड़ा नहीं जाएगा, तब तक सूक्ष्म और अतीन्द्रिय लक्ष्यों को साध पाना संभव नहीं हो पाएगा। तन को साधने के दौरान कई ऐसे अनुभव होंगे, जिन्हें अभी तक सिर्फ पढ़ा या सुना गया है। श्रीकृष्ण इसे तितिक्षा कहते हैं। इस 'तितिक्षा' में कई ऐसी लहरों के आने-जाने को देख पाना संभव हो सकेगा, जिनकी तेज गति उनके स्थायी होने का भ्रम देती है।

मात्रा स्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्ण सुखदुखदा।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
सम दुःख सुखं धीरः सोऽमृतत्वाय कल्प्यते।

"हे कुंती पुत्र अर्जुन, इन्द्रियों और विषयों के संस्पर्श से होने वाली संवेदनाएं सर्दी, गर्मी, सुख-दुख देने वाली हैं। ये आने-जाने वाली हैं, अनित्य हैं, इसलिए इन्हें सह (इनके साथ बह न जा)। जिसको ये संवेदनाएं व्यथित नहीं करतीं, जो सुख-दुख में सम रहता है, ऐसा धीर पुरुष ही अमरता पाने का अधिकारी है।"
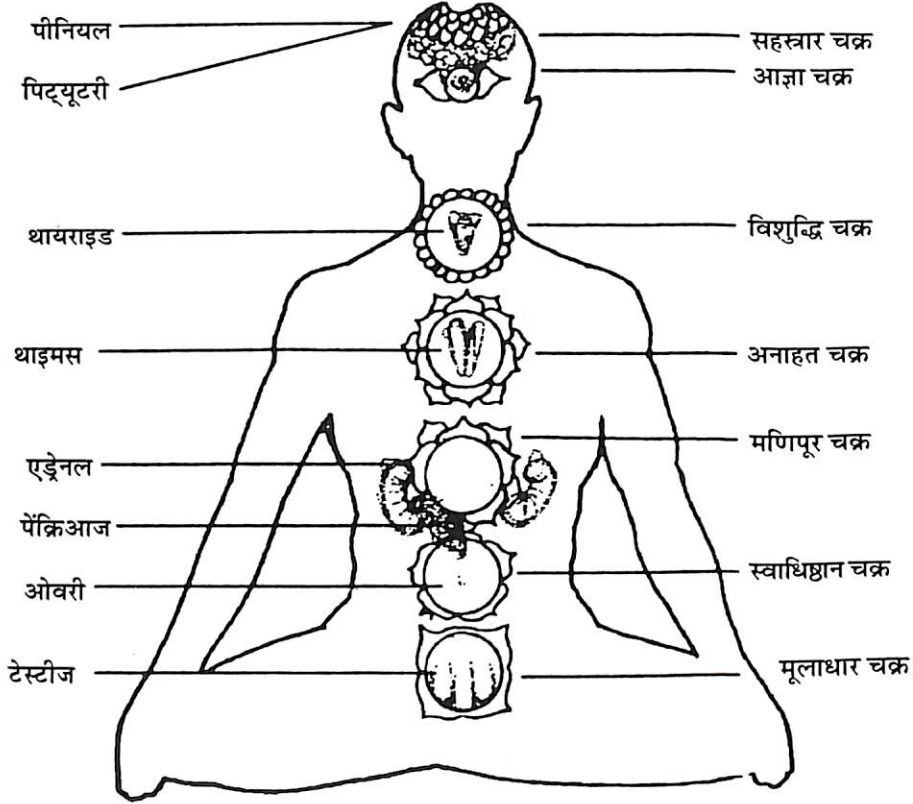
ग्लैंड्स और चक्रों का संबंध स्थापित होने के बाद योग को विज्ञान का पुट मिला

हठयोग एक प्रकार से जागरण का प्रयास है। यहां सहना इसीलिए है, ताकि स्वभाव बन चुके बहाव की प्रवृत्ति को रोका जा सके। बिना पेंदे के लोटे की तरह काफी भटक लिए, अब टिकाव पैदा हो। टिकाव तैयारी है, इस बात की कि जो जैसा है, उसे वैसा देखा, समझा और अनुभव किया जा सके। इसलिए हठ जरूरी है। यह 'सहज' का विरोधी नहीं, बल्कि सहजता की गहराई की अनुभूति की तैयारी है—परोक्ष रूप से।

गुरु-शिष्य संबंधों की गरिमा

यहां इस संदर्भ में गुरु-शिष्य के संबंधों की चर्चा भी आवश्यक है। कारण? इस शब्द से भी लोग भ्रमित हैं। 'गुरु' जहां सभी अवरोधों को नष्टप्रायः करता है, वहीं अगर यह स्वयं महाविरोध बन जाए तो। इसलिए इस संबंध से संबंधित धारणाओं को समझते हुए जरूरी हो जाता है यह जानना कि आखिर इसकी साधक के जीवन में क्या भूमिका है।

गुरु का अर्थ है प्रकाशरूप, जो अंधकार को नष्ट करे। जिसके पास अंधकार फटक भी नहीं सकता, वह है गुरु। इस अपनी सहज विशेषता के उसकी एक और खासियत है कि वह शरण में आए शिष्य के अंधकार के स्तर को भलीभांति पहचानता है। कहते हैं कि एक बार किसी ने बुद्ध से ईश्वर होने के बारे में सवाल किया कि वह है या नहीं। बुद्ध ने 'नहीं' कह दिया। अगले दिन फिर किसी ने यही सवाल किया। बुद्ध ने इस बार 'हां' कहा, लेकिन अगले ही क्षण नकार दिया, 'नहीं।' तीसरे दिन फिर कोई इसी सवाल को लेकर आया। जवाब में बुद्ध चुप हो गए। बुद्ध के प्रमुख शिष्य आनंद यह सब देख रहे थे। उन्होंने जब इसकी वजह पूछी बुद्ध से, तो बुद्ध ने कहा, "तीनों जवाब ठीक हैं। जिसकी जिज्ञासा की गहराई जैसी थी, उसे वैसा ही जवाब दिया।"

गुरु जानता है अंधकार कितना गहरा है। प्यास कितनी गहरी है। वहीं खड़ा होकर प्रश्नों के वह उत्तर देता है। यह बात शिष्यों को समझ नहीं आती। इन्डिवीजुअल डिफरेंसेज के महत्व को जो तथाकथित गुरु समझ-समझा नहीं पाए उन्होंने एक छड़ी से सबको हांकना शुरू कर दिया। परिणाम जीरो है। बरसों-बरस तक कोई प्रोग्रेस नहीं है। जहां थे बरसों पहले, वहीं आज भी खड़े हैं दोनों—शिष्य और गुरु दोनों ही। हो सकता है उलझाव बढ़ गया हो, साधक-शिष्य मान लेने की वजह से।

स्वामी विवेकानंद को आदर्श शिष्य के रूप में सभी ने स्वीकारा है। गुरु के संकल्पों को साकार करने का सशक्त माध्यम बने थे स्वामी विवेकानंद, यह अपने आप में एक अलौकिक उदाहरण है

जब भी गुरु-शिष्य की बात चलती है स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस की प्रथम भेंट की चर्चा अक्सर की जाती है। नरेन्द्र की प्यास जितनी गहरी थी उतना ही सटीक और पैना, धारदार जवाब था रामकृष्ण का। दोनों की भूमिका फिफ्टी-फिफ्टी की है। जितनी तैयारी है शिष्य की उतना ही प्रसाद उसे गुरु से मिल जाता है। वह

प्रसाद ही उसकी साधना का मार्गदर्शक प्रदीप साबित होता है।

मुंबई में स्वामी मुक्तानंद जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए विश्व धर्म सम्मेलन में जाने का मुझे तब अवसर मिला, जब मैं धर्मयुग में उपसंपादक के रूप में कार्यरत था। इस सम्मेलन में 'एलएसडी थैरेपी' के एक विश्वविख्यात चिकित्सक आए हुए थे। उन्होंने संत कबीर के जीवन की घटना पढ़ी थी। और भी कई योगियों के बारे में पढ़ा था, जो शिष्य के भीतर, गहरे तले पर भी उसे मोटिवेट करते हैं, बिल्कुल वैसे ही जैसे घनघोर अंधेरे में कोई गड्ढे में गिरने लगे और कोई अदृश्य हाथ आकर उसे थाम ले। या फिर जब वह अंधेरे में डर कर भागने की कोशिश करे, तो कोई थाम ले और प्रोत्साहित करे आगे बढ़ने को। उनका कहना था कि ऐसी कोई विधि जानने में वे यदि सफल हो गए, तो मनोरोग की चिकित्सा में अद्‌भुत क्रांति हो जाएगी। सम्मोहन चिकित्सा द्वारा असंभव से समझे जाने वाले केसों को तब सुलझाया जा सकेगा। इस संदर्भ में उन्होंने जो जानकारी दी, वह कुछ इस प्रकार थी—

"कामनाओं की लंबी चेन है प्रत्येक के जीवन में। जिस किसी भी कारण हम उन कामनाओं को, जिन्हें हम पूरा नहीं कर सकते या कर पाते, मन के गहरे तल में डालते जाते हैं, बिलकुल वैसे ही जैसे कोई अपने ड्राइंगरूम के कचरे को अपने गोदाम में फेंकता जाए। 'गोदाम' घर का जरूरी हिस्सा होता है लेकिन वह कचरादान नहीं होता। हम गोदाम को कचरादान बना देते हैं। गंदगी तो कुछ दिनों बाद सड़ेगी ही। उसकी बदबू भी फैलेगी ही (इसे ही मानसिक रोग कहते हैं)। समझ नहीं आता, बदबू कहां से आ रही है, जबकि सफाई अच्छी तरह से की जा रही है, ड्राइंगरूम की। यदि ध्यान न दिया जाए, तो दुर्गंध के साथ ही बीमारी के जर्म्स आसपास के माहौल को भी प्रभावित करना शुरू कर देते हैं। ऐसी हालत में ही लोग आते हैं हमारे पास।

" 'एलएसडी' का प्रयोग रोगी को उसकी चेतन अवस्था से काट देता है। ऐसा इसलिए जरूरी होता है ताकि किसी तरह की तथाकथित नैतिकता उसे वास्तविकता को जस का तस जानने से रोके न। क्या सही है, क्या गलत है, इसकी विवेचना करना धर्मशास्त्री का काम है। हमें तो सिर्फ यह बताना होता है बीमारी की वजह क्या है। वह सही है, गलत है इससे हमारा कोई लेना-देना नहीं। रोगी तैयार हो जाता है उस गोदाम के दरवाजे को खोलने के लिए। खोलता भी है लेकिन कमरे में ठसाठस भरी बदबू के झोंके से उखड़ जाता है और बंद कर देता है, दरवाजे को। बस यही स्थिति एक चिकित्सक के लिए, हमारे लिए परेशानी भरी होती है। इसके बाद वह किसी तरह के सुझावों को नहीं स्वीकारता। विद्रोह करता है।"

ऐसी, उपरोक्त स्थिति से उबरने की राह उस चिकित्सक को गुरु-शिष्य संबंधों की गहराई में दिखाई दी थी। मानसिक पूजन करने बैठे अपने गुरुदेव को सलाह देना—'माला को तोड़कर इष्टदेव के गले में डाल दीजिए', ऐसी स्थिति का ही एक उदाहरण है। संत कबीर के जीवन का प्रसंग है यह।

अध्यात्म का गणित

लेकिन इस उदाहरण से यह सिद्ध नहीं होता कि शिष्य को कुछ नहीं करना है। गुरू उस अव्यक्त के प्रति आस्था जगाकर उस अनुभव को स्थायी बनाने में पल-पल सहायक तो होते हैं लेकिन ऐसा नहीं है कि वे अपने अनुभव को शिष्य को इस तरह दे दें, जैसे कोई वस्तु दी जाती है। माला गुरु की थी। गुरु ने शिष्य को दे दी। अब वह शिष्य की हो गई। अनुभव जगत में ऐसा संभव नहीं। वस्तु या पदार्थ नहीं है तत्त्वानुभूति। उसे तो स्वयं ही रियलाइज करना होगा। इस मायने में शक्तिपात जैसे शब्द भी भ्रम फैलाते हैं। शक्तिपात सहज होता है। कोई दावा करे इसका तो यह संभव नहीं। और फिर इसकी भूमिका बादलों में चमकी उस बिजली की सी है, जो रास्ता दिखाती है और उस साध्य की भी एक झलक देती है जहां पहुंचना है। शक्तिपात का अर्थ यह नहीं है कि उस दौरान होने वाला अनुभव उसका अपना हो गया, जिस पर शक्तिपात किया गया है। यह अनुभूति स्थायी नहीं होती इसीलिए।

रामकृष्ण के स्पर्शमात्र से जो परम अनुभूति नरेन्द्र दत्त (स्वामी विवेकानंद) को हुई, उसे बनाए रखने के लिए क्या स्वामी विवेकानंद को कठोर तप करना पड़ा। हां, उस झलक ने नरेन्द्रदत्त को स्वामी विवेकानंद बनने की ओर मोड़ जरूर दिया। इस तरह शक्तिपात से यदि कभी कुछ मिला, तो उससे स्वयं को कृतकृत्य न समझें। और चाहकर शक्तिपात किया जाना उस तरह से संभव नहीं जिस तरह से इसका प्रचार किया जा रहा है। सम्मोहन का प्रयोग करके भी शक्तिपात किया जा रहा है। जो ऐसा करते हैं उनके अपने तर्क हो सकते हैं, लेकिन इससे कुछ ठोस हासिल नहीं होता। क्या जरूरत है ऐसा करने की। जल्दीबाजी क्यों? इस विवेचना से यह बात स्पष्ट हो ही गई होगी कि सहज योग को जितना सहज लिया जा रहा है, अर्थात् कठिन के विलोम शब्द के रूप में तो उससे ट्रेजडी ही होगी। कारण? अध्यात्म का अपना गणित है। यह गणित सुनिश्चित है। बिल्कुल वैसा ही सुनिश्चित है जैसे दो में दो जोड़ने का गणित। कहीं भी चले जाएं यह जोड़ चार ही आएगा। साधना की भी एक निश्चित प्रक्रिया होती है, वह भले ही बाहर से अलग-अलग की दिखे, लेकिन असल में एक ही होती है, और जितनी-गहरी होती जाती है यह साम्य भी साफ-साफ दिखने लगता है तब। अलग-अलग संस्कारों के साधकों के अनुभवों में समानता इसी तथ्य की पुष्टि करती है। इसलिए इस बात को गांठ बांध लें कि अध्यात्म के गणित को अपने तरीके से मोड़ा नहीं जा सकता। ऐसा करने की कोशिश करना ही असहजता है।

बुद्धि बनाती असहज

बुद्धि की असहज बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बुद्धिमान ज्यादा असहज होता है, वह किसी भी होने वाली घटना की व्याख्या अपनी तरह से कर सकता है इसलिए। ऐसा करके वह 'होने' वाली महत्वपूर्ण घटना को

चूहा प्रतीक है कुतर्क का। इसे ही बुद्धि माना जाता है। विघ्नविनाशक बनने के लिए बुद्धि पर नियंत्रण होना जरूरी है

महससू करने से चूक जाता है। 'मैं कौन हूं' इस प्रश्न को ढूंढ़ते समय भी बुद्धि का प्रयोग जब किया जाता है, तो 'हूं' अर्थात् अस्तित्व से संस्पर्श ही नहीं हो पाता। 'मैं' भी वह सामने आ खड़ा होता है, जो भौतिक विषयों का संगठित

रूप होता है। वह सहज नहीं होता। वह 'हूं' के साथ जन्मा 'मैं' नहीं होता। इसीलिए वह बदलते समय के साथ जुड़ता-बिछुड़ता रहता है। वह कभी बनता है, तो कभी बिगड़ता है। इस बनने-बिगड़ने वाले 'मैं' को स्थायी और शाश्वत बनाने का प्रयत्न जब-जब किया जाता है, जितना-जितना किया जाता है, तब-तब और उतना-उतना ही व्यक्ति असहज होता है। वास्तविक 'अस्तित्व' से दूर हो जाता है। और ऐसा हम लगातार करते आ रहे हैं। इसलिए अब तो स्थिति यह हो गई है कि असहजता की भी परतें बन गई हैं। जो नहीं है, असहज है उसे जो है उस पर इतना लादा जा चुका है कि सहज को असहज और असहज को सहज रूप से स्वीकारा जा रहा है। कहते हैं न कि झूठ को बारबार बोला जाए तो वह सच बन जाता है। जब कोई सच्चाई की तरफ ध्यान दिलाता है तो हमें लगता है कि सामने वाला पगला गया है। संतों को पागल इसीलिए तो कहते हैं संसारी। और संत? वे मन को पगला कहते हैं। दोनों एक-दूसरे को पगला कह रहे हैं। संसारी का आधार उसकी बुद्धि है। तत्त्व ज्ञानी अनुभव के आधार पर ऐसा कहते हैं। संसारी के मन में उपेक्षा का भाव है, ज्ञानी में करुणा का। संत सहज हैं क्योंकि उनका 'मैं' अस्तित्व से, 'हूं' से जुड़ा है। उनकी दृष्टि में 'मैं' और 'हूं' में कोई अंतर नहीं है। जबकि संसारी का 'मैं' भिन्न है 'हूं' से। वह बार-बार इस दूरी को स्वयं बढ़ाता जाता है। उसकी संभावनाएं नष्ट हो जाती हैं। उसका 'बनना' उसके 'होने' को बिखेर देता है। ऐसी कोशिशों से उसकी ऊर्जा बिखर कर कमजोर हो जाती है। निम्न स्तरों पर प्रवाहित होने लगती है। पानी के प्रवाह में अगर फोर्स कम हो, तो निचली मंजिलों पर ही रहता है वह—ऊपरी मंजिलों तक नहीं पहुंचता, चाह कर भी नहीं। ऊपर जाने के लिए अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है। प्रवाह के बिखराव को रोकना इस साधना का पहला सोपान है। लीकेज हो रही हो, तो शक्ति कैसे बनेगी। आतिशी शीशा बिखरी किरणों को एकत्रित करता है, फलस्वरूप अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। बुद्धि की उठा-पटक से हटकर जब अनुभव का प्रयोग करने की कला हम सीख जाते हैं, तो सहजता का सही रूप सामने आता है। तब बहाना खोजने की, सिद्धांतों को लादने की, मानने की जरूरत नहीं रहती। सहज योग का अर्थ है अपने जिस सच्चे स्वभाव को लेकर हम जन्में हैं, उसे जानें, उसमें जीएं। किताबी ज्ञान नहीं, गहरे में अनुभूति की उच्चतम स्थिति है सहजता। सहज होने का अर्थ है, जो जैसा है, उसे उसी रूप में स्वीकारना।

किताबी और व्यावहारिक शिक्षा का अन्तर

अभी तक उस भाषा को लेकर चर्चा की जा रही है, जिसको सुनकर साधक संदेह की स्थिति में पड़ जाता है या फिर भटक जाता है। इससे अनर्थ होता है। संतों ने किताबी ज्ञान के बारे में बहुत कुछ कहा है। उनका नाम लेकर हम किताबों को नकार देते हैं। तो क्या किताबें, शास्त्र बिलकुल निरर्थक हैं? जवाब —'हां' या 'न' में होता है अक्सर। कुछ लोग ग्रंथों की लीक से थोड़ा-बहुत भी इधर-उधर हटकर नहीं चलना चाहते, जबकि दूसरे इन्हें बिल्कुल नकार देते हैं। दोनों के अपने-अपने तर्क हैं। दोनों के तर्क ठीक-ठीक लगते हैं। लेकिन दोनों अति में झूल रहे हैं—'हां,' 'न' की अति में। दोनों की नजर से वह बात ओझल है, जिसके बिना दोनों अधूरे हैं।

आपके पास एक गाइड बुक है, किसी टूरिस्ट प्लेस की। उससे आपको पता चलता है उस टूरिस्ट प्लेस के बारे में। जब तक टूरिस्ट प्लेस देखा नहीं, उस गाइड की जरूरत है। उससे यह पता चलता है कि राह ठीक है कि नहीं (भौगोलिक मार्ग)। लेकिन जैसे ही आप स्वयं उस स्थान पर पहुंच जाते हैं, उस टूरिस्ट गाइड की आपके लिए पहले की सी सार्थकता नहीं रह जाती। यही बात काफी कुछ किताबी ज्ञान और उस अनुभव के संदर्भ में भी है, जो अध्यात्म के मार्ग पर होता है।

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय।
एकै आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

संत कबीर ने यह बात कही थी। इसे उनके अनुयायियों ने पकड़ लिया। शास्त्रों को उन्होंने नकार दिया। परिणामस्वरूप वैचारिक स्तर पर उनका जिस तरह से विकास होना चाहिए था, वैसा नहीं हुआ। वे अपने में सिमट कर रह गए। कबीर ने कब और किसके लिए 'प्रेम' का एकमात्र अक्षर पढ़ने की बात कही, यह गौण हो गया। बहुत बड़ी भूल की, कबीर के अनुयायियों ने। वे कबीर की भाषा नहीं समझ पाए। ऐसी ही भूल उन लोगों ने भी की जो शास्त्रों पर जोर देते रहे। उन्होंने श्रोत्रीय और ब्रह्मनिष्ठ में से पहले शब्द पर ज्यादा जोर दिया—जरूरत से कुछ ज्यादा। परिणाम हुआ शास्त्र का स्वयं प्रतिपादन करने वाले आचार्यों को कहना पड़ा, *''शास्त्रज्ञान को लादकर घूमने वाले ज्ञानियों की स्थिति उस गधे की सी है, जो चंदन का मूल्य नहीं उसके भार को जानता है''— यथा खरश्चंदन भारवाही भारस्य वेत्ता न तु चंदनस्य।* आद्यशंकराचार्य ने कहा, *पशोः पशुः यो न करोति धर्मं, प्राधीत शास्त्रोऽपि न चात्मबोधः।* ''पशुओं से गया बीता है वह जिसे शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद भी आत्मबोध नहीं हुआ।''

शास्त्रज्ञान वैचारिक स्तर पर आपको तैयार करता है ताकि बिना किसी संशय के शास्त्र का आचरण किया जा सके। इससे वह भूमि तैयार हो जाती है जिसमें डाला गया बीज अंकुरित हुए बिना नहीं रह सकता। करना और जानना दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। जानने का तात्पर्य यहां किसी डिग्री-डिप्लोमा से नहीं है।

सुंदर कांड में हनुमान

आपने भजन की एक पंक्ति अवश्य सुनी होगी— *'मेरो मन अनत कहां सुख पावे।'* इसी भजन की एक पंक्ति है— *'जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पे आवे।'* जहाज को छोड़ता है वह पंछी। उड़ता-फिरता है दूर-दूर तक। और जब कहीं कोई शरण नहीं मिलती, वापस आना तब विवशता हो जाती है उसकी। पंछी कौन है, साधना के संदर्भ में? जीव! पंछी दो पंखों से उड़ता है। जीव के भी दो पंख है, कर्म और ज्ञान। इन दोनों के मूल में कर्तापन होता है। इन दोनों से ही 'अहं' की पुष्टि होती है। 'अहं' भरे मैं का प्रयोग या तो कर्म में प्रवृत्त व्यक्ति में आपको देखने को मिलेगा, या फिर वह इस शब्द को बारम्बार दोहराएगा, जो बुद्धिमान होगा। कर्म और ज्ञान पर से जब तक विश्वास नहीं उठता, तब तक कोई भावजगत में प्रवेश नहीं पाता। वह भौतिकता से परे किसी इंद्रियातीत पर विश्वास ही नहीं करता। और जब दोनों पंखों में जान नहीं रह जाती, तब अलौकिक पर विश्वास करना मजबूरी हो जाता है। साधक जानबूझ कर ऐसी परिस्थिति पैदा करता है। विश्वास दिलाता है अपने भीतर छिपे अचेतन मन को, 'तेरे बस का कुछ नहीं है तब तक जब तक तू स्वयं को क्षुद्र समझ रहा है।' भौतिकता से धकेलता है बाहर को वह मन को— जैसे सूमो कुश्ती के पहलवान धकेलते हैं एक-दूसरे को। जो कूदने मात्र से डर रहा होता है उसकी इस घटना के बाद यात्रा शुरू हो जाती है, लेकिन जिसने दूसरे किनारे के बारे में कभी सोचा ही नहीं होता वह फिर वापस आ जाता है उसी किनारे पर जो उससे छूट गया था। सौभाग्य के अवसर को ठुकरा देता है वह। शास्त्र उकसाते हैं कई तरह से उसे कुछ कर गुजरने को लेकिन उसका विश्वास स्वयं से उठ चुका होता है—संभवतया किसी शाप की वजह से।

इन दिनों रामायण के सुंदरकांड की व्याख्या कुंडलिनी जागरण के संदर्भ में की जा रही है। हनुमान शापित हैं। जब तक कोई उन्हें उनके बल का स्मरण नहीं कराता, वे अपनी अनंत शक्ति के बारे में जान नहीं पाते। जामवंत उन्हें याद दिलाते हैं, ''किसलिए तुम्हारा अवतार हुआ है? तुम्हारे बिना कौन इस कार्य को कर सकता है?'' जामवंत को हनुमान के शापित होने का पता है। क्यों कुंठित है हनुमान की अनंतशक्ति इसे जानने के कारण ही वे उस कुंठा को धारदार बना पाते हैं। गुरु की यही तो भूमिका है कि वह शिष्य के अविश्वास को काट फेंके। हनुमान को स्मरण हो आता है अपने जन्म का उद्देश्य। अब वे अवसर नहीं चूकते। उससे भी ज्यादा वे कर गुजरते हैं, जिसकी कि जामवंत को भी उम्मीद न थी। बस फिर तो सब कुछ सहज रूप से होता चला जाता है। यही बात साधक के साथ है। शक्ति है, पर प्रसुप्त है। उसी का जागरण करना है। जागरण के बाद तो सब कुछ अपने आप होता जाता है।

समर्पण ही सौंदर्य है हनुमान का। यह समर्पण ही उन्हें अनंत शक्तियों और ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी बनाता है।

कुंडलिनी जागरण का अर्थ है, उपरोक्त संदर्भ में, राम-सीता का मिलन। चुराई गई सीता का पता लगाना कि वह कहां है, यह इस खोज का, प्रथम चरण है। इस खोज में महत्त्वपूर्ण भूमिका है हनुमान की। हनुमान का जन्म ही इस कार्य के लिए हुआ है। जब अपनी शक्ति को और दिशा दी, तो शापित हो गए। जिसलिए जन्मे, वह न करेंगे, तो शापित ही होंगे। उसी शाप का प्रभाव है कि ऊर्जा को सही दिशा में लगाने का जब समय आया तो, इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि वैसा करने की शक्ति है भीतर। जैसे ही विस्मृत का स्मरण हुआ क्षुद्र वानरशरीर पर्वताकार (महान) हो गया। एक कोने में सिर झुकाकर जो बैठा था, वह अमोघ ऊर्जा से संचरित हो उठा और विस्तृत सागर को एक ही छलांग में लांघ गया। लांघना एक छलांग में ही होता है। अनुकूल या कि प्रतिकूल के चक्कर में फंस गए, तो यात्रा थम गई समझो। जिन्हें संशय था, वे हिम्मत ही नहीं जुटा पाए। छलांग लगाने के बाद किसी प्रकार का विश्राम नहीं किया हनुमान ने। किसी को चतुरता से, किसी को बल से, तो किसी को मित्र बनाकर कार्य सिद्धि की हनुमान ने। तमोगुण को नष्ट किया, रजोगुण से आशीष ली और सत्वगुण को पक्ष में लेकर कार्य साधा। यही सौंदर्य है जीवन का। कुंडलिनी के जागरण के बाद इसी परम सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। त्रिपुर सुंदरी इसीलिए तो अधिष्ठात्री हैं इस कुंडलिनी साधना की।

दृष्टि और सामर्थ्य दोनों ही

तुलसीदास जी राम के दर्शन करना चाहते थे। दर्शन की प्यास अत्यंत गहरी थी। जब चाह एक हो और वह भी सात्विक तो अद्‌भुत घटित होता है। प्रेत ने रामदर्शन का मार्ग सुझाया। तुलसीदास जी ने कुष्ठरोगी बने श्री हनुमान के चरण पकड़ लिए। हनुमान ने चित्रकूट के घाट पर राम-लक्ष्मण के दर्शन कराने का विश्वास दिलाया। तुलसीदास बन गए घाट के पंडे। इष्टदर्शन के लिए तरह-तरह के पापड़ बेलने पड़ते हैं। यह भी तप है—जो मनोनुकूल न हो, उसे भी किया जाए। यही हठयोग है। जो भी आता, तुलसीदास उसके माथे पर चंदन लगाते, आशीर्वाद देते। दो सुंदर कुमार आए। तुलसीदास ने उनके माथे पर भी चंदन लगाया, आशीर्वाद दिया। सामने वृक्ष की डाल पर शुक बने बैठे हनुमान समझ गए कि कुमारों को तुलसी ने पहचाना नहीं है। दृष्टि न हो, तो चिरप्रतीक्षित भी नजरों के सामने से गुजर जाता है। शुक बने हनुमान जी ने सावधान किया—

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर।
तुलसीदास चंदन घिसें तिलक देत रघुवीर॥

दृष्टि के साथ ही उस झलक को देख पाने की सामर्थ्य (योग्यता) भी चाहिए। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्यदृष्टि दी, ताकि वह विराट रूप को देख सके। विराट रूप को उसने देखा, लेकिन उसे आत्मसात् नहीं कर पाया। इसलिए देखना और आत्मसात् करना अलग-अलग बातें हैं। तैयारी न हो तो दिखता नहीं। तैयारी अधकचरी हो, तो आत्मसात् नहीं होता। तैयारी के दो हिस्से हैं होते ये। साधक को इस प्रचलित उक्ति को गांठ बांध लेना चाहिए *'सहज पके सो मीठा होय।'*

इस संदर्भ में एक बात और समझ लेनी जरूरी है। 'साधना के विभिन्न सोपान' और 'साधना के क्रमिक विकास' के नाम से विभिन्न चरणों की व्याख्या अक्सर की जाती है। तंत्र में पश्वाचार, वीराचार और दिव्याचार का क्रम मिलता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता आदि ग्रंथों के आधार पर निष्काम कर्म, निष्काम उपासना और अद्वैत ज्ञान के क्रम का विवेचन किया गया है। योगशास्त्र में आठ अंगों (अष्टांग)का प्रतिपादन किया गया है। कुंडलिनी साधना में षटचक्रों के भेदन की चर्चा है। इन उपरोक्त भेदों से एक तो इस बात की सिद्धि होती है कि साधना में वैयक्तिक भिन्नता को नकारा नहीं जा सकता। एक ही छड़ी से सबको हांकना वैज्ञानिक नहीं। जो साधक जिस स्थिति में है उसकी साधना की शुरुआत उसी के स्तर से होनी चाहिए। ऐसा न होने पर मिलने वाले परिणाम भुलावा होते हैं। और

दूसरी बात यह कि इस क्रम में सोपान की सी स्थिति नहीं है। सीढ़ी पर चढ़ते समय आप एक सीढ़ी को पीछे छोड़कर दूसरी, अगली सीढ़ी पर पैर रखते हैं। पीछे छोड़ी गई सीढ़ी का अस्तित्व मिटता नहीं। वह फिर किसी दूसरे के काम भी आ सकती है। इसमें वापसी की भी संभावना है। जबकि अंकुर बनने के बाद बीज चाहे कि फिर बीज बन जाए, क्योंकि आगे यात्रा करने का मन नहीं है, तो ऐसा संभव नहीं है। बीज से अंकुर, अंकुर से पौधा और पौधे से वृक्ष बनने की प्रक्रिया एक संपूर्ण प्रक्रिया है। इसमें पीछे कुछ नहीं बचता। इसमें जो घटित होता है, वह संपूर्ण होता है। अधूरेपन की कोई गुंजाइश नहीं है। प्रत्येक साधक को इस आखिरी बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। इसीलिए जो जुड़ना है, जो छूटना है, जो मिलना है, जो बिछुड़ना है, सब अपने आप होने वाला है। साधक को तो स्वयं को उस प्रक्रिया में डाल देना भर है। उसके बात तो सब अपने आप घटता चला जाएगा।

जरूरत है सही लाइन में खड़े होने की

जब मैं पहली बार मुंबई गया—1980 में, तब लोकल ट्रेन पर चढ़ती-उतरती भीड़ को देखकर हैरान हो गया। चढ़ना-उतरना सैकिण्ड्स में होता। अपने मित्र हरीश से जब इस बारे में पूछा, तो उसने हंसते हुए जवाब दिया, ''यहां कौन चढ़ता-उतरता है। चढ़ने वाली लाइन में खड़े हो जाओ बस, स्वयं चढ़ जाओगे। उतरने वाली साइड में खड़े जाओ, बिना किसी परेशानी के उतर जाआगे।'' तीन वर्ष रहा मैं वहां। न मैं कभी ट्रेन पर चढ़ा, न उतरा। किसी प्रकार की शक्ति नहीं खर्च होती थी। बस सही लाइन में खड़े होने की जरूरत होती थी। अगर गलत लाइन में खड़े हो गए तब जरूर विपरीत गतिमान भीड़ से युद्ध-सा करना होता था। साधना का अर्थ ही है खुद को सही लाइन में खड़ा कर देना।

एक संत ने इस संदर्भ में कुम्हड़े के फल का दृष्टांत दिया है। कुम्हड़े के फूल के नीचे से (पिछली ओर से) फल लगता है। फल जब परिपक्व हो जाता है, तो फूल सूख कर गिर जाता है। कोई यह सोचकर कि फूल ने तो सूख कर गिरना ही है, फूल को तोड़ दे, तो फल सड़ जाएगा। स्वयं सूख कर गिरना और तोड़ना ये दोनों अलग-अलग बातें हैं। पहली क्रिया स्वाभाविक है, जबकि दूसरी सायास। फूल से फल बनने की प्रक्रिया का हिस्सा है फूल का सड़कर स्वयं गिरना, जबकि तोड़ना उस प्रक्रिया के बीच रुकावट पैदा करना है। जब एक प्रक्रिया पकती है, तो दूसरी सहज रूप से शुरू हो जाती है। इसलिए कुछ भी छोड़े नहीं। जिसे छूटना होगा, अपने आप छूट जाएगा।

एक सामान्य साधक को मूल रूप से जिन बातों को समझ लेना चाहिए उनकी संक्षिप्त-सटीक चर्चा काफी हद तक की जा चुकी है। कुछ ऐसे सवाल जो व्यक्तिगत रूप से किसी भी साधना के दौरान, किसी भी साधक के मन में उठते हैं, अपने आप निरस्त होते जाते हैं। किसी बाजार में भीड़ को देखकर आपके मन में अक्सर यह सवाल पैदा होता है कि कैसे मंजिल तक पहुंचा जा सकेगा, लेकिन जब आप बाजार की भीड़ में घुसते हैं, रास्ता खुद-ब-खुद मिलता जाता है। सभी तरह के क्यों, कैसे, और क्या, जैसे सवालों का जवाब अपने आप मिलता जाता है। इस संदर्भ में, मेरी दृष्टि में, दूसरे किसी के समाधानों का कोई विशेष महत्व भी नहीं होता, यात्रा के अनुभवों के आधार पर यात्रा ऊपर से एक-सी दीखती हुई भी अलग-अलग हुआ करती है इसलिए।

हम अपनी यात्रा की शुरुआत कैसे करें इसकी प्रेक्टिकल जानकारी अब देने का प्रयास किया जा रहा है।

श्वास-क्रिया का महत्व

हम भाग्यशाली हैं, इसलिए नहीं कि मनुष्य जीवन मिला, बल्कि इसलिए क्योंकि जीवन की डोर हाथ में आ गई है। हमें यह नहीं कहना पड़ा रहा—

जीवन खतम हुआ तो जीने का ढंग आया,

जब शमां बुझ गई तो महफिल में रंग आया।

या फिर

जहर जब पी लिया, तो याद आया
घाव जब सी लिया, तो याद आया,
इस जीने से मौत थी बेहतर
यार जब जी लिया, तो याद आया।

हां, अब तक जो जीवन जीया जा रहा था, पशुवत् था, मूर्च्छा में जीया जा रहा था। अब कोशिश होगी कि जीवन दिव्य हो, खुली आंखों से अर्थात् जागरण में जीया जाए।

मूल आवश्यकताओं में ऐसी कौन सी क्रिया है, जिसके बिना एक पल भी जीया नहीं जा सकता। बिना खाए रह सकते हैं, रहते हैं लोग लंबे समय तक। बिना पानी पिए भी जीवित रहा जा सकता है, इसकी अवधि खाने से कम है। बिना नींद के ज्यादा दिनों तक नहीं रहा जा सकता। इसके बिना जीवन अपना संतुलन खो बैठता है। इस असंतुलन में होने वाले अनुभव बड़े अजीब होते हैं। इन्हीं अनुभवों के लिए व्रत-उपवास आदि का अनुष्ठान प्रत्येक धर्म में किया जाता है। रुटीन से अलग हट कर जब कुछ टूटता है, तो मोह टूटता है। गति टूटती है, तो अनुभूति होती है कि जिसे ठोस समझ रहे थे, वह एक तरह की विशेष गति का परिणाम था। दीपावली के दिन बच्चों को देखिए। वे फुलझड़ी या हंटर जलाकर उसे तेजी से, गोल-गोल घुमाते हैं। लगता है आग जम गई हो। आग का गोल घेरा साफ दिखाई देता है। बीच के गेप खत्म हो जाते हैं। ऐनिमेशन फिल्मों को बनते देखिए। बोर हो जाएंगे। शूटिंग देखने में लोगों को अक्सर इसलिए ऊब होती है। तो रुटीन टूटने से 'माना गया' टूटता है। वह स्पष्ट दिखने लगता है, जो वास्तव में है। इसी आधार पर साधना पद्धतियों में रुटीन तोड़ने की सलाह दी गई। व्यवस्था जरूरी है, लेकिन व्यवस्था मैकेनिकल न हो जाए, इसलिए उसे बीच-बीच में तोड़कर झकझोरा जाता है। ऊपर जिन मूलभूत आवश्यकताओं की चर्चा की गई, उनके बिना एक दिन निकाला जा सकता है लेकिन एक और भी महत्वपूर्ण क्रिया है, जिसके बिना जीवन की बात सोची तक नहीं जा सकती, वह है श्वास लेना (लेना-छोड़ना और रोकना, इन तीनों के लिए यहां सामान्यतौर पर इसी शब्द का हम प्रयोग करेंगे)। दूसरे शब्दों में, यही श्वास जीवन है। मृत्यु के लिए इसीलिए कहा जाता है, श्वास निकल जाना। इस क्रिया का समूचे व्यक्तित्व से क्या और कितना गहरा संबंध है, इसका अंदाजा विभिन्न शारीरिक, मानसिक अर्थात् बाहरी और आंतरिक, पर्यावरण से जुड़ी—बदली स्थितियों से लगाया जा सकता है। क्रोध में, प्रसन्नता में, प्रेम में, एकांत में, भीड़ में इस प्रक्रिया में परिवर्तन होता है। इसी आधार पर प्राण संयम द्वारा मन के संयम की बात योगशास्त्रों में की गई है। यज्ञोपवीत संस्कार के समय त्रिसंध्या का उपेदश दिया जाता है। इसमें प्राणायाम पूर्वक गायत्री जप व सूर्याराधना प्रमुख होते हैं। सामान्य प्राणायाम से मन का संयम होता है और संवेगों पर नियंत्रण करने की शक्ति आती है।

सही श्वास लेना सीखें

खाना-पीना, सोना जबकि हमारी नित्य और सहज क्रियाएं हैं लेकिन इनसे संबंधित सही जानकारी न होने के कारण ही हमें ज्यादा-से-ज्यादा दुख उठाने पड़ते हैं। है न आश्चर्य ? यही बात सांस लेने और निकालने के बारे में है। हमें जब कोई समझाता है कि सही सांस लें, तो आश्चर्य होता है। सांस तो ले रहे हैं बचपन से, फिर यह गलत कैसे हो सकती है, एक प्रतिक्रिया होती है हमारी लेकिन वास्तविकता है यह कि हमारी श्वास क्रिया ठीक नहीं होती। सांस का कार्य है शरीर के रोम-रोम को ऑक्सीजन से ऊर्जावान बनाना। उसके लिए जितनी गहरी श्वास की आवश्यकता होती है वह हम नहीं लेते। इसीलिए शरीर को जितना सक्रिय होना चाहिए, उतना वह नहीं हो पाता।

इस तरह शरीर के स्तर पर ही संभावनाओं को रौंद देते हैं हम।
तो शुरुआत करें गहरी सांस लेने से। सांस छाती से न लें, पेट से लें। जब सांस लें, तो पेट गुब्बारे की तरह फूले। जब सांस बाहर निकालें, तो पेट सिकुड़ जाए। इसको जांचने के लिए उलटे लेटें, पेट के बल। महसूस करें श्वास प्रक्रिया में क्या अंतर आता है। यह सही श्वास क्रिया है। उलटा लेटने से श्वास स्वाभाविक हो जाती है। यह सहज स्थिति है। इसे हमने असहज बनाया हुआ है। योगियों के चित्र यदि आप देखें तो पाएंगे कि उनका पेट सिकुड़ा हुआ नहीं होता। हल्की तोंद होगी उनकी। त्रिवली होती है भगवान विष्णु के पेट पर। इसी कारण बुद्ध की प्रतिमाएं जापान, चीन आदि में तोंदल हैं, जबकि भारत में इनका पेट भीतर को धंसा हुआ और छाती बाहर को है। गणेश इसीलिए तोंदुल है। विघ्नहर्ता हैं वे इसीलिए।

शुरुआत अपनी ब्रीदिंग को सही करने से करें। श्वास लेने और बाहर निकालने की गति धीमी हो—जितनी धीमी संभव हो लेकिन हो गहरी। महसूस करें उसके आने-जाने को। महसूस करें उसकी दूरी और गहराई को, ध्यान श्वास पर हो। आपको महसूस होगा, ''मैं श्वास ले रहा हूं।'' शरीर में और 'मैं' में एक भेद महसूस होगा इस क्रिया से। जो प्राण ऊर्जा निष्क्रिय थी, सक्रिय होगी। यह काम जितनी धीमी गति से हो, उतना लाभप्रद व टिकाऊ होगा। इस क्रिया को आप लेट कर, बैठकर या खड़े होकर भी कर सकते हैं। श्वास-क्रिया में किसी प्रकार निरोध न आए, इसके लिए योगशास्त्र में वर्णित नेती (जल-सूत्र) आदि क्रियाओं का अभ्यास भी किया जा सकता है। इन क्रियाओं का उद्देश्य श्वास की निरोध रहित क्रिया के होने से है। इतने तक ही मूल्यवान हैं ये।

शुरुआत तन से

आप धनुष चलाना सीखना चाहते हैं। उसके लिए प्रारंभिक रूप से जरूरी है कि आपके हाथों, कंधों, कलाइयों पंजों व उंगलियों में शक्ति हो। प्रत्यंचा खींचते समय आपके हाथों में कंपन न हो। शरीर का और मन का कंपन अलग-अलग बात है। सूक्ष्म में एक होने पर भी स्थूल में थोड़ा फर्क है दोनों में। मन का कंपायमान न होना तो संधान के समय अपेक्षित है, जबकि हाथों की मजबूती धनुष को पकड़ने, प्रत्यंचा को खींचने के समय ही। शारीरिक रूप से स्वस्थ होना इसलिए जरूरी है, ताकि मन को भी स्वस्थ रखा जा सके। क्योंकि शरीर के स्तर पर जीते हैं हम, इसलिए शुरुआत शरीर से ही होगी। इस श्वास की क्रिया से शरीर नीरोगी होगा और संतुलित भी। कुंडलिनी के जागरण में श्वास की क्या भूमिका है, इसे आप पहले के अध्यायों में ठीक प्रकार समझ चुके हैं। यहां तो इतना संकेत भर काफी है कि इस प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा प्रसुप्त ऊर्जा को जगाएगी और उसे एक निश्चित दिशा देगी। इस बात को वे अच्छी तरह समझ सकेंगे जिन्होंने कभी 'हैंड पम्प' का उपयोग किया होगा। कभी-कभी जब पानी उतर जाता है हैंडपंप का, तो पंप में ऊपर से एकाध बाल्टी पानी डाला जाता है। उसके बाद जब पंप को चलाते हैं, तो मूलस्रोत से पानी आने लगता है। बाहर से डाले गए पानी ने अवकाश को भरा। इससे दूरी कम हुई। स्रोत से संबंध हो गया। जब नेचुरल और डीप ब्रीथिंग की जाती है तो कृत्रिम रूप से पैदा की जानेवाली ऊर्जा ऊर्जा के मूल स्रोत की धारा से जोड़ देती है। क्योंकि हमने पंप को काफी लंबे समय तक नहीं चलाया है इसलिए ऊर्जा तल में स्थित हो गयी। श्वास क्रिया से उसमें उठान बनता है।

आपने प्राणायाम के तीन चरणों को पढ़ा है—पूरक, रेचक और कुंभक। पूरक में सांस को भीतर खींचा जाता है। कुंभक में सांस को भीतर रोकते हैं और रेचक में इसे बाहर निकालते हैं। सांस को जब बाहर अर्थात् रेचक के बाद रोका जाता है, तो उसे बहिर्कुंभक कहते हैं।

श्वास के साथ आएं-जाएं

अभ्यास के प्रारंभ के समय में इन तीनों ही क्रियाओं को लयबद्ध करें। और उसकी प्रतिक्रियाओं को महसूस

करें। फर्क है आपमें अब। पहले श्वास लेना अनैच्छिक क्रिया था, जबकि अब आपने उसे ऐच्छिक बना दिया है। अन्य ऐच्छिक क्रियाओं की-सी स्थिति तो नहीं है इसमें, लेकिन अब यह अनैच्छिक भी नहीं है। ट्रैक से अलग हटकर आप ऐसा करेंगे तो शरीर में कुछ परिवर्तन आपको स्पष्ट महसूस होंगे। लयबद्ध श्वास क्रिया का अभ्यास करें, खूब गहरे तक। कुछ दिन के बाद सांस के साथ-साथ बाहर-भीतर जाएं। अंदर रुकें। पहली स्थिति में और इस स्थिति में जो अंतर आया है उसे समझें। पहली स्थिति में आप समग्र रूप से श्वास प्रक्रिया को देख रहे थे। देख रहे थे कि उसे जिस तरह चलना चाहिए उस तरह से चल रही है कि नहीं। विश्वास हो जाए उसके ठीक चलने का जब, तब उसके साथ-साथ स्वयं को बाहर-भीतर ले जाएं। यह अनुभव मजेदार, आश्चर्यजनक और दिलो-दिमाग में सिहरन पैदा करने वाला है, गोल-ऊंचे झूले पर झूलते हुए बच्चों को मिलने वाले आनंद के समान। कहते हैं इसी का आनंद लेने के चक्कर में लोगों को भांग आदि नशों की आदत पड़ जाती है। इसे 'लहर' कहते हैं। जैसे लहर में उठान-गिरान होता है एक निश्चित क्रम में, वैसी ही स्थिति भीतर मनोमय कोष में उत्पन्न होती है इस श्वास क्रिया के अभ्यास से। अब एक तो वह सौंदर्य है जो आप लहरों की अटखेलियों को देखकर महसूस करते हैं और दूसरा वह है जिसमें आप उसी के साथ चढ़ते-उतराते हैं। बड़ा एक्साइटिंग होता है यह अनुभव। इसी वजह से इस तरह के खेलों का शौक विदेशों में बढ़ता जा रहा है।

जो लोग उपरोक्त प्रक्रिया में सीधे प्रवेश करना चाहते हैं, उन्हें थोड़ी परेशानी जरूर होगी, क्योंकि ऐसा करने के लिए उनके पास कोई आधार नहीं होगा। जबकि जिन्होंने आसनों का प्राणक्रिया के साथ, डीप व करेक्ट ब्रीथिंग के साथ अभ्यास किया है, उन्हें आसानी होगी ऐसा करने में। अगर आपको परेशानी हो, तो आप एक निश्चित आसन के सैट के साथ पहले इसका अभ्यास करें। इन्हें करते समय मूवमेंट को स्लो करें। आसनों को करते समय शरीर के जिन अंगों पर जोर पड़ रहा हो, उन पर ध्यान केंद्रित करें। मांसपेशियों में होने वाले तनाव को, उसकी विभिन्न मात्राओं को महसूस करें। श्वास क्रिया को साथ जोड़ें। कुछ दिनों के अभ्यास से आपको कई ऐसे अनुभव होंगे, जिनका आपने पहले कभी अनुमान भी नहीं किया था कि ऐसा भी होता है, हो सकता है।

एक्सपर्ट होने के बाद

अच्छा ड्राइवर आप उसे कहते हैं, जो गाड़ी को स्मूथ चलाए। बाहरी और आंतरिक दो तरह के कारण होते हैं, जिनसे स्मूथनैस टूटती है, ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर गाड़ी हिचकोले खाती है। ड्राइवर यदि एक्सीलेटर और गेअर में ठीक तालमेल नहीं बैठा पा रहा हो, तो भी ऐसा होता है। गाड़ी झटके के साथ रुक जाती है। झटके देती है। अगर ऐसा है तो गाड़ी में बैठने का मजा जाता रहता है। बिलकुल यही बात शारीरिक-मानसिक क्रियाओं के साथ भी है। जब आप एक्सपर्ट हो जाएं, तो झटके से रोकना, मोड़ना, चलाना एक दूसरी ही तरह के अनुभव देता है। लेकिन जरूरी है कि पहले आप एक्सपर्ट बनें। शरीर का आधार लेकर श्वास क्रिया की प्रारंभिक गति को समझ कर उसमें परिवर्तन किए जाते हैं। पिछले अध्यायों में मूल और जालंधर आदि बंधों की चर्चा इसी संदर्भ में की गई है।

गहरी श्वास लेने के बाद इस प्रक्रिया में तेजी लाएं। जोर देना है रेचक पर। श्वासों को बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। षट्कर्मों में एक क्रिया है कुंजर क्रिया, इससे रेचन होता है। हाथी को जब लगता है कि पेट में कोई विकार रुक गया है, जमा हो रहा है, तब वह खूब पानी पीता है। इतना कि पेट फटने लगे। पानी बाहर को आने लगता है। फिर वह अपनी सूंड को मुख में डालता है। और पलट देता है पीए हुए पानी को। पेट में जमा विकार पानी के साथ बह जाता है। पशुओं को प्रकृति से ऐसा ज्ञान सहज रूप में मिला है। कुत्ते भी ऐसा ही करते हैं। पेट की गड़बड़ी महसूस होने पर वे खाना छोड़ देते हैं—लंघन करते हैं। हरी दूब के कोमल पत्तों को तोड़ते हैं। निगलते हैं। कोशिश करते हैं सब उलटने का। उलट देते हैं। थकाने वाला काम है यह। इसमें प्रयास करना पड़ता है। उस जगह

जोर पड़ता है, उथल-पुथल होती है, जहां विकार जमा हैं। इसलिए कभी-कभी इसका प्रभाव थकान के रूप में, बाद में, थोड़े समय तक रहता है। सिस्टम को फिर से सैट होने में थोड़ा समय जो लगता है। श्वास की क्रिया द्वारा रेचन करें। धीरे-धीरे जोर दें। रेचन के लिए जरूरी होगा कि पूरक में भी तेजी लाई जाए। प्रत्यंचा जितनी अपनी ओर को खींची जाएगी, तीर लक्ष्य पर उतने ही गहरे में प्रवेश करेगा। गहरे रेचन के लिए इसीलिए जरूरी है कि पूरक भी गहरा हो।

लंबोदर होना हास्यास्पद नहीं है गणेश के लिए। परमयोगी हैं वे। जापान आदि देशों की बुद्ध मूर्तियां लंबोदर ही होती हैं

जिस प्रकार रेचक क्रियाओं से शरीर के विकार बाहर होते हैं इसी प्रकार श्वास प्रक्रिया द्वारा, जिसमें पूरक और रेचक पर बल दिया जाता है, मन के विकार पिघल कर बह जाते हैं। इसमें दोहरी मार होती है विकारों को बाहर फेंकना व मन को गहरे तल तक स्व में स्थित करना। जिस प्रकार शरीर में पुराना रोग तह पर तह बैठा लेता है, जम कर ठोस रूप धारण कर लेता है, वैसी प्रक्रिया मन में भी होती है। ऊपर के विकार गलकर बहते हैं, राहत मिलती है। लेकिन जब मोटी तह बने विकारों को श्वास क्रिया पिघलाती है, तो रोग उखड़ता है। ऐसी स्थिति में धैर्य की आवश्यकता होती है। लगता है बात-बिगड़ गई। जो राहत मिली थी, वह झूठी लगने लगती है।

स्थिति विस्फोटक हो सकती है

होमियोपैथी के प्रसिद्ध डॉक्टर पी.सी. भारद्वाज के पास एक दिन मैं बैठा था, चंडीगढ़ में। किसी महिला मरीज को कोई लेकर आया। जो लेकर आया था, उसे इन्हीं डॉक्टर ने असाध्य कह दिए गए रोग से मुक्त किया था। डॉक्टर

ने तीन-चार घंटे लगाए। पूरी हिस्ट्री ली। रोगी को और संबंधियों को साफ कह दिया, ''तबीयत बिगड़ सकती है। तब घबराना नहीं है। ट्रीटमेंट शुरू होने के बाद बीच में रोकने की बात न करना, नहीं तो अभी ले जाओ रोगी को।'' रोगी के संबंधी ही नहीं, स्वयं रोगी भी परेशान हो गया था इलाज करा-करा के। उसने साफ कह दिया—''मरने से ज्यादा तो कुछ नहीं होगा, डॉक्टर साहब।'' डॉक्टर ने पुड़िया दी। ''अगर कोई परेशानी हो, तो फोन करना मुझे। कोई दवा न देना। जो होता है होने देना'', डॉक्टर ने रोगी के संबंधियों को समझाया। रोगी चला गया। डॉक्टर ने घर फोन किया। लंच मंगाया। ''घंटे भर में रोगी के घर से फोन आएगा'', पक्का विश्वास था उन्हें। वैसा ही हुआ। रिश्तेदारों ने बताया, ''हालत बहुत खराब है।'' रोगी की ब्लीडिंग रुक नहीं रही थी। बॉल्टियों खून बह गया था—ठोस बना काला-नीला खून। डॉक्टर मुझे भी अपने साथ ले गए थे। जब नार्मल कलर और थिकनेस की ब्लीडिंग होने लगी, तो डॉक्टर ने एक पुड़िया और दी। ''अभी कुछ देर ऐसी स्थिति और रहेगी। फिर सब ठीक हो जाएगा।'' डॉक्टर ने समझाया। रोगी निढाल और मरणासन्न थी। शाम तक स्थिति में सुधार हुआ। उसके बाद धीरे-धीरे सब नॉर्मल हो गया। कोई एक महीने के इलाज के बाद वह स्वस्थ-तंदुरुस्त हो गई। डॉक्टर साहब दुनिया से चले गए, लेकिन वह आज भी ठीक, चुस्त-तंदुरुस्त है।

क्या हुआ था रोगी को ? कुछ नहीं, रोग को दबाया गया था। लोग इसे ही रोगमुक्त होना समझ लेते हैं। जो खून बाहर बह जाना चाहिए था, वह बाहर नहीं निकला। उसने अंदर ही अपना घर बना लिया। रोगी ने जिसे स्वस्थ होना समझा था, वह तो भयंकर रोग के विस्फोट की तैयारी थी। विस्फोट जब हुआ, तो लगा यह कहां से आ गया। सब ठीक था, एकाएक तबीयत बिगड़ गई। एकाएक कुछ नहीं होता। 'एकाएक' का मतलब है, जो हुआ उसका कारण पकड़ में नहीं आया। कारण का पता नहीं चला इसलिए अकारण कहना आत्मप्रवंचना है। स्वयं को भुलावा देना है यह।

मन के साथ भी ऐसा ही होता है। चेतन से अर्ध-चेतन, अर्धचेतन से अचेतन में जाती रहती हैं हमारी वासनाएं। अतृप्त वासनाओं का गरम लावा जमा होता रहता है गहरे तल में। एकाएक विस्फोट होता है, और प्रलय आ जाता है। तब यह विस्फोट हमारे काबू से बाहर होता है। अनपेक्षित होता है यह इसलिए हम संभल नहीं पाते, असंतुलित कर देता है यह बुरी तरह। कल्पना कीजिए, किसी तरह से स्वयं इस विस्फोट की स्थिति आप तैयार करें। बर्फीले पहाड़ों के भारी कटाव से बचने के विस्फोट किए जाते हैं। इससे विस्फोटक स्थितियों पर काबू पाना काफी हद तक संभव हो जाता है।

अक्सर साधक ऐसी स्थिति में संभावित हानियों की चर्चा करते हैं—'कोई नुकसान, तो नहीं होगा।' शंका सार्थक है, और निरर्थक भी। सार्थक इस मायने में, क्योंकि इस तरह से सोचना आदत हो चुकी है और निरर्थक इसलिए क्योंकि आप जीवित रहते हुए, अपनी खुली आंखों से मृत्यु को स्वीकार करने जा रहे हैं। मृत्यु से ज्यादा हानि और क्या हो सकती। सब बना-बनाया छिन जाता है इसमें। लेकिन आप क्यों भूल जाते हैं यह कि कुछ पाने के लिए, कुछ खोना भी पड़ता है। यहां तो जो है नहीं, वह खोता है। इतना ही नहीं, जो खोता है, वह भी वापस मिल जाता है। इस तरह यह सौदा तो बिना कुछ भी गंवाए, सब कुछ पा लेने का है। अचेतन जब अर्धचेतन और अर्धचेतन जब चेतन बनकर खड़ा हो, तो घबराएं नहीं, धीरज से काम लें। साधना में सहज भाव से लगे रहें।

'कुंभक' का अर्थ है जब श्वासों को पेट में रोका जाए। इसे आभ्यंतर कुंभक कहते हैं। कुंभक का एक रूप है, पहले कहे गए से बिलकुल उलटा। इसमें श्वासों को बाहर रोका जाता है अर्थात् रेचक के बाद। इस तरह एक कुंभक हुआ पूरक के बाद, जबकि दूसरा रेचक के बाद। अब तक श्वास क्रिया की जिन क्रियाओं की चर्चा की गई है, उनके प्रकार चार हो गए। अब इस पूरी प्रक्रिया को—पूरक, कुंभक, रेचक, बहिर्कुंभक को लयबद्ध तरीके से करें। धीरे-धीरे इसमें तेजी लाएं। ध्यान रहे, जर्क, झटका नहीं लगना चाहिए। ऐसा तब तक करें, जब तक थक न
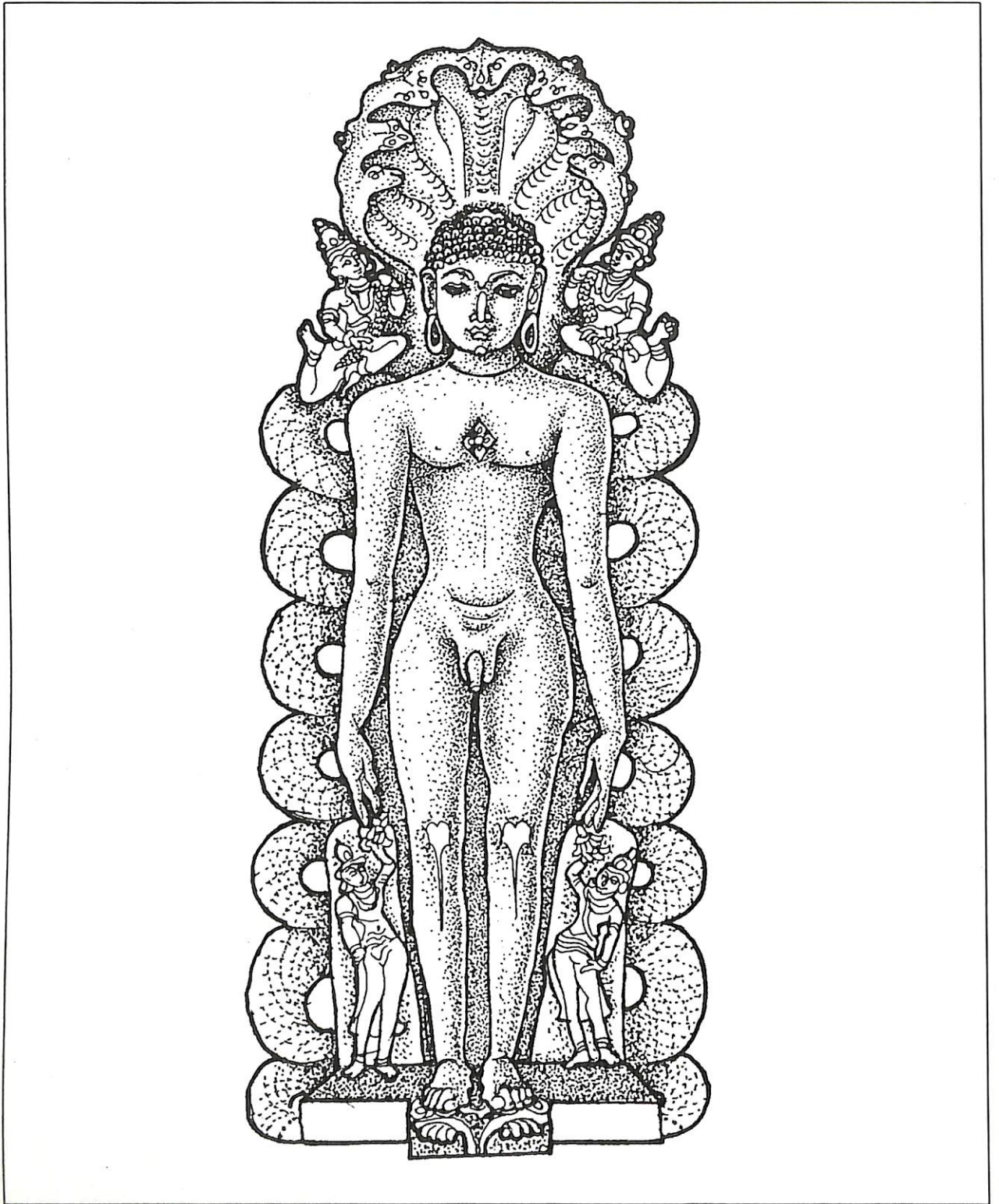
महावीर की नग्नता को समझना इतना आसान नहीं। सारी सांसारिक मर्यादाओं से परे होने के प्रतीक हैं महावीर। ध्यान की अप्रतिम मुद्रा है यह महावीर की।

जाएं, निढ़ाल न हो जाएं। इस क्रिया को बैठकर करें। खुले और हल्के वस्त्र लाभकारी होंगे इस प्रक्रिया के लिए। वस्त्र बांधने वाले न हो, तो और भी अच्छा है। आधुनिक प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि ऊर्जा का प्रवाह बैठने की अपेक्षा खड़े होकर ज्यादा होता है। महावीर का सारा ध्यान खड़े होकर ही है। बुद्ध की भी ऐसी प्रतिमाएं है, जिनमें वे खड़े है—ध्यानस्थ मुद्रा में। यह स्थिति बिलकुल ऐसी है जैसे तारों के बंडल को खोल दिया गया हो। सीधी तारें जल्दी गर्म नहीं होतीं। उनमें विद्युत बिना किसी अवरोध के प्रवाहित होती है।

शरीर नहीं तो क्या?

रुटीन को तोड़ने से होने वाले प्रभावों की ओर पहले संकेत किया जा चुका है। कुछ ऐसा घटेगा जो पहले नहीं घटित हुआ। जब यह अभ्यास गहरे और तेजी से होगा, तो महसूस होगा कि शरीर एक यंत्र की तरह है और आप उसका प्रयोग कर रहे हैं, बिलकुल ऐसे ही जैसे धौंकनी में हवा भर रहे हों। यह पहली अनुभूति होगी, ''मैं शरीर नहीं हूं।'' ''मैं शरीर नहीं...तो?'' यह अगला और महत्वपूर्ण प्रश्न है। अत्यंत महत्वपूर्ण है यह प्रश्न, क्योंकि यह अस्तित्व पर लगा प्रश्न है। अभी तक तो शरीर माना था खुद को, शरीर नहीं, तो फिर क्या... ? आद्य शंकराचार्य ने अपनी काव्यमयी रचना 'चर्पट पंजरी' में जिन प्रश्नों की चर्चा की है, वे इसी एक प्रश्न के इर्द-गिर्द घूमते हैं—

मुखौटे के भीतर होता है असल। मुखौटे तो अभिनय का प्रतीक होते हैं बस। मुखौटे को असल समझना सबसे बड़ी नादानी है

कस्त्वं कोऽहं कुत आयात: कामे जननी को मे तात।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्न विचारं॥
भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते।

''तुम कौन हो? मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? कौन मेरी माता है? और कौन है मेरा पिता? इन प्रश्नों पर विचार करके, इस विश्व को स्वप्नवत् विचारते हुए, गोविंद भज! गोविन्द का नाम ले। गोविन्द का स्मरण कर!''

सुना है कोई राजकुमार स्वामी रामतीर्थ के पास गया। उसने उन्हें ईश्वर का साक्षात्कार कराने को कहा। स्वामी जी और उसमें जो वार्ता हुई, उसकी एक झलक देखिए—

''किसी से मिलने से पहले जरूरी है कि आप उसे पहले अपना परिचय दें? आप कौन हैं?''
''मेरा नाम श्यामसिंह है।''
''जब आपका जन्म हुआ, तब आपका नाम क्या था?...श्यामसिंह?''
''नहीं! तब तो मेरा नाम कुछ भी नहीं था। यह नाम तो नामकरण संस्कार पर रखा गया।''
''मैं महाराज दिलीपसिंह का बेटा हूं।''
''उनके पुत्र के रूप में जन्मने से पहले आप थे या नहीं?''
''था!''
''कहां थे?''
''पता नहीं।''
''तब भी क्या महाराज दिलीपसिंह के बेटे थे!''
''नहीं! तब ऐसा नहीं था।''
''तो फिर?''
''यह तो पीछे की प्रक्रिया हुई। अब इसी तरह से आगे के जीवन के बारे में सोच-विचार कर देखो।''

राजकुमार चुप था। कुछ कहने को नहीं बचा था राजकुमार के पास। हम सभी की स्थिति ऐसी है। हम स्वयं से ही परिचित नहीं हैं। समस्याओं की जड़ तो यही है। कार्य-कारण के सिद्धांत पर बहस करना शुरू करते हैं, लेकिन फिर एक जगह चुप होना पड़ता है। वैसे हमने 'मैं क्या हूं?' इस प्रश्न की अहमियत को महसूस ही नहीं किया। आदत पड़ गई है हमें अलग-अलग मुखौटे पहनने की। जिसे आप पर्सनेलिटी कहते हैं, इसका अर्थ ही 'मुखौटा' होता है। हमारे व्यक्तित्व के इतने आयाम हैं कि अपना असली व्यक्तित्व, अस्तित्व ही हम भूल गए हैं। यह पर्सनेलिटी डिस्ऑर्डर का मामला है। नया मुखौटा पहनते ही पुराने मुखौटे को भूल जाते हैं। और पुराने को ओढ़ने के बाद नए को। जो सपने में चलते हैं। कभी उन्हें ऑब्जर्व करिएगा। उन्हें सुबह उठने पर कुछ भी याद नहीं रहता। ऐसे लोगों द्वारा सपने में कत्ल करने के मामले भी पढ़ने-सुनने को मिल जाते हैं। हम सब भी इस मायने में 'मेन्टल' ही हैं। हमारा बोलना, विचारना, सोचना-समझना तर्कसंगत और सुव्यवस्थित नहीं है। क्या ऐसा नहीं है कि हम सोचते कुछ हैं, कहते कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं। ऐसा असामंजस्य ही तो उसके व्यवहार में भी होता है, जिसे आपकी भाषा में 'पागल' और आज की, 'आधुनिक मनोविज्ञान' की भाषा में 'एब्नॉर्मल' कहते हैं।

समय पर चोट कम्प्रोमाइज नहीं

कहते हैं न कि चोट अगर समय पर की जाए, तो असंभावित संभावित हो जाता है। असंभव वह इसीलिए होता है क्योंकि अभी उसके लिए समय उचित नहीं होता। परिष्कृत लोहा जब एक निश्चित तापमान पर पहुंच जाए, तो उसे आप मनचाहा आकार दे सकते हैं। समझदार कारीगर ऐसा ही करता है। ऐसा ही प्रयास अब आपको करना है। श्वास क्रिया के अभ्यास के बाद जब आपका तन-मन क्लांत हो जाए, शरीर और 'मैं' का भेद जब आप साफ-साफ महसूस कर रहे हों, तो ''मैं कौन हूं'', इस अस्तित्व से संबंधित प्रश्न को उड़ेल दीजिए अपने अंतस् में। शुरू-शुरू में जब आप इस प्रश्न को अंतस् में फेंकेगे, तो यह उसकी ऊपरी सतह से ही वापस आ जाएगा। यह प्रश्न बाहरी प्रश्न है। अंतस् का तर्क होगा, ''जो हैं, वह हैं। पता तो है। इसलिए इस प्रश्न की कोई जरूरत नहीं।'' उसके तर्क की कसौटी पर यह पूछा गया प्रश्न निराधार होगा। जैसे शरीर किसी बाहरी वस्तु को स्वीकार नहीं करता, वापस भेज देता है उसे, बिल्कुल ऐसी ही घटना होगी यहां, अंतस के स्तर भी। लेकिन आपको धीरज नहीं छोड़ना है। ऐसा होना स्वाभाविक है। अब आप कुछ ऐसा कर रहे हैं, जिसकी आपके तथाकथित अस्तित्व को, आपकी पर्सनेलिटी को

कतई अपेक्षा नहीं है। दोहरी चोट कर रहे हैं आप। श्वास क्रिया से शरीर के स्तर पर आपने छेड़खानी की है, और 'मैं कौन हूं' ऐसा प्रश्न करके आप अपने स्वीकृत अस्तित्व की जड़ों को कुरेद रहे हैं। इस छेड़खानी को कुछ समय के बाद अंतस् स्वीकार करेगा। वहां वह बड़ी चालबाजी से जवाब देगा। कोई कम्प्रोमाइज नहीं करना है आपको।

किसी अपराधी से आपका अगर पाला पड़ा हो, तो आपको इस बात का अंदाजा हो सकता है कि कैसे वह पहले चुप्पी साधकर रखता है। फिर जब देखता है कि अब तो जवाब देना ही होगा, तो सफेद झूठ को ऐसा रंग देता है कि आप उलझ कर रहे जाते हैं, उसके सफेद झूठ में लिपटे जवाब में। ऐसा ही कुछ इस यात्रा में भी होगा। छलावे की पूरी संभावना है यहां, अगर आप थोड़े-से भी कमजोर हुए तो।

मां भी आप हैं बच्चा भी

मुझे याद है ऋषिकुल की। गुरुकुलों-ऋषिकुलों की याद लोगों (अभिभावकों) को अक्सर तब आती है, जब उन्हें लगता है कि अब उनका बच्चा हाथ से निकल रहा है, निकल चुका है। अक्सर बिगड़े बच्चों की शरणस्थली बन गए हैं ऋषिकुल-गुरुकुल। उन बिगड़े बच्चों पर जब अंकुश लगता, तो भयंकर प्रतिक्रिया होती। कई बच्चे तो वहां से भागने के लिए ऐसे रास्ते अपनाते जिनके बारे में सोचा तक नहीं जा सकता। प्रत्येक एक नई तरकीब की खोज करता। क्योंकि पुराने तरीकों से तो पकड़े जाने की संभावना होती थी। और वह इस तरह का कोई रिस्क नहीं ले सकता था। लेकिन बेचारा फिर भी पकड़ा जाता। पकड़वाने में दूसरे लोग मदद करते। उन्हें भी पता लग जाता कि यह ऋषिकुल या गुरुकुल का ब्रह्मचारी है। प्रेम और दंड दोनों का सहारा लेते शिक्षक। उद्देश्य हित समझाने का था। पहले वहां रुके रहना उस ब्रह्मचारी के लिए विवशता होता, क्योंकि वह भाग नहीं सकता था। कोई लाभ भी नहीं था भागने का। जब भागे और पकड़े भी गए तो भागना निरर्थक हो जाता है। धीरे-धीरे वह ब्रह्मचारी वहां की व्यवस्था में ढल जाता। फिर तो वह छुट्टियों में भी घर नहीं जाना चाहता।

कहने का अर्थ है, भागने की सार्थकता तो भाग जाने में है। जब पकड़ लिया जाना ही निश्चित है, तो क्या लाभ भागने का। 'मैं क्या हूं,' इस सवाल को आप बार-बार दोहराइए। पहले चुप्पी, फिर तरह-तरह के जवाब मिलेंगे आपको। सही जवाब के पास जैसे-जैसे आप पहुंचते जाएंगे, आपके जीवन में (व्यवहार में) परिवर्तन होगा। कहते हैं कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टीन किसी तथ्य को जानने के लिए जब 999 प्रयोग कर चुके, तो किसी साथी ने पूछा, ''आप निराश नहीं हुए?'' जवाब 'न' में मिला। ''अब मैं अपने जवाब के पास हूं, क्योंकि ये प्रयोग बताते हैं कि 999 गलत परिकल्पनाओं को मैंने अपने मस्तिष्क में स्थान दिया हुआ था।'' सच के पास जाने का अर्थ है—जो सोच रहे थे गलत था। जो मान रहे थे स्वयं को, गलत था। एक भ्रम था। उसी झूठे बोझ के तले सारी असल संभावनाएं दबी हुई थीं।

शास्त्रीय ज्ञान को नई (वैज्ञानिक) शब्दावली देने वाले प्रसिद्ध विचारक ओशो ने इस अनुभव को जन्म की महत्वपूर्ण शारीरिक-मानसिक घटना बताया है। उनके अनुसार , इसमें पीड़ा है, आनंद है। इसमें आश्चर्य है। मां को प्रसव पीड़ा होती है, लेकिन अपनी संतान को स्वस्थ देखकर उसकी सारी पीड़ा जाती रहती है। और बच्चा? पूर्ण सुरक्षित वातावरण से निकल एक बिल्कुल नए माहौल में आता है। आश्चर्य होता है उसे। यह क्या हुआ। कैसे हुआ। नए वातावरण में शारीरिक-मानसिक रूप से स्वयं को समायोजित करता है वह। शुरू-शुरू में हैरान-परेशान होता, लेकिन फिर स्वयं को एडजेस्ट कर लेता है। इस दृष्टांत में मां और बच्चे के साथ अलग-अलग अनुभव घटित होते हैं, जबकि साधक यहां दोहरी भूमिका निभाता है। वही मां है और बच्चा भी। दोनों ही अनुभवों से गुजरता है वह। एक बार फिर इस बात को समझ लें कि यह सारी प्रक्रिया सहज होनी चाहिए। इससे होने वाले अनुभव असहज-से लग सकते हैं आपको। यहां पढ़े-लिखे, सुने-सुनाए को आधार बनाकर कुछ नया निर्मित करने की गलती न

कीजिएगा। वह स्थायी नहीं होगा। करते जाइए, जो ऊपर बताया है। समय आने पर स्वयं घटित होगा सब। शुक्र-डिम्ब का गर्भाशय में मिलन हो गया। अगर कुछ गड़बड़ न हुई, कहीं कोई जोर-जबर्दस्ती न की गई, तो नौ महीने प्रतीक्षा करनी होती है। संभव है यह घटना किसी के साथ सातवें महीने में हो जाए। यह उसके लिए सहज है। आप जबर्दस्ती न करिएगा। नहीं तो मिट्टी में मिल जाएगा किया-कराया। और जब समय आएगा, तो वह रोके न रुकेगा, स्वयं पुकार-पुकार कर कहेगा, ''आ गया मैं।''

स्वामी रामतीर्थ ने अपने प्रवचनों में एक ऐसी बहू का उदाहरण दिया है, जो पहली बार मां बन रही थी। गर्भवती थी वह। पूरे समय में थी वह। उसने अपनी सासू मां को कहा, ''मां जी, मैं सोने जा रही हूं। जब भी कुछ हो, तो मुझे उठा लीजिएगा।'' बहू की यह बात सुनकर सासू मां हंसी। सासू मां तो जानती थीं सब। वह तो गुजर चुकी थीं उस अनुभव से। वह जानती थीं क्या होता है बच्चा जनते समय। उसने हंसते हुए कहा, ''बेटी, सो जा। लेकिन जब समय आएगा, कुछ होने वाला होगा जब, तब तू सो न सकेगी। और अगर सो भी रही होगी, तो खुद जागेगी और अड़ोस-पड़ोस को भी जगाएगी।'' संभव है सास की बातें उस समय बहू को समझ न आई हों। रहस्यमयी लगी हों। बेकार भी लग सकती हैं। टालने की कोशिश लगी हो। लेकिन जब वह स्वयं उस अनुभव से गुजरी होगी, तब पता चला होगा उसे अपनी सास की बातों की वास्तविकता का। हो सकता है, उसकी बहू ने भी ऐसा ही सवाल पूछा हो, और वह भी हंसी हो। सोचा हो, ''जान जाएगी खुद ही।'' अपनी बातों पर बहू द्वारा बरती गई लापरवाही से भी वह परेशान न हुई होगी।

अधूरे नहीं, पूरे मन से

इस सारी प्रक्रिया को पूरी जान लगाकर करें। गहरी श्वासों की प्रक्रिया में हुंकारने या फुफकारने की-सी ध्वनि होगी। आप जिस स्थान पर इसे करेंगे, वह इस ध्वनि से झंकृत हो उठेगा। आसपास के सैल चार्ज हो जाएंगे। और फिर जब ऐसे में आप दूसरी प्रक्रिया को अपनाएंगे, ''मैं कौन हूं ?'' इस प्रश्न का उत्तर जानने की प्रक्रिया को, तो आपका समूचा अंतस् चिरता जाएगा, प्रत्येक स्तर पर। थकने के बाद विश्राम की, विश्रांति की स्थिति में जो अनुभव आए, उसे आने दें। इस समय तटस्थ भाव से रिसीवर बन जाएं। रिसीवर बनने का अर्थ है, कोई आग्रह नहीं है। जो आ रहा है उसे स्वीकार रहे हैं बस। अगर कहीं भी यह भावना आई कि कुछ विशेष प्रकार का हो, तो समझ लीजिए चूक गए। यह स्थिति बिल्कुल प्रार्थना की सी है। सोचिए, किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में जो घोर जंगल में राह से भटक गया हो। उसे यह तो समझ आ रहा है कि जिस राह से वह चल रहा है, वह ठीक नहीं है, लेकिन यह नहीं जानता वह कि सही राह कौन-सी है। ''मैं कौन हूं ?'' इस प्रश्न ने यह संकेत दे दिया कि वह नहीं है, जो मान रहा है, समझ रहा है, लेकिन 'कौन हूं' इसका सही जवाब नहीं पता। प्रश्न फेंका जा रहा है, फेंका गया है और प्रतीक्षा है आनेवाले जवाब की। सही जवाब आए, इसके लिए जो भी आ रहा है उसे आने दें। स्टेशन पर किसी की प्रतीक्षा कर रहे हों आप। आने वाला आपको जानता हो, आप न जानते हों उसे। खड़े हैं एक्जिट वाले गेट पर। प्रत्येक आने वाले को आने दे रहे हैं। किसी को रोक नहीं रहे। कैसे रोकें, जब पता नहीं उसका जिसकी इंतजार कर रहे हैं। ऐसी स्थिति समझें यहां भी। इसलिए जो होता है उसे होने दें।

इस पूरी प्रक्रिया में एक बात का और ध्यान रखना है। इसे बार-बार कहा जाता रहा है। पूरी ताकत को झोंक दें, इस प्रक्रिया में। ऐसा बार-बार कहने की जरूरत इसलिए होती है क्योंकि पूरे मन से कुछ भी करने की हमारी आदत नहीं है। हम जो कुछ भी करते हैं अधूरे मन से करते हैं। इसीलिए भोग और योग दोनों ही हमारे हाथ से सरक जाते हैं। दो किश्तियों में सवार होने का फल जानते हुए भी हम ऐसा करते हैं।

सुना है बड़ों के मुख से। वह संयोग ही था। एक साधु और वेश्या का घर आमने-सामने था। साधु छत पर

ध्यान-उपासना करता । वेश्या को साधु का ऐसा करना अच्छा लगता। वेश्या अपने नारकीय जीवन से मुक्त होना चाहती थी। वह सोचती, काश! उसे भी सात्विक जीवन जीने का अवसर मिलता। और उधर? वेश्या के रूप पर मोहित था साधु। उसके मन में वेश्या बस गई थी। दोनों अपने जीवन से असंतुष्ट थे। वेश्या अपना धंधा करती, आधे मन से। साधु ध्यान-उपासना करता आधे मन से। एकाएक, एक ही दिन दोनों की मृत्यु हो गई। दोनों को यमराज के सामने पेश किया गया। धर्मराज ने साधु को नरक और वेश्या को स्वर्ग ले जाने का आदेश दिया। दोनों हैरान थे। दोनों को अनपेक्षित मिल रहा था।

इस घटना को अक्सर दूसरे संदर्भों में घटाया जाता है। घटना के आखिरी हिस्से के आधार पर। लेकिन हमारे लिए घटना का पहला हिस्सा महत्वपूर्ण है। 'सेटिफेक्शन' यह शब्द आपको अक्सर सुनने को मिलेगा। जो जहां है, वहां खुश नहीं है। सत्संग में बैठे घर की बात सोच रहे हैं और घर में बैठे सत्संग की। साधना में सब कुछ मिटाने को तैयार हैं, लेकिन यह भी सोच रहे हैं कि अगर हाथ में आया निकल गया और...कुछ न मिला तो। जब 'कुछ' के साथ जुड़े होते हैं, तो सोचते हैं, यह भी कोई जिंदगी है। अधूरेपन को ही अपने जीवन का पर्याय बना लिया है हमने।

इसलिए, झोंक दें अपनी पूरी एनर्जी को श्वास प्रक्रिया में, 'मैं कौन हूं?' यह प्रश्न पूछते समय!

अधूरापन कुंडलिनी जागरण में प्रमुख बाधा है। अगर कभी कोई रुकावट लगे, समझ लीजिएगा कहीं किसी दोराहे पर खड़े हो गये हैं। दोराहा गति को रोक देता है। दोराहे पर पहुंचकर यात्रा रुक जाती है। जब हम अधूरे मन से किसी काम को करते हैं, तो सफलता नहीं मिलती, मिल ही नहीं सकती। *संशयात्मा विनश्यति*—संशय मन वाला निश्चित रूप से विनष्ट हो जाता है।

एकांत और मौन भी

आपने पूरे मन से, पूरी शक्ति लगायी। परिवर्तन हुए। उन बदलावों को आपने महसूस किया। अभी वे अनुभव आने-जाने वाले, बदलने वाले हैं। कई रंग-रूप लेंगे वे। इसीलिए ऋषियों ने एकांत और मौन की बात कही। एकांत इसलिए कि जो महसूस हो, उसे गुप्त रखने को आप विवश हों। इन अनुभवों की चर्चा आप उससे करें, जिसके मार्गदर्शन में आप साधना कर रहे हैं—अर्थात् गुरु के सिवाय किसी को न बताएं जो आप साधना के क्षणों में महसूस कर रहे हैं। यदि ग्रुप में साधना कर रहे हैं, तो अन्य किसी साधक से नहीं। कारण? ये अनुभव बिल्कुल पर्सनल हैं। जरूरी नहीं है कि दूसरे को भी ऐसे अनुभव हों ही। अक्सर ऐसा होता है। ऐसे में दूसरों के अनुभवों को सुनकर, अचेतन में उन्हें बसाकर आप निदर्शित हो सकते हैं। यह भी संभव है कि जिन्हें आप अपने अनुभवों के बारे में बताएं, वे आपकी हंसी उड़ाएं, क्योंकि उनका स्तर आपसे भिन्न है। इससे भी आपके अनुभवों के आने में रुकावट आ सकती है। उन हवा के सुगंधित झोकों को आप नकार सकते हैं, जो आपमें चेतना का संचार करते। यह बहुत बड़ी ट्रेजडी होगी। मौका न आता, तो कोई बात नहीं थी। आया तो, लेकिन फिसल गया हाथ से, काफी दुखद होता है यह। उस फील्डर को कितना दुख होता होगा, जिसके हाथ से कैच की गई गेंद छिटक जाती होगी। वैसी ही दुर्घटना समझिएगा इसे। इसीलिए मौन रखने को कहा जाता है। कुछ बाहर निकलना चाहता है, लेकिन आप बाहर नहीं जाने देते। आपके समूचे व्यक्तित्व को मथता है वह तब। ऐसा होना ही तो उपलब्धि है। यही मंथन है। समुद्र मंथन की घटना है यह कुछ बड़ी तेजी से घूम रहा है भीतर, लेकिन उसे बाहर निकलने की मनाही है। बेचैनी पैदा करेगी यह स्थिति। धीरज बनाए रखिएगा ऐसे में। यह अनुभूति जितनी बाहर की ओर भागने को हो, उतना ही समेटें इसे, बिलकुल वैसे ही जैसे कछुआ समेटता है अपने आपको।

मौन का अर्थ आमतौर पर 'न बोलना' लिया जाता है, जबकि ऐसा है नहीं। मौन का अर्थ है सारे कपाटों को

बंद-सा कर लेना। वाणी तो एक दरवाजा है, जहां से ऊर्जा बाहर की ओर प्रवाहित होती है। मौन का अर्थ है जहां से भी ऊर्जा बाहर की ओर प्रवाहित हो, उस पर ताला डाल देना। इस मायने में आंखें, कान, नाक, रसना, त्वचा आदि पर ताला लगाने की जरूरत है। इनका उपयोग भी कम-से-कम करें। अभ्यास के बाद जब भी समय मिले, इस प्रकार का मौन रखें। शक्ति को संचित करें और फिर अगले रोज पूरी ऊर्जा लगाएं साधना में।

अतिरिक्त ऊर्जा का रहस्य

किसी को पूरी ताकत से भागने के लिए कहें। जब वह भागे तो उसकी गति को नोट करें। अब दो को एक साथ भगाएं। नोट करें। पहले से गति में फर्क होगा। उसके पीछे अगर कुत्ता छोड़ दिया जाए, तो उसकी गति में और ज्यादा तेजी आ जाएगी। ऐसा शरीर के उस सिस्टम की वजह से होता है जो शरीर की रक्षा करता है। वह जरूरत पैदा कर देता। 'बचना है' इस तरह का विचार ग्रंथियों को उत्तेजित करता है। इससे अतिरिक्त ऊर्जा उत्पन्न होती है। जब प्यास गहरी हो, तो वह उद्दीप्त करती है ऊर्जा को।

सुना है जब रामकृष्ण परमहंस से नरेन्द्र ने ईश्वर से संबंधित सवाल पूछा और उनसे ईश्वर को देखने की इच्छा भी जाहिर की, ''देखा है, देख रहे हैं, तो क्या मुझे भी दिखाएंगे?'' और रामकृष्ण ने जब हामी भरी तो पूछा, ''कब?'' इस प्रश्न पर रामकृष्ण मौन हो गए। ''ईश्वर देखा है?'' इस प्रश्न का जवाब जिसने बेहिचक दे दिया, वे रामकृष्ण परमहंस ''कब दिखाएंगे?'' इस संवाल पर मौन हो गए। पहला सवाल व्यक्तिगत था। दूसरे सवाल में परतंत्र थे वे। जब सामने तैयारी होगी, तभी तो दिखा सकेंगे। दिन बीते। नरेन्द्र नहा रहे थे नदी में। रामकृष्ण भी साथ थे। नरेन्द्र ने डुबकी लगायी। रामकृष्ण ने गरदन पकड़ी नरेन्द्र की और पानी में डुबोया। बूढ़े हाथ कमजोर पड़ गये। नरेन्द्र ने जोर से झटका दिया। रामकृष्ण किनारे पर जा गिरे। नरेन्द्र ने देखा रामकृष्ण को। दोनों एक-दूसरे को तकते रहे। नरेन्द्र सवाल पूछ रहे थे, ''ऐसा क्यों कर रहे थे आप?'' रामकृष्ण जवाब दे रहे थे, ''भूल गया, तेरे सवाल का जवाब दे रहा था।'' रामकृष्ण बोले, ''मिला जवाब। कब दिखेगा ईश्वर इस सवाल का? जब इतनी तड़प होगी, जितनी पानी में सांस लेने के लिए थी, तब वह स्वयं आ खड़ा होगा।''

अभी तो रामकृष्ण बूढ़े थे। यदि किसी और ने भी ऐसा ही किया होता, तो ऐसा ही होता। जीवन को बचाने के लिए पूरी ऊर्जा का प्रयोग होता है। जितने गहरे में जीवन के नष्ट होने का खतरा होता है, उतनी ऊर्जा का विस्फोट होता। इसलिए रत्तीभर न बचाएं, पूरी ऊर्जा लगा दें। अनंत संभावनाओं का समुंदर उमड़ने लगेगा।

भ्रम और विभ्रम

इन विलक्षण, आश्चर्यजनक, इन्द्रियातीत और अनिर्वचनीय अनुभवों की यात्रा के संदर्भ में इन दो शब्दों की चर्चा भी जरूरी है। ये शब्द हैं भ्रम और विभ्रम। हिंदी में दोनों शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में होता है, लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान में इनके संदर्भ अलग-अलग हैं। पहले हम भ्रम शब्द को लेते हैं। इसका अर्थ है जो जैसा है, उसे उस रूप में न देखकर कुछ और समझना। आप जा रहे हैं। धुंधलका है। एक झाड़ी को आपने देखा। दूर से वह ऐसी लगी, मानो कोई व्यक्ति छिप कर बैठा है। इस स्थिति में जिसे देखकर आप भ्रमित हुए, वह वस्तु बाहर है। अचेतन में बैठे भय ने सामने दिखने वाली झाड़ी को देखकर रिफ्लेक्ट किया, जबकि विभ्रम में वस्तु भी भीतर बैठी है, अचेतन में और जिस पर वह रिफ्लेक्ट कर रही है वह भी कोई बाहर का नहीं है। यह पूरी तरह इनर प्रोसेस है। आपने देखेंगे हो ऐसे व्यक्ति जिन्हें लगता है कि उनके आसपास कोई है। इसका मोटा उदाहरण है ऐसे व्यक्ति जो अलग-अलग स्टाइल में, दो व्यक्ति बन कर बातचीत करते हैं अपने-आपसे ही—जोर-जोर से।

ये दोनों ही स्थितियां साधक के लिए ठीक नहीं हैं। दूसरी स्थिति तो अजीब-से व्यामोह में डाल देती है। साधक को लगने लगता है श्री कृष्ण ने दर्शन दिये। शिव साक्षात् सामने आ खड़े हुए। तरह-तरह की आवाजें आती

हैं। सुगंधियों को महसूस करता है साधक। कई ऐसी घटनाएं होती हैं, जिन पर साधक को स्वयं विश्वास नहीं होता। इसे विभ्रम कहते हैं। देखने में आया है कि प्रजनन क्रिया के शुरू होने से पहले (जब मादा पहली बार मां बनती है) 'फेक हीट' का अनुभव होता है बछड़ी को। मोटे तौर पर देखने पर उसके सारे लक्षण, रियल हीट के होते हैं, जबकि हीट फेक होती है। यह कई बार रिपीट हो सकती है। छह महीने बीत जाने के बाद रियल हीट आती है। फेक हीट का अगर अंदाजा न लग पाए, तो गर्भाधान नहीं होता। पशुओं में यह मांग शारीरिक होती है। शरीर पूरी तरह से विकसित नहीं होता, इसलिए ऐसी स्थिति की बारम्बारता मादा को मातृत्व सुख से वंचित कर देती है—कृत्रिम गर्भाधान के संदर्भ में विशेषकर। इसमें गलतियों की संभावना होती है। सांड को स्मैल से इसका अंदाजा हो जाता है।

अधकचरी साधना से होने वाले अनुभव भी अधकचरे होते हैं। इसलिए सावधान रहें। झूठी उपलब्धियों पर खुश न हों। ऐसी स्थिति में कई साधक अपने मार्गदर्शक गुरु पर भी पक्षपात का दोष लगा देते हैं। कई नादान तो छोड़कर चले जाते हैं गुरु को। उन्हें लगता है कि उनकी उपलब्धियों से गुरु को ईर्ष्या होती है। झूठी शाबाशी चाहते हैं वे। आप इन मनोवैज्ञानिक कमजोरियों के प्रति सावधान रहिएगा।

योग में ऐसी घटनाओं को सिद्धियां कहा गया है। योगशास्त्र ने इन्हें रोग कहा है। ये लक्ष्य के बीच में आने वाले अवरोध हैं। इनके चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। इनके चक्कर में पड़कर कई अच्छे साधक लक्ष्य से भटक जाते हैं। पिछले अध्यायों में आपने पढ़ा है कि विभिन्न चक्रों का भेदन करने पर कई दिव्य शक्तियां साधक को सहज रूप में प्राप्त हो जाती हैं। साधक का अर्थ है अभी साध्य की प्राप्ति नहीं हुई है। साध्य प्राप्ति के बाद, सिद्ध की स्थिति प्राप्त होने पर साधन, साध्य और साधक की त्रिपुटी सहज रूप से नष्ट हो जाती है। इसलिए साधक को बीच में नहीं रुक जाना चाहिए— *राम काज कीजे बिना मोहे कहां विश्राम।*

सावधानी हटी, दुर्घटना घटी

कहते हैं एक बार कोई व्यक्ति ताड़ पर चढ़ा। ताड़ फलों को लादे उतरते हुए उसे पेड़ से थोड़ी दूर बैठा एक व्यक्ति बड़े आराम से देख रहा था। उतरने वाला जानता था कि थोड़ी-सी भी लापरवाही जान ले सकती है। इसलिए वह बहुत संभलकर उतर रहा था। वह जमीन से जब कोई 5-6 फुट की दूरी पर रह गया तो उसे पेड़ के पास बैठे व्यक्ति ने सावधान किया, ''संभलकर उतरना।'' पेड़ से उतरने वाले व्यक्ति ने जमीन पर छलांग लगा दी। वह उस व्यक्ति के पास गया, जिसने उसे संभलने की चेतावनी दी थी, ''जब मैं खतरे में था, जब मेरी जान पर बनी हुई थी, तब तुमने मुझे सावधान नहीं किया, लेकिन जब मैं खतरे से पार था। कोई संभावना नहीं थी किसी तरह की हानि होने की, तब तुमने सावधान किया। क्यों?'' सावधान करने वाला हंसा, ''तुम्हारे सवाल में ही जवाब छिपा है। जब तुम्हें खतरे का अहसास था, तब तो तुम खुद ही सावधान थे। जब तुम्हारी सावधानी हटी, तभी मैंने तुम्हें सचेत किया, क्योंकि अक्सर दुर्घटना तब और वहां होती है जब और जहां उसकी किसी तरह की कोई संभावना नहीं होती। अंतिम क्षणों में, जब लक्ष्य पास होता है, तभी गलती होती है, और हाथ आया लक्ष्य सरक जाता है।''

सावधान रहने वाला ही साधक होता है। असावधान तो व्यवहार और अध्यात्म सभी जगह ठोकर खाता है। असावधानी ही मूर्च्छा है और जहां मूर्च्छा है वहां जागरण कैसा। प्रकृति में देखें थोड़ी-सी असावधानी मौत का ग्रास बना देती है। पहाड़ी रास्तों के किनारे पर लिखा होता है—**सावधानी हटी, दुर्घटना घटी।** यह प्रकृति का शाश्वत नियम है। सावधान होने का अर्थ है स्वयं को द्रष्टा बनने के लिए तैयार करना। इस साधना का प्रतिफल है कि जो हो रहा है उसे निष्पक्ष भाव से आप देख सकें। पूर्ण द्रष्टाभाव ही समस्त साधनाओं की उपलब्धि है। संसार को उसके असली रूप में देखने के लिए अर्थात् समग्र की वास्तविकता देखने के लिए जरूरी है कि आप उसकी शुरुआत घटनाओं से करें, हिस्सों से करें। संसार इन घटनाओं का ही तो पुलिंदा है।

आपने देखा होगा पत्रकारों को, खासकर आलोचकों को कि वे सामने होने वाली घटनाओं का आनंद नहीं ले पाते। ऐसा लगता है। लोगों की तालियों की गड़गड़ाहट के बीच भी वे तटस्थ रहते हैं। उनका ऐसा व्यवहार उन्हें लोगों की दृष्टि में रूखा बना देता है। जबकि असल में ऐसा नहीं है। अगर ऐसा होता तो वे उन क्षणों का विश्लेषण-वर्णन अपने लेखों में नहीं कर सकते, जिनमें उस कार्यक्रम में मिलने वाले आनंद की चर्चा होती है। वे महसूस तो करते हैं, लेकिन उसमें रम नहीं जाते। रमने का अर्थ है आत्मविस्मृति, अर्थात् बह जाना। सावधान बहता नहीं। इसलिए छला नहीं जाता। वही देख पाता है असलियत को। होने वाली समस्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं, संवेदनाओं को साफ-साफ देख पाता है वह।

प्रणव का दर्शन

इस साधना को, जिसका ऊपर वर्णन किया गया है, कुछ महापुरुषों ने और भी सरल किया है। इस साधना में प्रणव को परम साधन के रूप में स्वीकारा गया है। कुछ लोगों के गले यह साधना उतरती नहीं। उनका तर्क है कि प्रणव तो साध्य है। जो साध्य है, वह साधन कैसे हो सकता है। परिशिष्ट के प्रारंभिक पृष्ठों पर साधक, साधन और साध्य की त्रिपुटी की चर्चा संक्षेप में की जा चुकी है कि किस तरह अज्ञान के कारण इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जबकि पारमार्थिक रूप से साधक, साधन और साध्य एक ही हैं। वेदांतग्रंथों में इस प्रक्रिया को अध्यारोप-अपवाद कहा जाता है—''अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते।'' है नहीं वास्तव में, लेकिन फिर भी मान करके उसे नकारा जाता है। गणित में भी इस मानने और उसे पुष्ट करने या फिर उसे नकारने की प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। 'नहीं है', ऐसा कहने से जो प्रतीत हो रहा है, उसे कोई भी सहज रूप से स्वीकार नहीं करता। बुद्धि की संतुष्टि के लिए इस प्रक्रिया को अपनाया जाता है। इस तरह प्रणव को साधन के रूप में न स्वीकारना तर्क की कसौटी पर, सापेक्षिक या व्यक्तिगत रूप से तो सही हो सकता है, व्यावहारिक दृष्टि से नहीं। स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद जैसी महान विभूतियों ने अपने अनुभवों के आधार पर प्रणव को साधन के रूप में भी स्वीकारा है। कुंडलिनी साधना में इसकी झलक चौथी भूमिका (चौथे चक्र) पर ही मिल जाती है, जबकि इसका साक्षात्कार सातवीं भूमिका पर होता है।
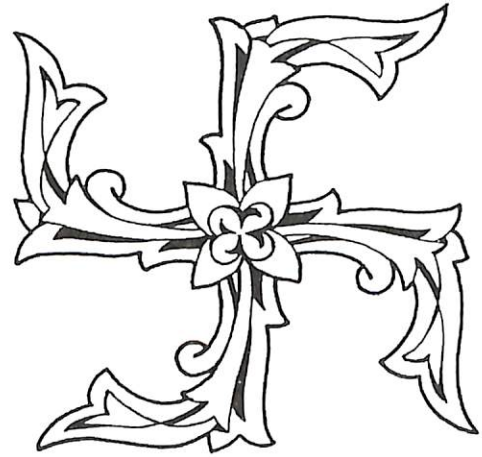
ॐ की अनुभूति सातवीं भूमिका पर होती है, जबकि स्वस्तिक पहली भूमिका पर स्थित होता है।
ॐ अकर्ता है जबकि स्वस्तिक सक्रिय ऊर्जा का प्रतीक

प्रणव को अशब्द माना गया है। जहां शब्द रीत जाते हैं, वहां स्थिति है प्रणव की। इसीलिए इसे एकाक्षर ब्रह्म कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने—*प्रणवः सर्ववेदेषु*, कहा है, अर्थात् वेदों में प्रणव हूं मैं। वैदिक

परंपरा में कोई भी मंत्र तब तक अर्थवान नहीं होता, जब तक उसके पहले प्रणव का प्रयोग न हो। 'अ उ म्' इन तीनों से मिलकर ही सभी स्वरों व व्यंजनों का, अक्षरों का निर्माण होता है। शब्दों के विस्तार के मूल में है 'ओ३म्'। इसे अक्षर से जब निरक्षर रूप दिया गया, तो यह चित्रमय हो गया—ॐ। इसी में कुछ को स्वस्तिक के दर्शन हुए। स्वस्तिक गति का प्रतीक है जबकि ॐ गति शून्यता का, समस्त गतियों को स्वयं में समेटने वाला। स्वस्तिक मूलाधार का प्रतीक है, तो ॐ सहस्रार का। लेकिन मूलाधार में ही सहस्रार की संभावनाएं छिपी हैं और सहस्रार समेटे है स्वयं में मूलाधार को। अन्य धर्मों में भी ॐ के समकक्ष शब्द ढूंढने की कोशिश की गई, लेकिन नहीं ढूंढ पाए वे। यह भी संभव है जब 'ॐ' उन स्थानों पर 'आमीन' बनकर पहुंचा, तो उनकी आत्मा में 'ॐ' की ही प्रतिध्वनि रही होगी। लंबी यात्रा के बाद पहले तो उसके उच्चारण में भेद हुआ, लेकिन बाद में उसकी वह प्रतिध्वनि ही लुप्त हो गई। 'शांति', यह रह गया उसका अर्थ। माहात्म्य रह गया उसका, उसके पीछे छिपा दर्शन नष्ट हो गया। कैसे करें इस प्रणव साधना को? इसकी संक्षिप्त जानकारी आगे दी जा रही है।

प्रणव साधना

इस अशब्द शब्द के तीन हिस्से हैं अ उ म्। पहले इनका अलग-अलग अभ्यास किया जाता है फिर एक साथ। इसमें सहज रूप से पीछे वर्णित श्वास-क्रिया से गुजरना होता है आपको। इसमें 'मैं कौन हूं' इस प्रकार का प्रश्न नहीं है। यह प्रश्न एक धक्के का-सा काम करता है जबकि प्रणव हल्की थपकी देता है। कुछ प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि इसके उच्च स्वर में उच्चारण (घोष) से तंद्रा आती है। मैं इस तंद्रा को नेगेटिव अर्थों में नहीं लेता। यह सीधे विश्रांति की अवस्था में ले जाती है साधक को। इसमें रेचन की क्रिया पर ज्यादा जोर नहीं है, वह सहज रूप से होती है। रेचन की क्रिया मुख से होती है और मल द्वारा भी। बेचैनी ज्यादा हो, तो सब कुछ उलटने को मन करता है। यह
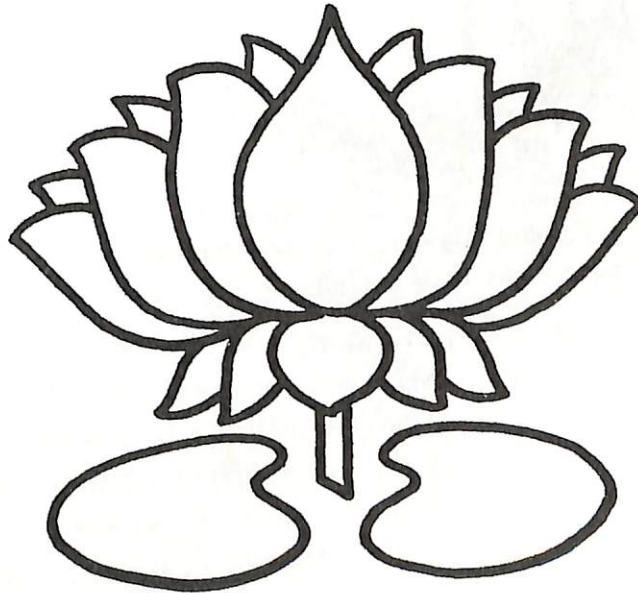
साक्षीभाव अर्थात् कमल की सी स्थिति। संसार में रहते हुए भी संसार से अलग

क्रिया अरुचिकर है। अस्वाभाविक है यह क्रिया। रेचन यदि सहज प्रक्रिया के रूप में हो, तो वह मल त्याग की सहज व नित्य क्रिया के रूप में हो जाता है। इसे विसर्जन कहते हैं। इस तरह होने वाले 'विसर्जन' का किसी को पता नहीं चलता। यह प्रक्रिया ज्यादा वैज्ञानिक लगती है। तंद्रा को तोड़ने का तरीका है आप ॐ के नाद को स्वयं सुने भी।

इससे तंद्रा कही जाने वाली स्थिति पर नियंत्रण होता है। प्रणव व घोष करते समय इन वाक्यों को दोहराएं—

मैं शरीर नहीं हूं। मैं न तो पांच ज्ञानेन्द्रियां हूं, ना ही पांच कर्मेन्द्रियां।
मैं मन नहीं हूं, चित्त नहीं हूं, बुद्धि नहीं हूं।
न मैं जागृत हूं, न सोया हूं।
न मैं किसी का जननी-जनक हूं, न ही संतान।
न मैं जन्मता हूं, न मरता हूं।
मैं तो हूं अजन्मा, अमर, शाश्वत, सर्वव्यापी, परम चेतना।
अहं ब्रह्माऽस्मि—मैं ब्रह्म हूं। सत्, चित, आनंद रूप हूं मैं।

ये वाक्य संभालेंगे—आपको। तंद्रा का स्पर्श तक नहीं होगा तमोगुण कपूर की तरह उड़ जाएगा।

यहां हम प्रश्न नहीं पूछ रहे, जवाब को संप्रेषित कर रहे हैं अचेतन की गहराइयों में। इन शब्दों की भावना बड़ी संतुलित होनी चाहिए। भावना शब्द को आयुर्वेद के संदर्भ में प्रयुक्त इस शब्द से जोड़ें। भावना देने का अर्थ होता है, इतनी आंच कि वस्तु भस्म रूप बन जाए, लेकिन उसके गुण नष्ट न हों। इसी को कुशलता कहते हैं। बड़ी वैज्ञानिक है यह प्रक्रिया। यह प्रक्रिया विश्राम के तमप्रधान पक्ष को, जिसे तंद्रा कहते हैं, तोड़ देती है।

शंख ध्वनि प्रणव साधना के नाद की प्रक्रिया बताती है।
प्रणव नाद करते समय वैसी ही गूंज होनी चाहिए जैसी शंख ध्वनि में होती है

इन तीनों शब्दों का अलग-अलग अभ्यास करते समय उपरोक्त भावना नहीं करनी। इस समय तो इस बात का ध्यान रखना है कि घोष कहां से उठ रहा है—कंठ से, हृदय से या नाभि प्रदेश से। नाभि प्रदेश से उठाएं ध्वनि को। पूरी ऊर्जा झोंकनी है इसमें भी। आखिरी 'म' का उच्चारण करते समय संभव है, कुछ कंपन महसूस करें। होने दीजिए, जो होता है। द्रष्टा बनें बस उसका। उसमें इन्वॉल्व न हों बस। 'म' का उच्चारण लोगों की पकड़ में जल्दी आता है। इसका अभ्यास यदि किसी नदी या झरने के किनारे पर बैठ कर करें तो लाभ जल्दी होगा। बहती नदी के किनारे इसका अभ्यास करते समय बहते जल को आधी मुंदी आंखों से देखें। प्रणव की ध्वनि, भावना, नदी के बहने की कलकल ध्वनि, बहती धारा का अंतस् पर रिएक्शन, इन सबका मिला-जुला असर आपकी प्रसुप्त संभावनाओं को सक्रिय करेगा। मौन, एकांत, सात्विक और अल्पभोजन, ढीले-ढाले वस्त्रों का पहरावा (कम-से-कम वस्त्र) लाभदायी होगा। तीन-तीन नादों का एक ग्रुप बनाइए। एक-एक चक्र पर तीन-तीन प्रणवनाद करते हुए ध्यान करिए। इसकी शुरुआत मूलाधार से कीजिए। सहस्त्रार तक जाइए। फिर वापस मूलाधार तक आइए। इसे भी तीन बार करिए। अब यह विश्रांति की परम स्थिति में ले जाने वाला प्रणव आपकी पीठ पर थपथपी देगा और हैरान होंगे आप

यह महसूस करके कि अनंत संभावनाओं को जगाना क्या सच में इतना आसान था। इस समय जितना सरल है संसार में रमना, उससे सहज-सरल लगेगा अनंत आकाश में उड़ना। समझ आएंगे ऋषियों के ये वाक्य—उठो, जागो और प्राप्त करो सर्वश्रेष्ठ को।

और महसूस होगा आपको—मुझसे श्रेष्ठ और क्या है ? कोई नहीं। मैं ही तो हूं अनंत शक्तियों का स्वामी। और यह भी कि—

कितने दूर थे तुम मुझसे, इतने दूर कि विश्वास ही न होता तुम्हारे अस्तित्व का
स्वीकार और अस्वीकार से उबरने का संकल्प लिया था मैंने एक दिन,
तैयारी की थी बड़े जोर-शोर से,
संजोया था अपने को, अपनी समूची शक्ति को,
और छलांग लगा दी थी तुम्हारी ओर,
जो पास था सब छूट गया था, दूर-दूर तक कुछ न था पाने को
लगा था एक बार कि गलती की
लेकिन तब हैरानगी हुई, जब यात्रा ही बदल गयी
मैं तुम्हारी ओर नहीं, अपनी ओर मुड़ गया था
समझ नहीं आया था कुछ भी,
समझ तो तब आया, जब अनुभव हुआ
तुम तो मुझमें थे, मैं ही तो था तुम।
तो फिर किस ओर छलांग लगायी थी मैंने
कितना नादान था मैं।

अपने दिल में डूबकर पा जा सुरागे-जिंदगी
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन

पं. किसनलाल शर्मा
असली प्राचीन बृहद्
लाल किताब
ज्ञानेश्वरी टीका द्वारा रहस्यों का खुलासा
सरल टोटके

भृगु संहिता
फलित दर्पण
जन्मकुंडलियों के फलादेशों की समग्र जानकारी
जातक के अतीत, वर्तमान और भविष्य के विशेष योगों की सरल मीमांसा

भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान
देने वाली भारतीय एवं
विदेशी विधाएं

अंक-ज्योतिष एवं हस्तरेखा शास्त्र
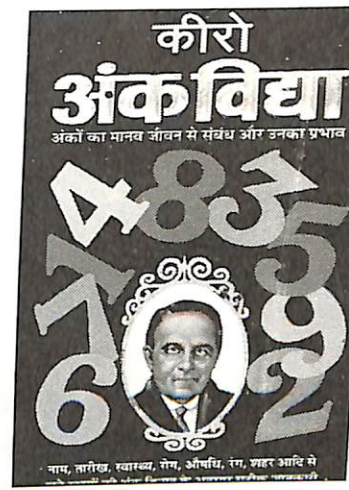
- ❐ हस्तरेखा शास्त्र के वैज्ञानिक सिद्धान्त 200-00
- ❐ हस्तरेखा शास्त्र का अध्ययन 150-00
- ❐ आप और आपका भविष्य 60-00
- ❐ अंक विद्या 60-00
- ❐ हस्तरेखा विज्ञान (नया कवर) 60-00
- ❐ संपूर्ण हस्तरेखा विज्ञान 50-00
- ❐ अंक और ज्योतिष 50-00
- ❐ हस्तरेखा और दाम्पत्य जीवन 40-00
- ❐ प्रेम विवाह और हस्तरेखाएं 40-00
- ❐ Cheiro's Language of the Hand 100-00
- ❐ Cheiro's Book of Numbers 80-00

चीनी वास्तु फेंगशुई एवं भारतीय वास्तु शास्त्र

अपनाएं और बनें
परम सौभाग्यशाली
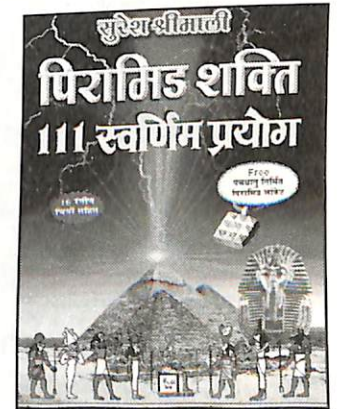
- ❐ वास्तुशास्त्र (सजिल्द) 400.00
- ❐ वास्तुशास्त्र 300.00
- ❐ सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र 150.00
- ❐ रेमेडियल वास्तुशास्त्र 150.00
- ❐ वास्तु द्वारा लक्ष्मी प्रवेश 150.00
- ❐ फेंगशुई वास्तुशास्त्र 150.00
- ❐ फेंगशुई : 151 स्वर्णिम सूत्र 100.00
- ❐ Feng Shui 151 Golden Tips 100.00
- ❐ बृहद् वास्तुशास्त्र 100.00
- ❐ पिरामिड शक्ति : 111 स्वर्णिम प्रयोग 100.00
- ❐ फेंगशुई : अपने घर अपार्टमेंट में खुशहाली लाएं 100.00

नीचे दिए गए पते पर मनीऑर्डर द्वारा धनराशि भेजें। पुस्तकें रजिस्टर्ड पैकेट द्वारा भेजी जाएंगी। वी.पी. द्वारा पुस्तकें नहीं भेजी जातीं। कोई भी चार पुस्तकें मंगाने पर डाक-व्यय की छूट!

मनोज पब्लिकेशन्स, 761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली–110084

फोन : 27611116, 27611349, फैक्स : 27611546

तंत्र, मंत्र और पराविज्ञान

जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान
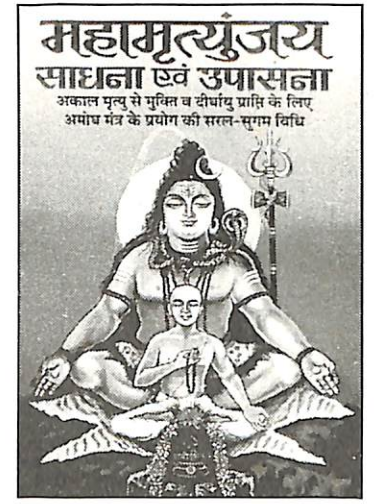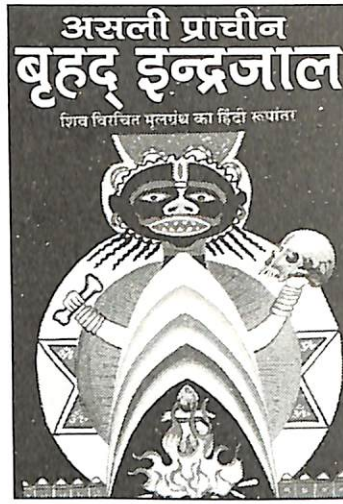
पुस्तक	मूल्य
❐ असल कदीमी नक्श-ए-सुलेमानी	150.00
❐ यंत्र विधान रहस्य (मल्टी कलर में–सतरंगी श्रीयंत्र सहित)	150.00
❐ 5001 प्रभावशाली टोने-टोटके और तावीज	150.00
❐ 51 चमत्कारी यंत्र एलबम	100.00
❐ गायत्री मंत्र साधना एवं उपासना	100.00
❐ लक्ष्मी प्राप्ति : 111 स्वर्णिम प्रयोग (फ्री रंगीन श्रीयंत्र)	100.00
❐ सरल तांत्रिक प्रयोगों द्वारा बिगड़े काम संवारे	80.00
❐ गण्डे तावीज व रत्नों द्वारा कष्ट निवारण	80.00
❐ वनस्पति तंत्र और शाबर मंत्र	60.00
❐ महामृत्युंजय साधना एवं उपासना	60.00
❐ सम्मोहन और सम्मोहन चिकित्सा	50.00

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
❐ असली प्राचीन बृहद् इन्द्रजाल	150.00	❐ चमत्कारिक यंत्र साधना	50.00
❐ रुद्री पाठ	100.00	❐ चमत्कारिक तंत्र साधना	50.00
❐ श्रीयन्त्र रहस्य (श्रीयंत्र सहित)	60.00	❐ चमत्कारिक मंत्र साधना	50.00
❐ शाबर मंत्र सिद्धि	60.00	❐ रुद्राक्ष शक्ति के रहस्य	50.00
❐ यंत्र सिद्धि	60.00	❐ तंत्र और प्रेत विद्या	50.00
❐ नास्त्रेदमस की भविष्यवाणियां	60.00	❐ हिप्नोटिज्म के चमत्कार	50.00
❐ सुलेमानी नक़्श	50.00	❐ Practical Hypnotism	80.00

नीचे दिए गए पते पर मनीऑर्डर द्वारा धनराशि भेजें। पुस्तकें रजिस्टर्ड पैकेट द्वारा भेजी जाएंगी। वी.पी. द्वारा पुस्तकें नहीं भेजी जातीं। कोई भी चार पुस्तकें मंगाने पर डाक-व्यय की छूट!

मनोज पब्लिकेशन्स, 761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली-110084

फोन : 27611116, 27611349, फैक्स : 27611546

A.H.W. Sawan Series

चमत्कारी कुण्डलिनी शक्ति एवं ध्यान योग

कुण्डलिनी साधना का अर्थ है सोई हुई अनंत संभावनाओं का जागरण। यह साधना जिसने की वह योग और भोग की अनंत शक्तियों का स्वामी बन गया। योग व तंत्रशास्त्रों में इसका विस्तृत विवरण मिलता है।

क्या है कुण्डलिनी? इसे जागृत करने का क्या अर्थ है? कौन अधिकारी है इस साधना का? कैसे करें इस दिव्य साधना को? इन सभी की शास्त्र-सम्मत व प्रायौगिक जानकारी है इस पुस्तक में सरल-सुगम भाषा में। साधकों के लिए उपयोगी व संग्रहणीय पुस्तक!

वो दिव्य शक्ति जिसे विष्णु की शय्या, शिव का आभूषण या पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग के रूप में चित्रित किया गया है, मानव शरीर में कुण्डलिनी के रूप में स्थित है।

SERPENT POWER

Rs.150/-